CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

11.1

सुदर्शनोदय
महाकाव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4432

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५५३२

सुदर्शनोदय महाकाव्य

—: मूलग्रन्थलेखक एवं हिन्दी टीकाकार :—

वाणीभूषण बा. ब्र. पं. भूरामल शास्त्री

(आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रेरक प्रसंग : प. पू. आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परमशिष्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज, क्षु. श्री गम्भीर सागरजी, क्षु. श्री धैर्य सागरजी महाराज के ऐतिहासिक १९९४ के श्री सोनी जी की नसियाँ, अजमेर के चातुर्मास के उपलक्ष्य में प्रकाशित।

ट्रस्ट संस्थापक : स्व. पं. जुगल किशोर मुख्तार

ग्रन्थमालासम्पादक एवं नियामक : डॉ. दरबारी लाल कोठिया न्यायाचार्य, बीना (मध्य प्रदेश)

संस्करण : द्वितीय

प्रति : 2000

मूल्य : स्वाध्याय
(नोट :- डाक खर्च भेजकर प्रति निशुल्क प्राप्ति स्थान से मंगा सकते है।

प्राप्ति स्थान :

❋ **सोनी मन्दिर ट्रस्ट**
सोनीजी की नसियाँ,
अजमेर (राज.)

❋ **डा. शीतलचन्द जैन**
मंत्री – श्री वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट
१३१४ अजायब घर का रास्ता,
किशनपोल बाजार, जयपुर

❋ **श्री दिगम्बर जैन मन्दिर अतिशय क्षेत्र**
मन्दिर संघी जी, सांगानेर
जयपुर (राज.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री वाणीभूषण बा. ब्र. पं. भूरामलजी शास्त्री

सुदर्शनोदय महाकाव्य

आशीर्वाद एवं प्रेरणा :
मुनि श्री सुधासागर जी महाराज एवं
क्षु. श्री गंभीरसागर जी, एवं क्षु. श्री धैर्यसागर जी महाराज

सम्पादक
पं. हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री (सिद्धान्तलङ्कार न्यायतीर्थ)

सौजन्यता :
राजेन्द्रकुमार जी ढिलवारी
केसरगंज, अजमेर

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज,
अजमेर (राज.)

प्रकाशन :
वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, जयपुर

मुद्रण एवं लेज़र टाइप सैटिंग :
निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्ट्स
पुरानी मण्डी, अजमेर फोन 22291

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

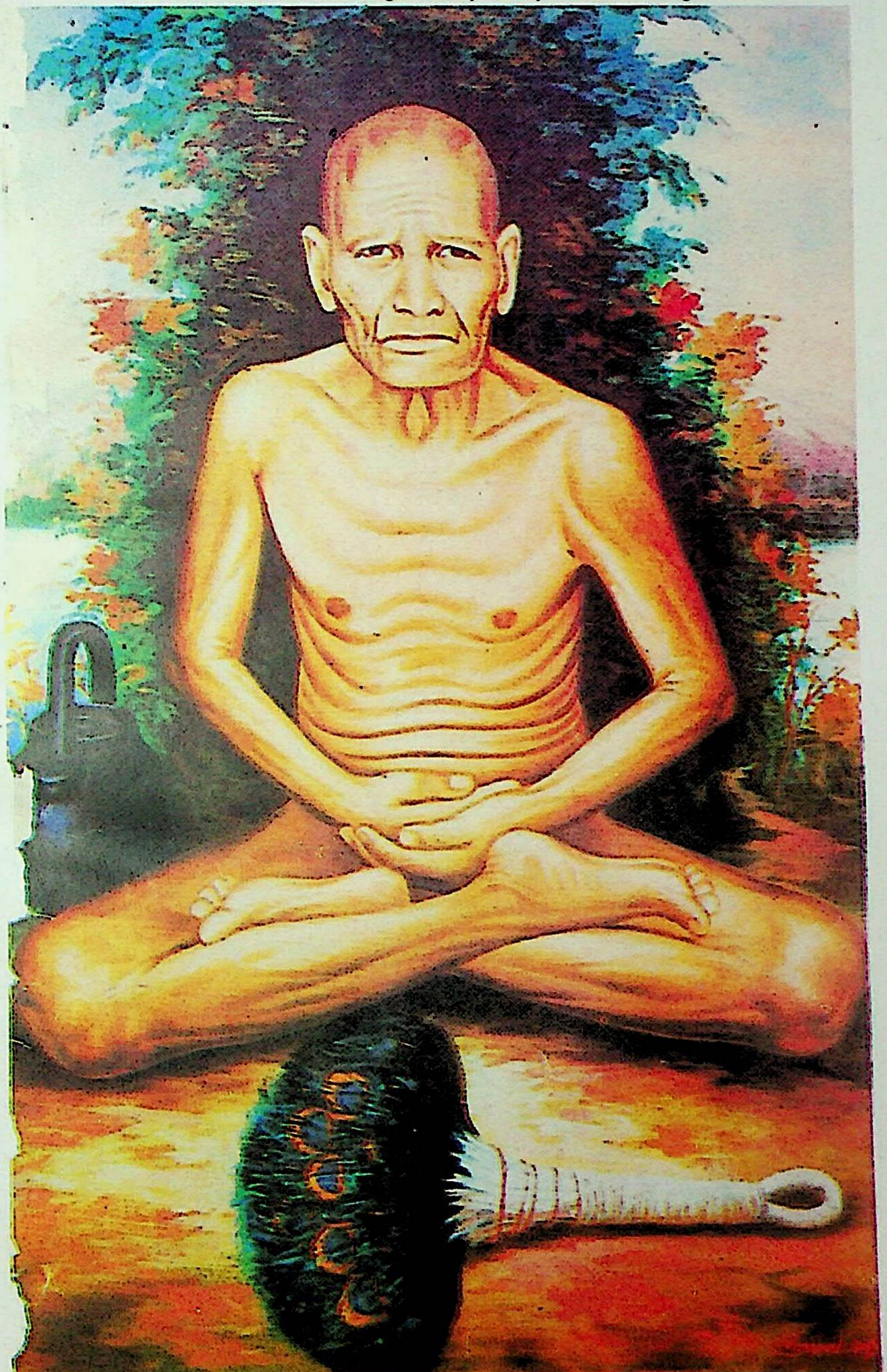

दिगम्बर जैनाचार्य १०८ श्री ज्ञानसागर मुनि महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय समर्पण

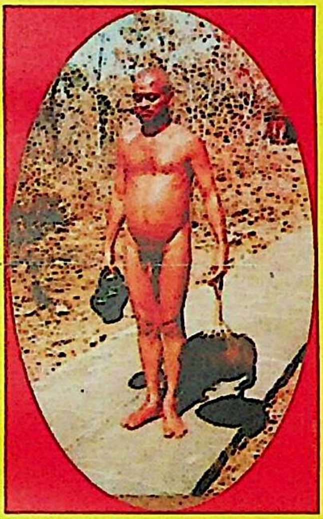

卐

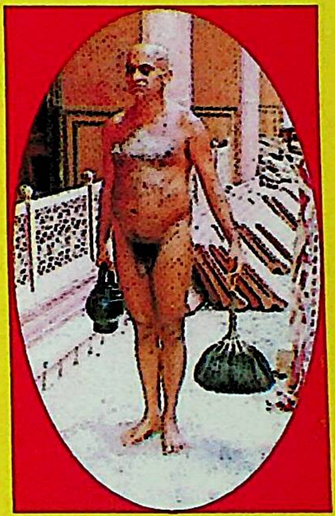

पंचाचार युक्त
महाकवि, दार्शनिक विचारक,
धर्मप्रभाकर, आदर्श चारित्रनायक, कुन्द-कुन्द
की परम्परा के उन्नायक, संत शिरोमणि, समाधि सम्राट,
परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के कर कमलों में
एवं
इनके परम सुयोग्य
शिष्य ज्ञान, ध्यान, तप युक्त
जैन संस्कृति के रक्षक, क्षेत्र जीर्णोद्धारक,
वात्सल्य मूर्ति, समता स्वाभावी, जिनवाणी के यथार्थ
उद्घोषक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक संत मुनि
श्री सुधासागर जी महाराज के कर कमलों में
सकल दि. जैन समाज एवं दिगम्बर जैन समिति,
अजमेर (राज.) की ओर से
सादर समर्पित ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी की जीवन यात्रा आँखों देखी

आलेख - निहाल चन्द्र जैन
सेवा निवृत्त प्राचार्य
मिश्रसदन सुन्दर विलास, अजमेर

प्राचीन काल से ही भारत वसुन्धरा ने अनेक महापुरुषों एवं नर-पुंगवों को जन्म दिया है । इन नर-रत्नों ने भारत के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं शौर्यता के क्षेत्र में अनेकों कीर्तिमान स्थापित किये हैं । जैन धर्म भी भारत भूमि का एक प्राचीन धर्म हैं, जहाँ तीर्थंकर, श्रुत केवली, केवली भगवान के साथ साथ अनेकों आचार्यों, मुनियों एवं सन्तों ने इस धर्म का अनुसरण कर मानव समाज के लिए मुक्ति एवं आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है ।

इस १९-२० शताब्दी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य परम पूज्य, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री शांतिसागर जी महाराज थे जिनकी परम्परा में आचार्य श्री वीर सागरजी, आचार्य श्री शिव सागरजी इत्यादि तपस्वी साधुगण हुये । मुनि श्री ज्ञान सागरजी आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से वि. स. २०१६, में खानियाँ (जयपुर) में मुनि दीक्षा लेकर अपने आत्मकल्याण के मार्ग पर आरूढ़ हो गये थे । आप शिवसागर आचार्य महाराज के प्रथम शिष्य थे ।

मुनि श्री ज्ञान सागर जी का जन्म राणोली ग्राम (सीकर-राजस्थान) में दिगम्बर जैन के छाबड़ा कुल में सेठ सुखदेवजी के पुत्र श्री चतुर्भुज जी की धर्म पत्नि घृतावरी देवी की कोख से हुआ था । आपके बड़े भ्राता श्री छगनलालजी थे तथा दो छोटे भाई और थे तथा एक भाई का जन्म तो पिता श्री के देहान्त के बाद हुआ था । आप स्वयं भूरामल के नाम से विख्यात हुये । प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के प्राथमिक विद्यालय में हुई । साधनों के अभाव में आप आगे विद्याध्ययन न कर अपने बड़े भाई जी के साथ नौकरी हेतु गयाजी (बिहार) आगये । वहां १३-१४ वर्ष की आयु में एक जैनी सेठ के दुकान पर आजीविका हेतु कार्य करते रहे । लेकिन आपका मन आगे पढ़ने के लिए छटपटा रहा था । संयोगवश स्याद्‌वाद महाविद्यालय वाराणसी के छात्र किसी समारोह में भाग लेने हेतु गयाजी (बिहार) आये । उनके प्रभावपूर्ण कार्यक्रमों को देखकर युवा भूरामल के भाव भी विद्या प्राप्ति हेतु वाराणसी जाने के हुए । विद्या-अध्ययन के प्रति आपकी तीव्र भावना एवं दृढ़ता देखकर आपके बड़े भ्राता ने १५ वर्ष की आयु में आपको वाराणसी जाने की स्वीकृति प्रदान कर दी ।

श्री भूरामल जी बचपन से ही कठिन परिश्रमी अध्यवसायी, स्वावलम्बी, एवं निष्ठावान थे । वाराणसी में आपने पूर्ण निष्ठा के साथ विद्याध्ययन किया और संस्कृत एवं जैन सिद्धान्त का गहन अध्ययन कर शास्त्री परीक्षा पास की । जैन धर्म से संस्कारित श्री भूरामल जी न्याय, व्याकरण एवं प्राकृत ग्रन्थों को जैन सिद्धान्तानुसार पढ़ना चाहते थे, जिसकी उस समय वाराणसी में समुचित व्यवस्था नहीं थी । आपका मन क्षुब्ध ही उठा, परिणामतः आपने जैन साहित्य, न्याय और व्याकरण को पुनःर्जीवित करने का भी दृढ़ संकल्प ही लिया । अढ़िग विश्वास, निष्ठा एवं संकल्प के धनी श्री भूरामल जी ने कई जैन एवं जैनेन्तर विद्वानों से जैन वाँङ्मय की शिक्षा प्राप्त की । वाराणसी में रहकर ही आपने स्याद्‌वाद महाविद्यालय से "शास्त्री" की परीक्षा पास कर आप पं. भूरामल जी नाम से विख्यात हुए । वाराणसी में ही आपने जैनाचार्यों द्वारा लिखित न्याय, व्याकरण, साहित्य, सिद्धान्त एवं अध्यात्म विषयों के अनेक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनारस से लौट कर आपने अपने ही ग्रामीण विद्यालय में अवैतनिक अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया, लेकिन साथ में, निरन्तर साहित्य साधना एवं साहित्य लेखन के कार्य में भी अग्रसर होते गये। आपकी लेखनी से एक से एक सुन्दर काव्यकृतियाँ जन्म लेती रही। आपकी तरुणाई विद्वता और आजीविकोपार्जन की क्षमता देखकर आपके विवाह के लिए अनेकों प्रस्ताव आये, सगे सम्बन्धियों ने भी आग्रह किया। लेकिन आपने वाराणसी में अध्ययन करते हुए ही संकल्प ले लिया था कि आजीवन ब्रह्मचारी रहकर माँ सरस्वती और जिनवाणी की सेवा में, अध्ययन-अध्यापन तथा साहित्य सृजन में ही अपने आपको समर्पित कर दिया। इस तरह जीवन के ५० वर्ष साहित्य साधना, लेखन, मनन एवं अध्ययन में व्यतीत कर पूर्ण पांडित्य प्राप्त कर लिया। इसी अवधि में आपने दयोदय, भद्रोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय आदि साहित्यिक रचनायें संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में प्रस्तुत की वर्तमान शताब्दी में संस्कृत भाषा के महाकाव्यों की रचना की परम्परा को जीवित रखने वाले मूर्धन्य विद्वानों में आपका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। काशी के दिग्गज विद्वानों की प्रतिक्रिया थी "इसकाल में भी कालीदास और माघकवि की टक्कर लेने वाले विद्वान हैं, यह जानकर प्रसन्नता होती हैं।" इस तरह पूर्ण उदासीनता के साथ, जिनवाणी माँ की अविरत सेवा में आपने गृहस्थाश्रम में ही जीवन के ५० वर्ष पूर्ण किये। जैन सिद्धान्त के हृदय को आत्मसात करने हेतु आपने सिद्धान्त ग्रन्थों श्री धवल, महाधवल जयधवल महाबन्ध आदि ग्रन्थों का विधिवत् स्वाध्याय किया। "ज्ञान भारं क्रिया बिना" क्रिया के बिना ज्ञान भार- स्वरूप है - इस मंत्र को जीवन में उतारने हेतु आप त्याग मार्ग पर प्रवृत्त हुए।

सर्वप्रथम ५२ वर्ष की आयु में सन् १९४७ में आपने अजमेर नगर में ही आचार्य श्री वीर सागरजी महाराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत अंगीकार किये। ५४ वर्ष की आयु में आपने पूर्णरूपेण गृहत्याग कर आत्मकल्याण हेतु जैन सिद्धान्त के गहन अध्ययन में लग गये। सन् १९५५ में ६० वर्ष की आयु में आपने आचार्य श्री वीर सागरजी महाराज से ही रेनवाल में क्षुल्लक दीक्षा लेकर ज्ञानभूषण के नाम से विख्यात हुए। सन् १९५९ में ६२ वर्ष की आयु में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से खानियाँ (जयपुर) में मुनि दीक्षा अंगीकार कर १०८ मुनि श्री ज्ञानसागरजी के नाम से विभूषित हुए। और आपकों आचार्य श्री का प्रथम शिष्य होने का गौरव प्राप्त हुआ। संघ में आपने उपाध्याय पद के कार्य को पूर्ण विद्वत्ता एवं सजगता के साथ सम्पन्न किया। रूढ़िवाद से कोसों दूर मुनि ज्ञानसागर जी ने मुनिपद की सरलता और गंभीरता को धारण कर मन, वचन और कायसे दिगम्बरत्व की साधना में लग गये। दिन रात आपका समय आगमानुकूल मुनिचर्या की साधना, ध्यान अध्ययन-अध्यापन एवं लेखन में व्यतीत होता रहा। फिर राजस्थान प्रान्त में ही विहार करने निकल गये। उस समय आपके साथ मात्र दो-चार त्यागी व्रती थे, विशेष रूप से ऐलक श्री सन्मतिसागर जी, क्षुल्लक श्री संभवसागर जी व सुख सागरजी तथा एक-दो ब्रह्मचारी थे। मुनि श्री उच्च कोटि के शास्त्र-ज्ञाता, विद्वान एवं तात्विक वक्ता थे। पंथ वाद से दूर रहते हुए आपने सदा जैन सिद्धान्तों को जीवन में उतारने की प्रेरणा दी और एक सद्गृहस्थ का जीवन जीने का आह्वान किया।

विहार करते हुए आप मदनगंज-किशनगढ़, अजमेर तथा ब्यावर भी गये। ब्यावर में पंडित हीरा लालजी शास्त्री ने मुनि श्री को उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों एवं पुस्तकों को प्रकाशित कराने की बात कही, तब आपने कहा "जैन वाँगमय की रचना करने का काम मेरा है, प्रकाशन आदि का कार्य आप लोगों का है"।

जब सन् १९६७ में आपका चातुर्मास मदनगंज किशनगढ़ में हो रहा था, तब जयपुर नगर के चूलगिरि क्षेत्र पर आचार्य देश भूषण जी महाराज का वर्षा योग चल रहा था। चूलगिरी का निर्माण कार्य भी आपकी देखरेख एवं संरक्षण में चल रहा था। उसी समय सदलगा ग्रामनिवासी, एक कन्नड़-भाषी नवयुवक आपके पास ज्ञानार्जन हेतु आया। आचार्य देशभूषण जी की आँखों ने शायद उस नवयुवक की भावना को पढ़ लिया था, सो उन्होंने उस नवयुवक विद्याधर को आशीर्वाद प्रदान कर ज्ञानार्जन हेतु मुनिवर ज्ञानसागर जी के पास भेज दिया। जब मुनि श्री ने नौजवान विद्याधर में ज्ञानार्जन की एक तीव्र कसक एवं ललक देखी तो मुनि श्री ने पूछ ही लिया कि अगर विद्यार्जन के पश्चात छोडकर चले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जावोगे तो मुनि तो का परिश्रम व्यर्थ जायेगा। नौजवान विद्याधर ने तुरन्त ही दृढ़ता के साथ आजीवन सवारी का त्याग कर दिया। इस त्याग भावना से मुनि ज्ञान सागरजी अत्यधिक प्रभावित हुए और एक टक-टकी लगाकर उस नौजवान की मनोहारी, गौरवर्ण तथा मधुर मुस्कान के पीछे छिपे हुए दृढ़-संकल्प को देखते ही रह गये।

शिक्षण प्रारम्भ हुआ। योग्य गुरू के योग्य शिष्य विद्याधर ने ज्ञानार्जन में कोई कसर नहीं छोड़ी। इसी बीच उन्होंने अखंड ब्रह्मचर्य्य व्रत को भी धारण कर लिया। ब्रह्मचारी विद्याधर की साधना प्रतिमा, तत्परता तथा ज्ञान के क्षयोपशम को देखकर गुरू ज्ञानसागर जी इतने प्रभावित हुए कि, उनकी कड़ी परीक्षा लेने के बाद, उन्हें मुनिपद ग्रहण करने की स्वीकृति दे दी। इस कार्य को सम्पन्न करने का सौभाग्य मिला अजमेर नगर को और सम्पूर्ण जैन समाज को। ३० जून १९६८ तदानुसार आषाढ़ शुक्ला पंचमी को ब्रह्मचारी विद्याधर की विशाल जन समुदाय के समक्ष जैनश्वरी दीक्षा प्रदान की गई और विद्याधर, मुनि विद्यासागर के नाम से सुशोभित हुए। उस वर्ष का चातुर्मास अजमेर में ही सम्पन्न हुआ।

तत्पश्चात मुनि श्री ज्ञानसागर जी का संघ विहार करता हुआ नसीराबाद पहुँचा। यहाँ आपने ७ फरवरी १९६९ तदानुसार मगसरबदी दूज को श्री लक्ष्मी नारायण जी को मुनि दीक्षा प्रदान कर मुनि १०८ श्री विवेकसागर नाम दिया। इसी पुनीत अवसर पर समस्त उपस्थित जैन समाज द्वारा आपको आचार्य पद से सुशोभित किया गया।

आचार्य ज्ञानसागर जी की हार्दिक अभिलाषा थी कि उनके शिष्य उनके सान्निध्य में अधिक से अधिक ज्ञार्नाजन कर ले। आचार्य श्री अपने ज्ञान के अथाह सागर को समाहित कर देना चाहते थे विद्या के सागर में और दोनों ही गुरू-शिष्य उतावले थे एक दूसरे में समाहित होकर ज्ञानामृत का निरन्तर पान करने और कराने में। आचार्य ज्ञानसागर जी सच्चे अर्थों में एक विद्वान-जौहरी और पारखी थे तथा बहुत दूर दृष्टि वाले थे। उनकी काया निरन्तर क्षीण होती जा रही थी। गुरू और शिष्य की जैन सिद्धान्त एवं वांगमय की आराधना, पठन, पाठन एवं तत्वचर्चा-परिचर्चा निरन्तर अबाधगति से चल रही थी।

तीन वर्ष पश्चात १९७२ में आपके संघ का चातुर्मास पुनः नसीराबाद में हुआ। अपने आचार्य गुरू की गहन अस्वस्थ्यता में उनके परम सुयोग्य शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी ने पूर्ण निष्ठा और निस्पृह भाव से इतनी सेवा की कि शायद कोई लखपती बाप का बेटा भी इतनी निष्ठा और तत्परता के साथ अपने पिता श्री की सेवा कर पाता। कानों सुनी बात तो एक बार झूंठी हो सकती है लेकिन आँखो देखी बात को तो शत प्रतिशत सत्य मान कर ऐसी उत्कृष्ट गुरू भक्ति के प्रति नतमस्तक होना ही पड़ता है।

चातुर्मास समाप्ति की ओर था। आचार्य श्री ज्ञानसागर जी शारीरिक रुप से काफी अस्वस्थ्य एवं क्षीण हो चुके थे। साइटिका का दर्द कम होने का नाम ही नहीं ले रहा था दर्द की भयंकर पीड़ा के कारण आचार्य श्री चलने फिरने में असमर्थ होते जा रहे थे। १६-१७ मई १९७२ की बात है - आचार्य श्री ने अपने योग्यतम शिष्य मुनि विद्यासागर से कहा "विद्यासागर ! मेरा अन्त समीप है। मेरी समाधि कैसे सधेगी ?

इसी बीच एक महत्वपूर्ण घटना नसीराबाद प्रवास के समय घटित हो चुकी थी। आचार्य श्री के देह-त्याग से करीब एक माह पूर्व ही दक्षिण प्रान्तीय मुनि श्री पार्श्वसागर जी आचार्य श्री की निर्विकल्प समाधि में सहायक होने हेतु नसीराबाद पधार चुके थे। वे कई दिनों से आचार्य श्री ज्ञानसागरजी की सेवा सुश्रुषा एवं वैय्यावृत्ति कर अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहते थे। नियति को कुछ और ही मंजूर था। १५ मई १९७२ को पार्श्वसागर महाराज को शारीरिक व्याधि उत्पन्न हुई और १६ मई को प्रातःकाल करीब ७ बजकर ४५ मिनिट पर अरहन्त, सिद्ध का स्मरण करते हुए वे इस नश्वर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देह का त्याग कर स्वर्गारोहण हो गये । अतः अब यह प्रश्न आचार्य ज्ञानसागर जी के सामने उपस्थित हुआ कि समाधि हेतु आचार्य पद का परित्याग तथा किसी अन्य आचार्य की सेवा में जाने का आगम में विधान है । आचार्य श्री के लिए इस भंयकर शारीरिक उत्पीडन की स्थिति में किसी अन्य आचार्य के पास जाकर समाधि लेना भी संभव नहीं था। आचार्य श्री ने अन्तत्तोगत्वा अपने शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी को कहा "मेरा शरीर आयु कर्म के उदय से रत्नत्रय- आराधना में शनैः शनैः कृश हो रहा है। अतः मैं यह उचित समझता हूँ कि शेष जीवन काल में आचार्य पद का परित्याग कर इस पद पर अपने प्रथम एवं योग्यतम शिष्य को पदासीन कर दूं। मेरा विश्वास है कि आप श्री जिनशासन सम्वर्धन एवं श्रमण संस्कृति का संरक्षण करते हुए इस पदकी गरिमा को बनाये रखोगे तथा संघ का कुशलता पूर्वक संचालन करसमस्त समाज को सही दिशा प्रदान करोगे।" जब मुनि श्री विद्यासागरजी ने इस महान भार को उठाने में, ज्ञान, अनुभव और उम्र से अपनी लघुता प्रकट की तो आचार्य ज्ञान सागरजी ने कहा "तुम मेरी समाधि साध दो, आचार्य पद स्वीकार करलो। फिर भी तुम्हें संकोच है तो गुरु दक्षिणा स्वरुप ही मेरे इस गुरुत्तर भार को धारण कर मेरी निर्विकल्प समाधि करादो- अन्य उपाय मेरे सामने नहीं है।"

मुनि श्री विद्यासागर जी काफी विचलित हो गये, काफी मंथन किया, विचार-विमर्श किया और अन्त में निर्णय लिया कि गुरु दक्षिणा तो गुरु को हर हालत में देनी ही होगी । और इस तरह उन्होंने अपनी मौन स्वीकृति गुरु चरणों से समर्पित करदी ।

अपनी विशेष आभा के साथ २२ नवम्बर १९७२ तदानुसार मगसर बदी दूज का सूर्योदय हुआ। आज जिन शासन के अनुयायिओं को साक्षात् एक अनुपम एवं अद्भुत दृश्य देखने को मिला । कल तक जो श्री ज्ञान सागरजी महाराज संघ के गुरु थे, आचार्य थे, सर्वोपरि थे, आज वे ही साधु एवं मानव धर्म की पराकाष्ठा का एक उत्कृष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करने जा रहे थे. यह एक विस्मयकारी एवं रोमांचक दृश्य था, मुनि की संज्वलन कषाय की मन्दता का सर्वोत्कृष्ठ उदाहरण था । आगमानुसार आचार्य श्री ज्ञानसागरजी ने आचार्य पदत्याग की घोषणा की तथा अपने सर्वोत्तम योग्य शिष्य मुनि श्री विद्यासागरजी को समाज के समक्ष अपना गुरुत्तर भार एवं आचार्य पद देने की स्वीकृति मांगकर, उन्हें आचार्य पद से विभूषित किया । जिस बडे पट्टे पर आज तक आचार्य श्री ज्ञानसागर जी आसीन होते थे उससे वे नीचे उतर आये और मुनि श्री विद्यासागरजी को उस आसन पर पदासीन किया। जन-समुदाय की आँखे सुखानन्द के आँसुओं से तरल हो गई । जय घोष से आकाश और मंदिर का प्रागंण गूंज उठा। आचार्य श्री विद्यासागर जी ने अपने गुरु के आदेश का पालन करते हुये पूज्य गुरुवर की निर्विकल्प समाधि के लिए आगमानुसार व्यवस्था की। गुरु ज्ञानसागरजी महाराज भी परम शान्त भाव से अपने शरीर के प्रति निर्ममत्व होकर रस त्याग की ओर अग्रसर होते गये।

आचार्य श्री विद्यासागरजी ने अपने गुरु की संलेखना पूर्वक समाधि कराने में कोई कसर नहीं छोडी । रात दिन जागकर एवं समयानुकूल सम्बोधन करते हुए आचार्य श्री ने मुनिवर की शांतिपूर्वक समाधि कराई । अन्त में समस्त आहार एवं जल का त्यागोपरान्त मिती जेष्ठ कृष्णा अमावस्या वि. स. २०३० तदनानुसार शुक्रवार दिनांक १ जून १९७३ को दिन में १० बजकर ५० मिनिट पर गुरु ज्ञानसागर जी इस नश्वर शरीर का त्याग कर आत्मलीन हो गये । और दे गये समस्त समाज को एक ऐसा सन्देश कि अगर सुख,शांति और निर्विकल्प समाधि चाहते हो तो कषायों का शमन कर रत्नत्रय मार्ग पर आढ़ू हो जाओ, तभी कल्याण संभव है ।

इस प्रकार हम कह सकते है कि आचार्य ज्ञानसागरजी का विशाल कृत्तित्व और व्यक्तित्व इस भारत भूमि के लिए सरस्वती के वरद पुत्रता की उपलब्धि कराती है! इनके इस महान साहित्य सृजनता से अनेकानेक ज्ञान पिपासुओं ने इनके महाकाव्यों परशोध कर डाक्टर की उपाधि प्राप्त कर अपने आपको गौरवान्वित किया है। आचार्य श्री के साहित्य की सुरभि वर्तमान में सारे भारत में इस तरह फैल कर विद्वानों को आकर्षित करने लगी है कि समस्त भारतवर्षीय जैन अजैन विद्वानों का ध्यान उनके महाकाव्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की ओर गया है। परिणामतः आचार्य श्री ज्ञानसागरजी की ही संघ परम्परा के प्रथम आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परम सुयोग्य शिष्य, प्रखर प्रवचन प्रवक्ता, मुनि श्री १०८ श्री सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य में प्रथम बार "आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के कृत्तित्व एवं व्यक्तित्व पर ९-१०-११ जून १९९४ को महान अतिशय एवं चमत्कारिक क्षेत्र, सांगानेर (जयपुर) में संगोष्ठी आयोजित करके आचार्य ज्ञानसागरजी के कृत्तित्व को सरस्वती की महानतम साधना के रूप में अंकित किया था, उसे अखिल भारतवर्षीय विद्वत्त समाज के समक्ष उजागर कर विद्वानों ने भारतवर्ष के सरस्वती पुत्र का अभिनन्दन किया है। इस संगोष्ठी में आचार्य श्री के साहित्य-मंथन से जो नवनीत प्राप्त हुवा, उस नवनीत की स्निगधता से सम्पूर्ण विद्वत्त मण्डल इतना आनन्दित हुआ कि पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी के सामने अपनी अतरंग भावना व्यक्त की, कि- पूज्य ज्ञानसागरजी महाराज के एक एक महाकाव्य पर एक एक संगोष्ठी होना चाहिए, क्योंकि एक एक काव्य में इतने रहस्मय विषय भरे हुए हैं कि उनके समस्त साहित्य पर एक संगोष्ठी करके भी उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। विद्वानों की यह भावना तथा साथ में पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के दिल में पहले से ही गुरु नाम गुरु के प्रति,स्वभावतः कृतित्व और व्यक्तित्व के प्रति प्रभावना बैठी हुई थी, परिणामस्वरुप सहर्ष ही विद्वानों और मुनि श्री के बीच परामर्श एवं विचार विमर्श हुआ और यह निर्णय हुआ कि आचार्य श्री ज्ञानसागरजी के पृथक पृथक महाकाव्य पर पृथक पृथक रुप से अखिल भारतवर्षीय संगोष्ठी आयोजित की जावे। उसी समय विद्वानों ने मुनि श्री सुधासागर जी के सान्निध्य मे बैठकर यह भी निर्णय लिया कि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज का समस्त साहित्य पुनः प्रकाशित कराकर विद्वानों को, पुस्तकालयों और विभिन्न स्थानों के मंदिरों को उपलब्ध कराया जावे।

साथ में यह भी निर्णय लिया गया कि द्वितीय संगोष्ठी में वीरोदय महाकाव्य को विषय बनाया जावे। इस महाकाव्य में से लगभग ५० विषय पृथक पृथक रुप से छाँटे गये, जो पृथक पृथक मूर्धन्य विद्वानों के लिए आलेखित करने हेतु प्रेषित किये गये है। आशा है कि निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार मुनि श्री के ही सान्निध्य में द्वितीय अखिल भारतवर्षीय विद्वत्त संगोष्ठी वीरोदय महाकाव्य पर माह अक्टूबर ९४ मे अजमेर में सम्पन्न होने जा रही है जिसमें पूज्य मुनि श्री का संरक्षण, नेतृत्व एवं मार्गदर्शन सभी विद्वानों को निश्चित रुप से मिलेगा।

हमारे अजमेर समाज का भी परम सौभाग्य है कि यह नगर आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज की साधना स्थली एवं उनके परम सुयोग्य शिष्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज की दीक्षा स्थली रही है। अजमेर के सातिशय पुण्य के उदय के कारण हमारे आराध्य पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने अपने परम सुयोग्य शिष्य, प्रखर प्रवक्ता, तीर्थोद्धारक, युवा मनिषी, पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज, पूज्य क्षुल्लक १०५ श्री गंभीर सागरजी एवं पूज्य क्षुल्लक १०५ श्री धैर्य सागर जी महाराज को, हम लोगों की भक्ति भावना एवं उत्साह को देखते हुए इस संघ को अजमेर चातुर्मास करने की आज्ञा प्रदान कर हम सबको उपकृत किया है।

परम पूज्य मुनिराज श्री सुधासागरजी महाराज का प्रवास अजमेर समाज के लिए एक वरदान सिद्ध हो रहा है। आजतक के पिछले तीस वर्षों के इतिहास में धर्मप्रेमी सज्जनों व महिलाओं का इतना जमघट, इतना समुदाय देखने को नहीं मिला जो एक मुनि श्री के प्रवचनों को सुनने के लिए समय से पूर्व ही आकर अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं। सोनी जी की नसियाँ मे प्रवचन सुनने वाले जैन-अजैन समुदाय की इतनी भीड़ आती हैं कि तीन-तीन चार-चार स्थानों पर "क्लोज-सर्किट टी.वी." लगाने पड़ रहे हैं। श्रावक संस्कार शिविर जो पर्यूषण पर्व में आयोजित होने जा रहा है। अपने आपकी एक एतिहासिक विशिष्ठता है। अजमेर समाज के लिए यह प्रथम सौभाग्यशाली एवं सुनहरा अवसर होगा जब यहाँ के बाल-आबाल अपने आपको आगमानुसार संस्कारित करेंगे।

महाराज श्री के व्यक्तित्व का एवं प्रभावपूर्ण उद्‌बोधन का इतना प्रभाव पड़ रहा है कि दान दातार और धर्मप्रेमी निष्ठावान व्यक्ति आगे बढ़कर महाराज श्री के सानिध्य में होने वाले कार्यक्रमों को मूर्त रुप देना चाहते हैं। अक्टूबर माह के मध्य अखिल भारतवर्षीय विद्वत-संगोष्ठी का आयोजन भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक विशिष्ठ कार्यक्रम है जिसमें पूज्य आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के द्वारा रचित वीरोदय महाकाव्य के विभिन्न विषयों पर ख्याति प्राप्त विद्वान अपने आलेख का वाचन करेंगे। काश यदि पूज्य मुनिवर सुधासागरजी महाराज का संसघ यहाँ अजमेर में पर्दापण न हुआ होता तो हमारा दुर्भाग्य किस सीमा तक होता, विचारणीय है ।

पूज्य मुनिश्री के प्रवचनों का हमारे दिल और दिमाग पर इतना प्रभाव हुआ कि सम्पूर्ण दिगम्बर समाज अपने वर्ग विशेष के भेदभावों को भुलाकर जैन शासन के एक झंडे के नीचे आ गये । यहीं नहीं हमारी दिगम्बर जैन समिति ने समाज की ओर से पूज्य आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के समस्त साहित्य का पुनः प्रकाशन कराने का संकल्प मुनिश्री के सामने व्यक्त किया । मुनि श्री का आशीर्वाद मिलते ही समाज के दानवीर लोग एक एक पुस्तक को व्यक्तिगत धनराशि से प्रकाशित कराने के लिए आगे आये ताकि वे अपने राजस्थान में ही जन्मे सरस्वती-पुत्र एवं अपने परमेष्ठी के प्रति पूजांजली व्यक्त कर अपने जीवन में सातिशय पुण्य प्राप्त कर तथा देव, शास्त्र, गुरु के प्रति अपनी आस्था को बलवती कर अपना अपना आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सके।

इस प्रकार आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के साहित्य की आपूर्ति की समस्या की पूर्ती इस चातुर्मास में अजमेर समाज ने सम्पन्न की है उसके पीछे एक ही भावना है कि अखिल भारतवर्षीय जन मानस एवं विद्वत जन इस साहित्य का अध्ययन, अध्यापन कर सृष्टी की तात्विक गवेषणा एवं साहित्यक छटा से अपने जीवन को सुरभित करते हुए कृत कृत्य कर सकेंगे।

इसी चातुर्मास के मध्य अनेकानेक सामाजिक एवं धार्मिक उत्सव भी आयेगें जिस पर समाज को पूज्य मुनि श्री से सारगर्भित प्रवचन सुनने का मौका मिलेगा । आशा है इस वर्ष का भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव एवं पिच्छिका परिवर्तन कार्यक्रम अपने आप में अनूठा होगा ।.जो शायद पूर्व की कितनी ही परम्पराओं से हटकर होगा ।

अन्त में श्रमण संस्कृति के महान साधक महान तपस्वी, ज्ञानमूर्ति, चारित्र विभूषण, बाल ब्रह्मचारी परम पूज्य आचार्य श्री १०८ श्री ज्ञानसागर जी महाराज के पुनीत चरणों में तथा उनके परम सुयोग्यतम शिष्य चारित्र चक्रवर्ती पूज्य आचार्य श्री १०८ श्री विद्यासागर जी महाराज और इसी कड़ी में पूज्य मुनि श्री १०८ श्री सुधासागर जी महाराज, क्षुल्लकगण श्री गम्भीर सागर जी एवं श्री धैर्य सागरजी महाराज के पुनीत चरणों में नत मस्तक होता हुआ शत्-शत् वंदन, शत्-शत् अभिनंदन करता हुआ अपनी विनीत विनयांजली समर्पित करता हूँ ।

इन उपरोक्त भावनाओं के साथ प्राणी मात्र के लिए तत्वगवेषणा हेतु यह ग्रन्थ समाज के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं । यह **सुदर्शनोदय** श्री वाणीभूषण बा. ब्र. पं. भूरामलजी शास्त्री ने लिखा था, यही ब्र. बाद में आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के नाम से जगत विख्यात हुए।

इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण वीर निर्माण संवत् २४९३ में मुनि श्री ज्ञानसागर जी जैन ग्रंथमाला ब्यावर राजस्थान से प्रकाशित हुआ था । उसी प्रकाशन को पुनः यथावत प्रकाशित करके इस ग्रन्थ की आपूर्ती की पूर्ती की जा रही है । अतः पूर्व प्रकाशक का दिगम्बर जैन समाज अजमेर आभार व्यक्त करती है । एवं इस द्वितीय संस्करण में दातारों का एवं प्रत्यक्ष एवं परोक्ष से जिन महानुभोवों ने सहयोग दिया है, उनका भी आभार मानते हैं ।

इस ग्रन्थ की महिमा प्रथम संस्करण से प्रकाशकीय एवं प्रस्तावना में अतिरिक्त है । जो इस प्रकाशन में भी यथावत संलग्न हैं ।

विनीत

श्री दिगम्बर जैन समिति

एवं सकल दिगम्बर जैन समाज

अजमेर (राज)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री ज्ञानसागरजी महाराज
सांख्यिकी – परिचय

प्रस्तुति – कमल कुमार जैन

पारिवारिक परिचय :

जन्म स्थान – राणोली ग्राम (जिला सीकर) राजस्थान; जन्म काल – सन् १८९१
पिता का नाम – श्री चतुर्भुज जी; माता का नाम – श्रीमती घृतवरी देवी
गोत्र – छाबड़ा (खंडेलवाल जैन); बाल्यकाल का नाम – भूरामल जी
भ्रात परिचय – पाँच भाई (छगनलाल/भूरामल/गंगाप्रसाद/गौरीलाल/एवं देवीदत्त)
पिता की मृत्यु – सन १९०२ में शिक्षा – प्रारम्भिक शिक्षा गांव के विद्यालय में एवं शास्त्रि स्तर की शिक्षा स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस (उ. प्र.) से प्राप्त की ।

साहित्यिक परिचय :

संस्कृत भाषा में

- ※ दयोदय / जयोदय / वीरोदय / (महाकाव्य)
- ※ सुदर्शनयोदय / भद्रोदय / मुनि मनोरंजनाशीति – (चरित्र काव्य)
- ※ सम्यकत्व सार शतक (जैन सिद्धान्त)
- ※ प्रवचन सार प्रतिरुपक (धर्म शास्त्र)

हिन्दी भाषा में

- ※ ऋषभावतार / भाग्योदय / विवेकोदय / गुण सुन्दर वृत्तान्त (चरित्र काव्य)
- ※ कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन / सचित्तविवेचन / तत्वार्थसूत्र टीका / मानव धर्म (धर्मशास्त्र)
- ※ देवांगम स्तोत्र / नियमसार / अष्टपाहुड़ (पद्यानुवाद)
- ※ स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैन धर्म और जैन विवाह विधि

चारित्र पथ परिचय :

- ※ सन १९४७ (वि. सं. २००४) में व्रतरुप से ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की ।
- ※ सन १९५५ (वि. सं. २०१२) में क्षुल्लक दीक्षा धारण की ।
- ※ सन १९५७ (वि. सं. २०१४) में ऐलक दीक्षा धारण की ।
- ※ सन १९५९ (वि. सं. २०१६) में आचार्य १०८ श्री शिवसागर महाराज से उनके प्रथम शिष्य के रुप में मुनि दीक्षा धारण की । स्थान खानिया (जयपुर) राज । आपका नाम मुनि ज्ञानसागर रखा गया ।
- ※ ३० जून सन् १९६८ (आषाढ़ शुक्ला ५ सं. २०२५) को ब्रह्मचारी विद्याधर जी को मुनि पद की दीक्षा दी जो वर्तमान में आचार्य श्रेष्ठ विद्यासागर जी के रुप में विराजित है ।
- ※ ७ फरवरी सन् १९६९ (फागुन वदी ५ सं. २०२५) को नसीराबाद (राजस्थान) में जैन समाज ने आपको आचार्य पद से अलंकृत किया एवं इस तिथि को विवेकसागर जी को मुनिपद की दीक्षा दी ।
- ※ संवत् २०२६ को ब्रह्मचारी जमनालाल जी गंगवाल खाचरियावास (जिला-सीकर) रा. को क्षुल्लक दीक्षा दी और क्षुल्लक विनयसागर नाम रखा । बाद में क्षुल्लक विनयसागर जी ने मुनिश्री विवेकसागर जी से मुनि दीक्षा ली और मुनि विनयसागर कहलाये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❋ संवत् २०२६ में ब्रह्म. पन्नालाल जी को केशरगंज अजमेर (राज.) में मुनि दीक्षा पूर्वक समाधि दी ।

❋ संवत् २०२६ में बनवारी लाल जी को मुनि दीक्षा पूर्वक समाधि दी ।

❋ २० अक्टूबर १९७२ को नसीराबाद में ब्रह्म. दीपचंदजी को क्षुल्लक दीक्षा दी, और क्षु. स्वरुपानंदजी नाम रखा जो कि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के समाधिस्थ पश्चात् सन् १९७६ (कुण्डलपुर) तक आचार्य विद्यासागर महाराज के संघ में रहे ।

❋ २० अक्टूबर १९७२ को नसीराबाद जैन समाज ने आपको चारित्र चक्रवर्ती पद से अलंकृत किया ।

❋ क्षुल्लक आदिसागर जी, क्षुल्लक शीतल सागर जी (आचार्य महावीर कीर्ति जी के शिष्य भी आपके साथ रहते थे ।

❋ पांडित्य पूर्ण, जिन आगम के अतिश्रेष्ठ ज्ञाता आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने अपने जीवन काल में अनेकों श्रमण/आर्यिकाएँ/ऐलक/क्षुल्लक/ब्रह्मचारी/श्रावकों को जैन आगम के दर्शन का ज्ञान दिंया। आचार्य श्री वीर सागर जी/आचार्य श्री शिवसागर जी/आचार्य श्री धर्मसागर जी/आचार्य श्री अजित सागर जी / एवं वर्तमान श्रेष्ठ आचार्य विद्यासागर जी इसके अनुपम उदाहरण है ।

आचार्य श्री के चातुर्मास परिचय

❋ संवत् २०१६ - अजमेर सं. २०१७ - लाडनू; सं. २०१८ - सीकर (तीनों चातुर्मास आचार्य शिवसागर जी के साथ किये)

❋ संवत २०१९ - सीकर; २०२० - हिंगोनिया (फुलेरा); सं. २०२१ - मदनगंज - किशनगढ़ सं. २०२२ - अजमेर; सं. २०२३ - अजमेर, सं. २०२४ - मदनगंज-किशनगढ़ सं. २०२५ - अजमेर (सोनी जी की नसियाँ); सं. २०२६ - अजमेर (केसरगंज); सं. २०२७ - किशनगढ़ रैनवाल; सं. २०२८ - मदनगंज-किशनगढ़ सं. २०२९ - नसीराबाद।

बिहार स्थल परिचय

❋ सं. २०१२ से सं. २०१६ तक क्षुल्लक/ ऐलक अवस्था में - रोहतक/हासी/हिसार/गुउगाँवा/रिवाड़ी/ एवं जयपुर ।

❋ सं. २०१६ से सं. २०२९ तक मुनि/आचार्य अवस्था में - अजमेर/लाडनू/सीकर/हिंगोनिया/फुलेरा/मदनगंज-किशनगढ़/नसीराबाद/बीर/रुपनगढ़/मरवा/छोटा नरेना/साली/साकून/हरसोली/छप्या/दूदू/मोजमाबाद/चोरु/झाग/ सांवरदा/खंडेला/हयोढ़ी/कोठी/मंडा-भीमसींह/भींडा/किशनगढ़-रैनवाल/कांस/श्यामगढ़/मारोठ/सुरेरा/दांता/कुली/ खाचरियाबाद एवं नसीराबाद ।

अंतिम परिचय

❋ आचार्य पद त्याग एवं संल्लेखना व्रत ग्रहण	- मंगसर वदी २ सं. २०२९ (२२ नवम्बर सन् १९७२)
❋ समाधिस्थ	- ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या सं. २०३० (शुक्रवार १ जून सन् १९७३)
❋ समाधिस्थ समय	- पूर्वान्ह १० बजकर ५० मिनिट ।
❋ सल्लेखना अवधि	- ६ मास १३ दिन (मिति अनुसार) ६ मास १० दिन (दिनांक अनुसार)

दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अतिश्रेष्ठ अनुयायी के चरणों में श्रद्धेव नमन् । शत् शत् नमन ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय

जैन साहित्य और इतिहास के मर्मज्ञ एवं अनुसंधाता स्वर्गीय सरस्वतीपुत्र पं. जुगल किशोर जी मुख्तार "युगवीर" ने अपनी साहित्य इतिहास सम्बन्धी अनुसन्धान- प्रवृत्तियों को मूर्त्तरुप देने के हेतु अपने निवास सरवासा (सहारनपुर) में "वीर सेवा मंदिर" नामक एक शोध संस्था की स्थापना की थी और उसके लिए क्रीत विस्तृत भूखण्ड पर एक सुन्दर भवन का निर्माण किया था, जिसका उद्घाटन वैशाख सुदि 3 (अक्षय-तृतीया), विक्रम संवत् 1993, दिनांक 24 अप्रैल 1936 में किया था । सन् 1942 में मुख्तार जी ने अपनी सम्पत्ति का "वसीयतनामा" लिखकर उसकी रजिस्ट्री करा दी थी । "वसीयतनामा" में उक्त "वीर सेवा मन्दिर" के संचालनार्थ इसी नाम से ट्रस्ट की भी योजना की थी, जिसकी रजिस्ट्री 5 मई 1951 को उनके द्वारा करा दी गयी थी । इस प्रकार पं. मुख्तार जी ने वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट की स्थापना करके उनके द्वारा साहित्य और इतिहास के अनुसन्धान कार्य को प्रथमतः अग्रसारित किया था ।

स्वर्गीय बा. छोटेलालजी कलकत्ता, स्वर्गीय ला. राजकृष्ण जी दिल्ली, रायसाहब ला. उल्फतरायजी दिल्ली आदि के प्रेरणा और स्वर्गीय पूज्य क्षु. गणेश प्रसाद जी वर्णी (मुनि गणेश कीर्ति महाराज) के आशीर्वाद से सन् 1948 में श्रद्धेय मुख्तार साहब ने उक्त वीर सेवा मन्दिर का एक कार्यालय उसकी शाखा के रुप में दिल्ली में,उसके राजधानी होने के कारण अनुसन्धान कार्य को अधिक व्यापकता और प्रकाश मिलने के उद्देश्य से, राय साहब ला.उल्फतरयजी के चैत्यालय में खोला थां ।पश्चात् बा. छोटे लालजी,साहू शान्तिप्रसादजी और समाज की उदारतापूर्ण आर्थिक सहायता से उसका भवन भी बन गया, जो 21 दरियागंज दिल्ली में स्थित है और जिसमें "अनेकान्त" (मासिक) का प्रकाशन एवं अन्य साहित्यिक कार्य सम्पादित होते हैं । इसी भवन में सरसावा से ले जाया गया विशाल ग्रन्थागार है, जो जैनविद्या के विभिन्न अङ्गो पर अनुसन्धान करने के लिये विशेष उपयोगी और महत्वपूर्ण है ।

वीर-सेवा मन्दिर ट्रस्ट गंथ-प्रकाशन और साहित्यानुसन्धान का कार्य कर रहा है । इस ट्रस्ट के समर्पित वयोवृद्ध पूर्व मानद मंत्री एवं वर्त्तमान में अध्यक्ष डा. दरबारी लालजी कोठिया बीना के अथक परिश्रम एवं लगन से अभी तक ट्रस्ट से 38 महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है । आदरणीय कोठियाजी के ही मार्गदर्शन में ट्रस्ट का संपूर्ण कार्य चल रहा है । अतः उनके प्रति हम हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करते हैं और कामना करते हैं कि वे दीर्घायु होकर अपनी सेवाओं से समाज को चिरकाल तक लाभान्वित करते रहें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ट्रस्ट के समस्त सदस्य एवं कोषाध्यक्ष माननीय श्री चन्द संगल एटा, तथा संयुक्त मंत्री ला.सुरेशचन्द्र जैन सरसावा का सहयोग उल्लेखनीय है । एतदर्थ वे धन्यवादार्ह हैं ।

संत शिरोमणि आचार्य विद्यासागरजी के परम शिष्य पूज्य मुनि 108 सुधासागर जी महाराज के आर्शीवाद एवं प्रेरणा से दिनांक 9 से 11 जून 1994 तक श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी सागांनेर में आचार्य विद्यासागरजी के गुरु आचार्य प्रवर ज्ञानसागरजी महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व परअखिल भारतीय विद्वत संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। इस संगोष्ठी में निश्चय किया था कि आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के समस्त ग्रन्थों का प्रकाशन किसी प्रसिद्ध संस्था से किया जाय । तदनुसार समस्त विद्वानों की सम्मति से यह कार्य वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट ने सहर्ष स्वीकार कर सर्वप्रथम वीरोदयकाव्य के प्रकाशन की योजना बनाई और निश्चय किया कि इस काव्य पर आयोजित होने वाली गोष्ठी के पूर्व इसे प्रकाशित कर दिया जाय । परम हर्ष है कि पूज्य मूनि 108 सुधासागर महाराज का संसघ चातुर्मास अजमेर में होना निश्चय हुआ और महाराज जी के प्रवचनों से प्रभावित होकर श्री दिगम्बर जैन समिति एवम् सकल दिगम्बर जैन समाज अजमेर ने पूज्य आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज के वीरोदय काव्य सहित समस्त ग्रन्थों के प्रकाशन एवं संगोष्ठी का दायित्व स्वयं ले लिया और ट्रस्ट को आर्थिक निर्भार कर दिया । एतदर्थ ट्रस्ट अजमेर समाज का इस जिनवाणी के प्रकाशन एवं ज्ञान के प्रचार प्रसार के लिये आभारी है ।

प्रस्तुत कृति **जयोदय महाकाव्य** (पूर्वार्ध) के प्रकाशन में जिन महानुभाव ने आर्थिक सहयोग किया तथा मुद्रण में निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्ट्स, अजमेर ने उत्साह पूर्वक कार्य किया है। वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं ।

अन्त में उस संस्था के भी आभारी है जिस संस्था ने पूर्व में यह ग्रन्थ प्रकाशित किया था । अब यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है । अतः ट्रस्ट इसको प्रकाशित कर गौरवान्वित है । जैन जयतुं शासनम् ।

दिनाङ्क : 9-9-1994

(पर्वाधिराज पर्यूषण पर्व)

डॉ. शीतल चन्द जैन
मानद मंत्री
वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट
1314 अजायव घर का रास्ता
किशनपोल बाजार, जयपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम संस्करण से

सम्पादकीय

परम पूज्य श्री १०८ मुनि श्री ज्ञानसागरजी महाराज के द्वारा संस्कृत भाषा में निर्मित यह सुदर्शनोदय काव्य पाठकों के कर कमलों में उपस्थित है। ब्रह्मचर्य एवं शीलव्रत में अनुपम प्रसिद्धि को प्राप्त सुदर्शन सेठ का चरित इसमें वर्णन किया गया है। अभी तक इनके चरित का वर्णन करने वाले जितने भी ग्रन्थ या कथानक मिले हैं, उन सब में काव्य की दृष्टि से इस सुदर्शनोदय का विशेष महत्त्व है, इस बात को पाठकगण इसे पढ़ते हुए स्वयं ही अनुभव करेंगे। संस्कृत वाङ्मय में जैन एवं जैनेतर विद्वानों के द्वारा जितने भी काव्य-ग्रन्थ रचे गये हैं, उनमें भी प्रस्तुत सुदर्शनोदय की रचना के समान अन्य रचनाएं बहुत ही कम दृष्टिगोचर होती हैं। संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध छन्दों में रचना करना बहुत बड़े पाण्डित्य का कार्य है, उसमें भी हिन्दी भाषा के अनेक प्रसिद्ध छन्दों में एवं प्रचलित राग-रागणियों में तो संस्कृत काव्य की रचना करना और भी महान् पाण्डित्य की अपेक्षा रखता है। हम देखते हैं कि मुनिश्री को अपने इस अनुपम प्रयास में पूर्ण सफलता मिली है और उनकी प्रस्तुत रचना से संस्कृत वाङ्मय की और भी अधिक श्रीवृद्धि हुई है। जहां तक मेरी जानकारी है, इधर पांच सौ वर्षों के भीतर ऐसी सुन्दर एवं उत्कृष्ट काव्य-रचना करने वाला अन्य कोई विद्वान् जैन सम्प्रदाय में नहीं हुआ है। ऐसी अनुपम रचना के लिए जैन सम्प्रदाय ही नहीं, सारा भारतीय विद्वत्समाज मुनिश्री का आभारी है।

मूल ग्रन्थ के मुद्रित फार्म हमने कुछ विशिष्ट विद्वानों के पास प्रस्तावना लिखने और अपना अभिप्राय प्रकट करने के लिए भेजे थे। हमें हर्ष है कि उनमें से काशी के दो विद्वानों ने हमारे निवेदन पर अपना अभिप्राय लिखकर भेजा है। उनमें प्रथम विद्वान् हैं- श्रीमान पं. गोविन्द नरहरि वैजापुरकर, एम. ए., न्याय वेदान्त-साहित्याचार्य। आप काशी के श्री स्याद्वाद महाविद्यालय में संस्कृताध्यापक और श्री भारत धर्म महामण्डल के प्रमुख संस्कृत पत्र 'सूर्योदय' के सम्पादक हैं। आपने संस्कृत में अपना अभिप्राय लिखकर भेजा है, जो कि 'आमुख' शीर्षक से प्रस्तावना के पूर्व हिन्दी अनुवाद के साथ दिया जा रहा है। दूसरे विद्वान् हैं - वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के जैन दर्शनाध्यापक श्रीमान् पं. अमृतलाल जी साहित्याचार्य। आपने काव्य को कसौटी पर कसते हुए प्रस्तुत काव्य की मीमांसा लिखकर भेजी है, जो कि आगे 'काव्य-कसौटी' शीर्षक से दी जा रही है, जिसमें आपने मूल ग्रन्थ को शत-प्रतिशत शुद्ध सत्काव्य बतलाया है । हम उक्त दोनों ही महानुभावों के अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होंने हमारी प्रार्थना पर समय निकाल कर अपने अभिमत लिखकर भेजे।

सुदर्शनोदयकार को अन्त्य अनुप्रास रखने के लिए कितने ही स्थलों पर अनेक कठिन और अप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है। जैसे-प्रथम सर्ग के सातवें श्लोक में 'गण्ड' शब्दके साथ समानता रखने के लिए 'पण्ड' शब्द का प्रयोग किया है. बहुत कम ही विद्वानों को ज्ञात होगा कि 'पण्ड' शब्द नपुंसकार्थक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, विश्वलोचन कोष में 'पण्ड:षण्ढे' शब्द पाया जाता है। ग्रन्थकार ने अपनी प्रायः सभी रचनाओं में इसी कोष-गत शब्दों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार लोग 'तल्प' शब्द के 'शय्या' अर्थ से ही परिचित हैं, पर यह शब्द स्त्री-वाचक भी है, यह इसी कोष से प्रमाणित है । इसलिए विद्वानों को यदि किसी खास शब्द के अर्थ में कुछ सन्देह प्रतीत हो, तो उसके अर्थ का निर्णय वे उक्त कोष से करें।

प्रस्तुत काव्य के निर्माता ने हमें बताया कि पंचम सर्ग के प्रारम्भ में जो प्रभाती दी गई है, उसके प्रथम चरण के 'अहो प्रभातो जातो भ्रातो' वाक्य में प्रभात शब्द के नपुंसकलिंग होते हुए भी 'भ्रातृ' शब्द के पुल्लिंग होने के कारण एक सा अनूप्रास रखने के लिए उसे पुल्लिंग रूप से प्रयोग करना पड़ा है। इसी प्रकार अनुप्रास के सौन्दर्य की दृष्टि से सुन्दर, उत्तर और मधुर आदि शब्दों के स्थान में क्रमशः सुन्दल, उत्तल और मधुल आदि शब्दों का प्रयोग किया गया हैं, क्योंकि संस्कृत साहित्य में 'र' के स्थान में 'ल' और 'ल' के स्थान में 'र' का प्रयोग विधेय माना गया है।

सुदर्शनोदय की मूल रचना के साथ हिन्दी में भी विस्तृत व्याख्या मुनिश्री ने ही लिखी है। पर पुरानी शैली में लिखी होने के कारण मुनिश्री की आज्ञा से उसी के आधार पर यह नया अनुवाद मैंने किया है। अत्यन्त सावधानी रखने पर भी मूल श्लोकों के अति क्लिष्ट एवं गम्भीरार्थक होने से, तथा श्लिष्ट एवं द्व्यर्थक शब्दों के प्रयोगों की बहुलता से तीन स्थलों पर अनुवाद में कुछ स्खलन रह गया है, जिसकी ओर मुनिश्री ने ही मेरा ध्यान आकृष्ट किया और उनके संकेतानुसार उन स्थलों का संशोधित अर्थ परिशिष्ट में दिया गया ।

यहां यह लिखते हुए मुझे कोई संकोच नहीं है कि साहित्य मेरा प्रधान विषय नहीं है। फिर ऐसे कठिन काव्य का हिन्दी अनुवाद करना तो और भी कठिनतर कार्य है। तथापि हिन्दी अनुवाद में मूल के भाव को व्यक्त करने में जो कुछ भी थोड़ी बहुत सफलता मुझे मिली है, उसका सारा श्रेय मुनिश्री द्वारा लिखित हिन्दी व्याख्या को ही है। और जो कमी या त्रुटि रह गई है वह मेरी है। प्रूफ-संशोधन में सावधानी रखने पर भी प्रेस की असावधानी से अनेक अशुद्धियां रह गई है, जिनका संशोधन शुद्धि-पत्र में किया गया है। पाठकों से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का स्वाध्याय करने के पूर्व रह गई अशुद्धियों को शुद्ध करके पढ़ें।

लोगों की कथनी और करनी में बहुधा अन्तर देखा जाता है। लोकोक्ति है – 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते जन न घनेरे।' पर मुनिश्री इसके अपवाद हैं। उन्होंने प्रस्तुत काव्य में गृहस्थ के लिए जिस धर्म का उपदेश दिया, उसे उन्होंने गृह-दशा में स्वयं पालन किया है। तथा जिस मुनि धर्म का उपदेश दिया, आज उसे वे स्वयं पालन कर रहे हैं।

सुदर्शनोदय के समान ही भगवान् महावीर के चरित का आश्रय लेकर आपने 'वीरोदय काव्य' की भी एक उत्तम रचना की है, जो हिन्दी अनुवाद के साथ बहुत शीघ्र पाठकों को कर-कमलों में पहुँचेगा। आपके द्वारा रचित जयोदय महाकाव्य एक बार मूलमात्र प्रकाशित हो चुका है। विद्वत्समाज ने उसका बहुत आदर किया और महाराज से उसकी संस्कृति टीका लिखने के लिए प्रेरणा की। महाराज ने उसके ४-५ कठिन सर्गों की संस्कृत टीका पहिले कर रखी थी। हमारी प्रार्थना पर पिछले दिनों आपने उसके शेष सर्गों की भी संस्कृत टीका लिख दी है। उसके हिन्दी अनुवाद के लिए भी प्रयत्न चालू है और हम आशा करते हैं कि वीरोदय के प्रकाशित होने के अनन्तर ही जयोदय महाकाव्य भी संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद के साथ शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्त में विद्वत्समाज से हमारा निवेदन है कि मुनिश्री ने जिस अनवरत श्रम से जीवन की अनेक अमूल्य घड़ियों में एकाग्र होकर यह अनुपम साधना जिस उद्देश्य से की है, उसे कार्य रुप में परिणत करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रस्तुत ग्रन्थ को जैन परीक्षालयों एवं संस्कृत विश्वविद्यालयों के पठनक्रम में निर्वाचित कराकर, पठनपाठन में स्थान देकर और मुनिश्री की भावना को कार्यरुप में परिणत कर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करें।

ब्यावर
२५.११.६५

हीरालाल शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम संस्करण से

आमुखम्

पूर्वाश्रमे बाल ब्रह्मचारिभिः श्रीभूरामलाभिधैः सपदि श्रीपूज्य मुनिज्ञानसागरा भिधैर्विरचितं 'सुदर्शनोदय' नामकाव्यमस्माभिः विहङ्गमदृशा समवलोकितम्। नवसर्गात्मकमिदं चम्पापुरनगरस्थ-सुदर्शन-वणिजश्चरितं वर्णयत् जिनसम्मतां मोक्षलक्ष्मीं पुष्णाति। धीरोदात्तस्य नायकस्य कथावस्तु एव एतादृशं कौतूहलावहं कविना कवयितुं निर्वाचितं यत्काव्यस्यास्य आद्यन्तपाठस्य औत्सुक्यं न शमयति, प्रतिसर्ग मुत्तरोत्तरं तद्वर्धत एव। प्रसन्नगम्भीरया वैदर्भीरीत्या प्रवहति सारस्वतस्रोतसि सहृदय-पाठक मनोमीनाः सविलासं विवर्तनानि आवर्तयन्ति। अनुप्रास-श्लेषोपमोत्प्रेक्षाविरोधाभासादयोऽलङ्कारास्तत्सविशेषमुज्ज्वलयन्ति भूषयन्ति च। श्यामकल्याण-कव्वाली-प्रभाती-सारङ्ग-काफी-प्रभृतिरागाणां कलध्वनिस्तस्य स्वाभाविकं कलकलं द्विगुणयत् काव्यान्तरदुर्लभं दिव्यं सङ्गीतकं रचयति। महाकाव्यानुगुणा नगरवर्णन-नायिकावर्णन-विलासवर्णन-निसर्ग वर्णनादयो गुणा अपि सहजत एव यथापसङ्गमत्र गुम्फिताः। सत्यपि महाकाव्येऽस्मिन् जैनाचार दर्शनाम्भोधिमथनसमुत्थनवनीतं तथा कौशलेन समालिम्पितं यथाऽत्र काव्यस्य कान्तासम्मितोपयोगिता मूर्तिमती परिदृश्येत। न केवलमिदं दर्शनम्, धर्मश्च भगवतो जिनराजस्य मुनेः श्रावकादेर्वा मोक्षमार्गाधिष्ठितस्यैव मुखादुपदिष्टः कविना, विलासिनी ब्राह्मणी-महिषी-नर्तकीप्रभृतीनां शुद्धसांसारिकविषयलोलुपानां मुखेभ्योऽपि समुपदिष्टो व्यञ्जयति धर्म-दर्शननिर्णये सदैव प्रविवेकिना भाव्यम् आपात-दर्शन तत्र कदाचिद भ्रामकमपि सम्भवेत्। अन्यच्च- तदा तादृशा परमवैषयिका अपि जनाः शास्त्रदर्शनतत्त्वज्ञा आसन्निति तेषां बहुलप्रचारमपि संसूचयति।

इत्थं काव्यस्यास्य परिशीलनेन समस्तकाव्यसुलभसौन्दर्यस्य दर्शनेऽपि मूलतो वैराग्यस्य तेन च मोक्षलक्ष्म्या अधिगम एव कवेः प्रतिपाद्यतरं प्रमुखं तत्त्वं प्रतिभाति। यच्च श्रीमतां मुनिवराणां ज्ञानसागरदेवानां अद्य यावत् व्यापिनो जीवनस्य सर्वथा समनुरुपम्। महानुभावा इमे वाराणसेय स्याद्वादमहाविद्यालयस्य भूतपूर्वस्नातकाः बालब्रह्मचारिणः वाग्देव्याः सहजकृपापात्राः। छात्रजीवनेऽपि एभिःपरावलम्बिता नानुसृता। किमपि कार्यं कृत्वा ततो लब्धं धनं स्थानीय-छात्रालये प्रतिकररुपेण दत्त्वैव उशन्ति स्म। नैषधीयचरितवत् महाकाव्यनिर्माणस्य परमासमुत्कण्ठाऽऽसीत् भवतां हृदि। तदनुसारं भवद्भिः जयोदयनामकं काव्यं विरचितं चिरप्रकाशितञ्च। ततः परं मुनिवर्यैंदरिदं काव्यं निर्मितम्। काव्यस्यास्य भाषानुवादोऽपि पाण्डित्यपूर्णः सविशेषं कवेर्भावाभिव्यञ्जकः। वयमस्य काव्यस्य बहुशः प्रचारं कामयमानाः कविवरस्य स्वागतं व्याहरामः।

१९.११. ६६
घासीटीला वाराणसी
साहित्याध्यापकः
श्री स्याद्वादमहाविद्यालय काशी

गोविन्द नरहरि वैजापुरकरः
एम.ए. न्याय-वेदान्त साहित्याचार्यः
'सूर्योदय' सम्पादकः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम संस्करण से

हिन्दी अनुवाद:

गृहाश्रम में बाल ब्रह्मचारी श्री भूरामल नाम से प्रसिद्ध और अब श्री पूज्य मुनि ज्ञानसागर नाम से कहे जाने वाले महापुरुष के द्वारा विरचित इस सुदर्शनोदय नामक काव्य को हमने विहङ्गम दृष्टि से देखा। नौ सर्गोंवाला यह काव्य चम्पापुरी के सुदर्शन सेठ का चरित वर्णन करता हुआ जिनोपदिष्ट मोक्ष-लक्ष्मी का पोषण करता है। प्रस्तुत काव्य के धीरोदात्त नायक की ऐसी कौतुहल-जनक कथा-वस्तु कवि ने अपनी कविता के लिए चुनी है कि वह इस काव्य के आद्योपान्त पढ़ने की उत्सुकता को शान्त नहीं करती, प्रत्युत उत्तरोत्तर प्रतिसर्ग वह बढ़ती ही जाती हैं। प्रसन्न एवं गम्भीर वैदर्भी रीति से प्रवहमान इस सरस्वती नदी के प्रवाह में सहृदय पाठकों के मनरुप मीन विलासपूर्वक उद्वर्तन-निवर्तन करने लगते हैं । अनुप्रास श्लेष, उपमा, उत्पेक्षा और विरोधाभास आदि अलङ्कार, इसे विशेष रूप से उज्जवल और विभूषित करते हैं । श्यामकल्याण, कव्वाली, प्रभाती, सारंग, काफी इत्यादी रागों की सुन्दर ध्वनि उसकी स्वाभाविक सुन्दरता को दुगुणी करती हुई अन्य काव्यों में दुर्लभ ऐसे दिव्य संगीत को रचती है। महाकाव्य के अनुकूल नगर-वर्णन, नायिका-वर्णन, विलास-वर्णन, निसर्ग-वर्णन आदि गुण भी सहज रुप से इस काव्य में यथा स्थान प्रसंग के अनुसार गूंथे गये हैं। महाकाव्य के होते हुए भी इसमें जैन आचार और दर्शन रुप समुद्र के मंथन से उत्पन्न नवनीत (मक्खन) ऐसी कुशलता से समालिम्पित है कि जिससे इस काव्य की कान्ता-सम्मित सुन्दर उपयोगिता मूर्तिमती होकर दिखाई देती है यह काव्य केवल दर्शनशास्त्र ही नहीं है, बल्कि भगवान् जिनराज का धर्मशास्त्र भी है, जिसे कि कवि ने मोक्ष मार्ग पर चलने वाले मुनि और श्रावकादि के उद्देश्य से निर्माण किया है। विलासिनी ब्राह्मणी, राजरानी और नर्तकी वेश्या आदिक जो कि एक मात्र सांसारिक विषयों के लोलुपी हैं-उनके मुखों से भी उपदेश कराया है जो यह अभिप्राय व्यक्त करता है कि धर्म और दर्शन के निर्णय में मनुष्य को सदा विवेकशील होना चाहिए, क्योंकि ऊपरी तौर से किसी वस्तु का देखना कदाचित् भ्रामक भी हो सकता है। दूसरी बात यह भी सूचित होती है कि उस समय ऐसे अति विषयी लोग भी शास्त्र और दर्शन के तत्त्वज्ञ थे, तथा उनका बहुलता से प्रचार था।

इस काव्य के परिशीलन से यह प्रतिभासित होता है कि इसमें काव्य-सुलभ पूर्ण सौन्दर्य के दर्शन होने पर भी मूल में वैराग्य और उसके द्वारा मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति ही कवि का प्रमुख प्रतिपाद्य तत्त्व रहा है। जो कि श्रीमान् मुनिवर्य ज्ञानसागरजी महाराज के आज तक के जीवन में व्याप्त धर्म के सर्वथा अनुरुप है। स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के भूतपूर्व स्नातक महानुभाव यतः बालब्रह्मचारी हैं अतः सरस्वती देवी के ये सहज कृपापात्र बने हैं। छात्र जीवन में भी इन्होंने पराया अवलम्बन नहीं लिया, किन्तु किसी भी कार्य को करके उससे प्राप्त धन को लाकर और छात्रालय में शुल्क रुप से दे करके ही रहते थे। नैषधचरित के समान एक महाकाव्य के रचने की आपके हृदय में परम उत्कण्ठा थी। तदनुसार आपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'जयोदय' नामक काव्य रचा जो, बहुत पहले प्रकाशित हो चुका है। तत्पश्चात् मुनिवर्य ने यह काव्य रचा है। इस काव्य का हिन्दी भाषा में अनुवाद भी पाण्डित्य-पूर्ण और कवि के भाव कां भली भांति अभिव्यञ्जक है। हम इस काव्य के बहु प्रचार की कामना करते हुए कविवर का स्वागत करते हैं।

❀ ❀ ❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्य कसौटी

प्रस्तुत काव्य जयोदय महाकाव्य का अनुज है। फलतः इसमें भी अथ से इति तक उसी जैसी शाब्दी छटा दृष्टि-गोचर होती है। इसका तुलनात्मक अध्ययन जो भी करेंगे उन्हें नैषध की स्मृति न हो यह संभव नहीं। उपलब्ध जैनेतर महाकाव्यों में नैषध की रचना सर्वोत्कृष्ट मानी जा रही है । इसलिये यह कहा जाता है कि 'नैषधं विद्वदोषधम्' ।

जिस कथानक को पुराण और इतिहास प्रस्तुत करते हैं उसी को यदि एक प्रतिभाशाली कवि भी प्रस्तुत करता है तो वह उक्तिवैचित्र्य से प्रभावित हो कर उन दोनों से भिन्न ही दृष्टिगोचर होने लगता है। अलङ्कारों की सम्पुट उस में सरसता ला देती है और इसीलिए वह पाठक के मन को लुभा लेता है। इसी दृष्टि से आचार्य वामन ने उसकी ग्राह्यता का प्रतिपादन किया है - 'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्' (काव्यालङ्कार सूत्र १,१,१)

अलङ्कारों के सन्निवेश ने प्रस्तुत काव्य की सुन्दरता को बढ़ा दिया है। इसका कुछ आभास निम्नलिखित श्लोकों से हो सकेगा :-

१,१ वीरप्रभुःस्वीयसुबुद्धिनावा भवाब्धितीरं गमितप्रजावान्।
सुधीवराराध्यगुणान्वयावाग् यस्यास्ति नः शास्ति कवित्वगावा ।।१।।

१,२२ उद्योतयन्तोऽपि परार्थमन्तर्घोषा बहुव्रीहिमया लसन्तः।
यतित्वमञ्चन्त्यविकल्पभावान् नृपा इवामी महिषीश्वरा वा ।।२।।

१,३३ पलाशिता किंशुक एव यत्र द्विरेफवर्गे मधुपत्वमत्र।
विरोधिता पञ्जर एव भाति निरौष्ठ्यकाव्येष्वपवादिता तु ।।३।।

२,२ द्विजह्वतातीत गुणोऽप्यहीनः किलानकोऽप्येष पुनः प्रवीणः।
विचारवानप्यविरुद्धवृत्तिर्मदोज्झितो दानमयप्रवृत्तिः ।।४।।

२,६ कापीव वापी सरसा सुवृत्ता मुद्रेव शाटीव गुणैकसत्ता।
विधोः कला वा तिथिसत्कृतीद्धालङ्कारपूर्णा कवितेव सिद्धा ।।५।।

३,२६ द्रुतमाप्य रुदन्नथाम्बया पय आरात्स्तनयोस्तु पायितः।
शनकैः समितोऽपि तन्द्रिता स्म न शेते पुनरेष शायितः ।।६।।

३,३८ अहो किलाश्लेषि मनोरमायां त्वयाऽनुरूपेण मनोरमायाम्।
जहासि मत्तोऽपि न किन्नु मायां चिदेति मेऽत्यर्थमकिन्नु मायाम् ।।७।।

९,५२ भाग्यतस्तमधीयानो विषयाननुयाति यः ।
चिन्तामणिं क्षिपत्येष काकोड्डुयनहेतवे ।।८।।

यहां क्रमशः (१) रुपक, यमक और अनुप्रास (२) पूर्णोपमा (३) परिसंख्या (४) विरोधाभास (५) श्लेषोपमा (६) स्वभावोक्ति (७) यमक और (८) निदर्शना अलङ्कारों का चमत्कार द्रष्टव्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्य के शरीर का निर्माण शब्द और अर्थ से होता है। शब्दालङ्कार शब्द को और अर्थालङ्कार अर्थ को भूषित करते हैं।

प्रस्तुत काव्य में दोनों प्रकार के अलङ्कार आदि से अन्त तक विद्यमान हैं। काव्य की आत्मा रस होता है जिसे गुण अलंकृत करते हैं। प्रस्तुत काव्य में शान्त रस प्रधान है जो प्रसाद गुण से विभूषित है। नैषध और धर्मशर्माभ्युदय की भांति इसमें वैदर्भी रीति है। निष्कर्ष यह कि एक सत्काव्य में जो विशेषताएं होनी चाहिये वे सब इसमें हैं ।

वाग्भट ने अपने अलङ्कार ग्रन्थ (१,८) में काव्य की चारुता के तीन हेतु बतलाये हैं - (१) किसी वर्ण को गुरु बनाने के लिए उसके आगे संयुक्त वर्णों का विन्यास (२) विसर्गों को लुप्त न करना और (३) विसन्धि का अभाव (अ) अश्लीलता या कर्णकटुता आदि दोषों की उत्पादक यण आदि सन्धियों का परित्याग (ब) तथा सन्धि-रहित पदों का प्रयोग।

प्रस्तुत काव्य में उन तीनों हेतु विद्यमान हैं। जैसे-

१,३१ जिनालयाः पर्वततुल्यगाथाः समग्रभूसंभवदेणनाथाः ।
श्रृङ्गाग्रसंलग्नपयोदखण्डाः श्रीरोदसीदर्शितमानदण्डाः ।।

यहां सात लघु वर्णों को सयुंक्त वर्ण उनके आगे रख कर गुरु बनाया गया है। इस श्लोक में कुल मिलाकर पांच पद हैं - तीन ऊपर और दो नीचे, इन सभी के आगे विसर्ग रखें हुये हैं - उनका लोप नहीं हुआ और विरुप सन्धि या सन्धि का अभाव भी नहीं है।

अन्य शास्त्र अपने-अपने विषयों पर प्रकाश डालते हैं पर सत्काव्य अनेकानेक विषयों पर। सुदर्शनोदय में उदात्तचरित सुदर्शन श्रेष्ठी का चरित वर्णित है, पर प्रसङ्गतः इसमें अन्यान्य विषयों का भी वर्णन किया गया है ।

अनेक काव्यों के श्रृङ्गार वर्णन में अश्लीलता दृष्टिगोचर होती है, पर वह इसमें नहीं है।

साहित्य का संगीत के साथ-साथ चलना अत्यन्त आकर्षक होता है। प्रस्तुत कृति में अनेक राग-रागिनी वाले पद्य भी हैं। यह विशेषता अन्य जैन वा जैनेतर काव्यों में भी प्रायः दुर्लभ है।

व्रतों में ब्रह्मचर्य का स्थान सर्वोपरि है। विकार के हेतुओं के उपस्थित होने पर भी सुदर्शन ब्रह्मचर्य से न डिगे। इनके जीवन-वृत्त को जो भी पढ़ेगा उसे सदाचारी बनने की प्रेरणा अवश्य मिलेगी।

हिन्दी अनुवाद अच्छा हुआ है। प्रस्तुत अनुवाद के बिना मूल काव्य को ठीक-ठीक समझना कठिन है। परिशिष्ट में मूल को खोलने वाले संस्कृत टिप्पण यदि दिये जाते, तो अधिक अच्छा होता ।

यह रचना सभी दृष्टियों से श्लाघ्य है और किसी भी परीक्षालय के शास्त्रि-कक्षा के पाठयक्रम में स्थान पाने योग्य है।

दि. १९.११.६६
संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी

अमृतलाल जैन
साहित्य-दर्शनाचार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम संस्करण से

प्रस्तावना

संसार में जितने भी धर्म प्रचलित हैं उन सब ने अहिंसा के समान ब्रह्मचर्य या शीलव्रत का महत्व स्वीकार किया है। ब्रह्मचर्य की महत्ता पर आज तक बहुत कुछ लिखा जा चुका है। संसार के और खास कर भारत के इतिहास में ऐसे अगणित महापुरुष हो गये हैं, जिन्होंने अपना विवाह किया ही नहीं, प्रत्युत आजीवन ब्रह्मचारी रहकर स्व-पर का कल्याण किया है। अनेक ऐसे भी गृहस्थ हुए हैं, जिन्होंने एक पत्नीव्रत अङ्गीकार कर उसे भले प्रकार पालन किया है, किन्तु ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत कम है, क्योंकि भारतवर्ष के इतिहास में जितने भी महान् पुरुषों के चरित दृष्टिगोचर होते हैं, उनमें उनकी अनेक स्त्रियों के होने का उल्लेख मिलता है। आज से अढ़ाई हजार वर्ष पहिले बहु-विवाह की आम प्रथा प्रचलित थी और लोग अनेक विवाह करते हुए अपने को भाग्यशाली समझते थे। ऐसे समय में सेठ सुदर्शन का एक पत्नीव्रत धारण करना और फिर तीन-तीन बार प्रबल बाधाएं आने पर भी अपने व्रत पर अटल बने रहना सचमुच उनकी महत्ता को प्रकट करता है और पुरुष समाज के सम्मुख एक उत्तम आदर्श उपस्थित करता है। जैन-जैनेतर शास्त्रों एवं पुराणों में स्त्रियों के शीलव्रत का माहात्म्य बताने वाले सहस्त्रों आख्यान मिलते हैं, पर सुदर्शन जैसे एक पत्नीव्रत वालों के नाम अंगुलियों पर गिनने लायक भी नहीं मिलते।

प्रस्तुत सुदर्शनोदय में वर्णित सुदर्शन का चरित सर्व प्रथम हमें हरिषेण के बृहत्कथा कोष में देखने को मिलता है। उसमें यह कथानक 'सुभग गोपाल' के नाम से दिया गया है। इसमें बतलाया गया है कि अंगदेश की चम्पापुरी में दन्तिवाहन नाम का राजा था और अभया नाम की उसकी रानी थी। उसी नगरी में ऋषभदास नाम के एक सेठ थे और जिनदासी नाम की उनकी सेठानी थी। सेठ की गाय-भैंसो को चराने वाला एक सुभग नामका गुवाला था। एक बार शीतकाल में जंगल से घर को आते हुए उसने एक स्थान पर ध्यानस्थ साधु को देखा और यह विचार करता हुआ घर चला गया कि ये साधु ऐसी ठंड की रात्रि कैसे व्यतीत करेंगे? प्रातःकाल आकर उसने देखा कि साधु उसी प्रकार समाधि में स्थित हैं। थोड़ी देर के बाद सूर्योदय हो जाने पर साधु ने समाधि खोली, प्राभातिक क्रियाएं की और 'णमो अरिहंताणं' (नमोऽर्हते) ऐसा कह वे आकाश में उड़कर अन्यत्र चले गये। यह देखकर गुवाले के आश्चर्य का ठिकाना न रहा और वह सोचने लगा कि वे उक्त मंत्र के प्रभाव से आकाश में उड़कर चले गये हैं, अतः मैं भी इस मन्त्र की आराधना करके आकाशगामिनी विद्या सिद्ध करूंगा। तत्पश्चात् वह गुवाला प्रत्येक कार्य करते हुए उक्त मंत्र को जपने लगा। उसे उक्त मन्त्र बोलते हुए सेठ ने सुना तो उससे उसका कारण पूछा। उसने प्रत्यक्ष देखी घटना सुना दी। सेठ ने भी उसके जपते रहने की अनुमोदना की ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक बार वह गाय-भैंसों को लेकर जंगल में गया हुआ था कि वे गंगा-पार किसी हरे भरे खेतमें चरने को निकल गईं। यह गुवाला उन्हें वापिस लाने के लिए उक्त मंत्र को बोलकर ज्यों ही गंगा में कूदा कि पानी के भीतर पड़े हुए किसी नुकीले काठ से टकरा जाने से उसकी मृत्यु हो गई और वह ऋषभदास सेठ की सेठानी के गर्भ में आ गया। जन्म होने पर इसका नाम सुदर्शन रखा गया। उसे सर्व विद्याओं और कलाओं में निपुण बनाया गया।

इसी चम्पानगरी में एक सागरदत्त सेठ रहते थे। उनके मनोरमा नाम की एक सर्वाङ्ग सुन्दरी लड़की थी। समयानुसार दोनों का विवाह हो गया और सुदर्शन के पिता ने जिनदीक्षा ले ली। इधर सुदर्शन के दिन आनन्द से व्यतीत होने लगे। एक बार राजपुरोहित कपिल ब्राह्मण की स्त्री कपिला ने राजमार्ग से जाते हुए सुदर्शन को देखा और उनके अपूर्व सौन्दर्य पर मोहित हो गई। दूती के द्वारा पति की बीमारी के बहाने से उसके मकान के भीतर सुदर्शन को बुलवाया और उनका हाथ पकड़ कर अपनी काम-वासना को पूर्ण करने के लिए कहा। तब चतुर सुदर्शन ने अपने को 'नपुंसक' बता कर उससे छुटकारा पाया।

एक बार वसन्त ऋतु में वन-क्रीड़ा के लिए नगर के सब लोग गये। राजा के पीछे रानी अभया भी अपनी धाय और पुरोहितानी कपिला के साथ जा रही थी। मार्ग में एक सुन्दर बालक को गोद में लिए एक अति सुन्दर स्त्री को जाते हुए कपिला ने देखा और रानी से पूछा - 'यह किसकी स्त्री है?' रानी ने बतलाया कि यह नगर सेठ सुदर्शन की पत्नी मनोरमा है। कपिला तिरस्कार के साथ बोली- 'कहीं नपुंसक के भी पुत्र होते हैं?' तब कपिला ने सारी आप बीती कहानी रानी को सुना दी। सुनकर हंसते हुए रानी ने कहा- अरी कपिले, सेठ ने तुझे ठग लिया है। तुझसे अपना पिंड छुड़ाने के लिए उसने अपने को नपुंसक बता दिया, सो तू सच समझ गई? तब कपिला अपनी झेंप मिटाती हुई बोली- यदि ऐसी बात है तो आप ही सेठ को अपने वश में करके अपनी चतुराई का परिचय देवें। कपिला की बातों का रानी पर रंग चढ़ गया और वह मन ही मन सुदर्शन को अपने जाल में फंसाने की सोचने लगी।

उद्यान से घर वापिस आने पर रानी ने अपना अभिप्राय अपनी पंडिता धाय से कहा। उसने रानी को बहुत समझाया, पर उसकी समझ में कुछ न आया। निदान पंडिता धाय ने कुम्हार से सात मिट्टी के पुतले बनवाये-जो कि आकार-प्रकार में ठीक सुदर्शन के समान थे। रात में उसे वस्त्र से ढक कर वह राज भवन में घुसने लगी। द्वारपाल ने उसे नहीं जाने दिया। धाय जबरन घुसने लगी तो द्वारपाल का धक्का पाकर उसने पुतले को पृथ्वी पर पटक दिया और रोना-धोना मचा दिया कि हाय अब महारानीजी बिना पुतले के दर्शन किये पारणा कैसे करेंगी? उसकी बात सुनकर द्वारपाल डर गया और बोला-पंडिते, आज तू मुझे क्षमा कर, मुझ से भूल हो गई है। आगे से ऐसी भूल नहीं होगी। इस प्रकार वह पंडिता धाय प्रति-दिन एक-एक पुतला बिना-रोक-टोक के राज भवन में लातीरही। आठवें दिन अष्टमी का प्रोषधोपवास ग्रहण कर सुदर्शन सेठ श्मशान में सदा की भांति कायोत्सर्ग धारण कर प्रतिमायोग से अवस्थित थे। पंडिता दासी ने आधी रात में वहां जाकर उन्हें अपनी पीठ पर लाद कर और ऊपर से वस्त्र ढक कर रानी के महल में पहुंचा दिया। रात भर रानी ने सुदर्शन को डिगाने के लिए अनेक प्रयत्न किये,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर वे पाषाण मूर्ति के समान सर्वथा अचल रहे। इतने में सबेरा हो गया। भेद प्रकट होने के भय से रानी ने अपना त्रिया-चरित्र फैलाया और सुदर्शन को राज-सेवकों ने पकड़ लिया। राजा ने उक्त घटना सुनकर उन्हें प्राण-दण्ड की आज्ञा देकर चाण्डाल को सौंप दिया। चाण्डाल ने श्मसान में जाकर उन पर ज्यों ही तलवार का प्रहार किया कि वह फूल-माला बनकर उनके गले का हार बन गई। देवताओं ने आकाश से सुदर्शन के शीलव्रत की प्रशंसा करते हुए पुष्प-वर्षा की। जब राजा को यह ज्ञात हुआ तो वह सुदर्शन के पास आकर अपनी भूल के लिए क्षमा मांगने लगा। सुदर्शन ने कहा - महाराज, इसमें आपका कोई दोष नहीं है. दोष तो मेरे पूर्वकृत कर्म का है। राजा ने सुदर्शन को बहुत मनाया, अपना राज्य तक देने की घोषणा की, मगर सुदर्शन ने तो पंडिता के द्वारा राज-भवन में लाते समय ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि यदि मैं इस आपत्ति से बच गया, तो मुनि बन जाऊंगा। अतः सुदर्शन ने राज्य स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और घर जाकर अपना अभिप्राय मनोरमा से कहा। उसने कहा- 'जो तुम्हारी गति, सो मेरी गति'। सुनकर सुदर्शन प्रसन्न हुआ। दोनों जिनालय गये। भक्तिभाव से भगवान् का अभिषेक पूजन करके वहीं विराजमान आचार्य से दोनों ने जिन दीक्षा ले ली और सुदर्शन मुनि बनकर तथा मनोरमा आर्यिका बनकर विचरने लगे।

इधर जब रानी को अपने रहस्य भेद होने की बात ज्ञात हुई तो आत्म-ग्लानि से फांसी लगा कर मर गई और व्यन्तरी देवी हुई। पंडिता धाय राजा के भय से भागकर पाटलिपुत्र की प्रसिद्ध वेश्या देवदत्ता की शरण में पहुँची। वहां जाकर उससे उसने अपनी सारी कहानी सुनाई और बोली- उस सुदर्शन जैसा सुन्दर पुरुष संसार में दूसरा नहीं है और संसार में कोई भी स्त्री उसे डिगाने में समर्थ नहीं है। देवदत्ता सुनकर बोली- एक बार यदि वह मेरे जाल में फंस पावे- तो देखूंगी कि वह कैसे बच के निकलता है।

उधर सुदर्शन मुनिराज ग्रामानुग्राम विहार करते हुए एक दिन गोचरी के लिए पाटलिपुत्र पधारे। उन्हें आता हुआ देखकर पंडिता धाय बोली-देख देवदत्ता, वह सुदर्शन आ रहा है, अब अपनी करामात दिखा। यह सुनकर देवदत्ता ने अपनी दासी भेजकर उन्हें भोजन के लिए पड़िगाह लिया। सुदर्शन मुनिराज को घर के भीतर ले जाकर उसने सब किवाड़ बन्द कर दिये और देवदत्ता ने अपने हाव-भाव दिखाना प्रारम्भ किया। मगर काठ के पुतले के समान उन पर उसका जब कोई असर नहीं हुआ, तब उसने उन्हें अपनी शय्या पर पटक लिया, उनके अंगों को गुद गुदाया और उनका संचालन किया। मगर सुदर्शन तो मुर्दे के समान अडोल पड़े रहे। वेश्या ने तीन दिन तक अपनी सभी संभव कलाओं का प्रयोग किया, पर उन पर एक का भी असर नहीं हुआ। अन्त में हताश होकर उसने सुदर्शन को रात के अंधेरे में ही श्मशान में डलवा दिया।

सुदर्शन मुनिराज के श्मशान में ध्यानस्थ होते ही वह व्यन्तरी देवी आकाश मार्ग से विहार करती हुई उधर से आ निकली। सुदर्शन को देखते ही उसे अपना पूर्व भव याद आ गया और बदला लेने की भावना से उसने सात दिन तक महाघोर उपसर्ग किया। परन्तु वह उन्हें विचलित नहीं कर सकी। इधर चार घातियां कर्मों के क्षय होने से सुदर्शन मुनिराज को केवलज्ञान प्रकट हो गया। देवों ने आकर आठ प्रातिहार्यों की रचना की। सारे नगर निवासी लोग उनकी पूजा वन्दना को आये। वह देवदत्ता वेश्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और पंडिता धाय भी वन्दना को गई। उपसर्ग से पराभूत व्यन्तरी भी वन्दना को गई। सुदर्शन केवली का धर्मोपदेश सुनकर कितने ही लोग मुनि बन गये, कितनों ने श्रावक के व्रत धारण किये। कितनी ही स्त्रियां आर्यिका और कितनी ही श्राविकाएं बन गई। उस वेश्या और पंडिता ने भी यथा-योग्य व्रत ग्रहण किये और व्यन्तरी ने सम्यक्त्व को ग्रहण किया। पुनः सुदर्शन केवली विहार कर धर्मोपदेश देते हुए जीवन के अन्त में अघाति कर्मों का क्षय कर निर्वाण को प्राप्त हुए।

सुदर्शन का यही कथानक कुछ पल्लवित करके परवर्ती ग्रन्थकारों ने लिखा है, जिनमें अपभ्रंश सुदर्शनचरित के कर्त्ता आ. नयनन्दि, संस्कृत सुदर्शन चरित के कर्त्ता आ. सकल कीर्ति और आराधना कथाकोश के कर्त्ता ब्रह्म. नेमिदत्त प्रमुख हैं। सबसे अन्त में प्रस्तुत सुदर्शनोदय की रचना हुई है। इन सबमें वर्णित चरित में जो खास अन्तर दृष्टिगोचर होता है, वह इस प्रकार है:-

१. हरिषेण ने अपने कथा कोश में सुदर्शन का न कामदेव के रुप में उल्लेख किया है और अन्तःकृत् केवली के रुप में ही। हां, केवलज्ञान उत्पन्न होने पर उनके आठ प्रातिहार्यों का वर्णन करते हुए लिखा है कि मुण्डकेवली के समवसरण की रचना नहीं होती है। यथा-

छत्रत्रयं समुतुङ्गं प्राकारो हरिविष्टरम्।
मुण्डकेवलिनो नास्ति सरणं समवादिकम् ।।१५७।।
छत्रमेकं शशिच्छायं भद्रपीठं मनोहरम्।
मुण्डकेवलिनो नूनं द्वयमेतत्प्रजायते ।।१५८।।

इस उल्लेख से यह सिद्ध है कि सुदर्शन मुण्ड या सामान्य केवली हुए हैं और सामान्य केवलियों के समवसरण रचना नहीं होती। आठ प्रातिहार्य अवश्य होते हैं, पर तीन छत्र की जगह एक श्वेत छत्र और सिंहासन की जगह मनोहर भद्रपीठ होता है।

किन्तु नयनन्दि ने अपने सुदंसगण-चरिउ में तथा सकल कीर्ति ने अपने सुदर्शन चरित में उन्हें स्पष्ट रुप से चौबीसवां कामदेव और वर्धमान तीर्थंकर के समय में होने वाले दश अन्तःकृत्केवलियों में से पांचवां अन्तः-कृत्केवली माना है। यथा-

(१) अन्तयड सु केवलि सुप्पसिद्ध, ते दह दह संखए गुणसमिद्ध।
रिसहाइ जिणिंदहं तित्थे ताम, इह होंति चरम तित्थयरु जाम॥
तित्थे जाउ कय कम्म हाणि, पंचमु तहिं अंतयडणाणि णामेण।
सुदंसणु तहो चरित्तु, पारुंभिउ अयाणुहुँ पवित्तु॥

(ऐ.स.भ.प्र.पत्र २ A.)

(२) इय सुविणोयहिं चरिमाणंगउ अच्छइ।
नर वइ हे पसाय पुण्णुवंतु संघच्छइ ॥

(ऐ.स.भ.प्र. पत्र ३५ B)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त दो उल्लेखों में से प्रथम में पांचवे अन्तः कृत्केवली होने का तथा दूसरे में चरम अनङ्ग अर्थात् अन्तिम कामदेव होने का स्पष्ट निर्देश है।

सकल कीर्ति ने भी दोनों ही रूपों में सुदर्शन को स्वीकार किया है। यथा-

श्री वर्धमानदेवस्य यो वैश्यकुलखांशुमान्।
अन्तकृत्केवली पंचमो बभूवाखिलार्थदृक् ॥१.१४॥
कामदेवश्च दिव्याङ्गों रौद्रघोरोपसर्गजित्।
त्रिजगन्नाथवंद्यार्च्यः सुदर्शनमुनीश्वरः ॥१.१५॥

आ. हरिषेण ने कथानक के संक्षिप्त रूप से वर्णन करने के कारण भले ही उनका कामदेव के रूप में उल्लेख न किया हो। पर मुण्ड केवली के रूप में उनका उल्लेख अवश्य महत्त्व रखता है। नयनन्दि और सकल कीर्ति के द्वारा सुदर्शन को वर्धमान तीर्थंकर के तीर्थ का पांचवां अन्तकृत्क्केवली मानना भी आगमसम्मत है, इसकी पुष्टि तत्त्वार्थ राजवार्त्तिक और धवला टीका से होती है। यथा-

"संसारस्यान्तः कृतो यैस्ते अन्तकृतः नमि१-मतङ्ग२-सोमिल३-रामपुत्र४-सुदर्शन५-यमद६-लीक७-वलीक८-किष्कम्बल९- पालाम्बष्टपुत्रा१०-इत्येते दश वर्धमान तीर्थङ्करतीर्मे ।

(तत्त्वार्थवितिंक अ. १ सूत्र २० । धवला पु. १ पृ. १०३)

इस उल्लेख में सुदर्शन का नाम पांचवे अन्तःकृत्केवली के रूप में दिया गया है। जहां तक हमारी जानकारी है-अन्तःकृतकेवली उपसर्ग सहते सहते ही कर्मों का क्षपण करते हुए मुक्त हो जाते हैं, जैसे तीन पाण्डव उपसर्ग सहते हुए ही मुक्त हुए हैं। पर सुदर्शन को तो उपसर्ग होते हुए केवलज्ञान प्रकट होने की बात कह कर नयनन्दि और सकल कीर्ति भी हरिषेण के समान उनकी गन्धकुटी की रचना का तथा धर्मोपदेश देने और विहार करने का वर्णन करते हैं। सो यह बात विचारणीय है कि क्या अन्तः कृत्केवली के उक्त सब बातों का होना संभव है। और यदि सम्भव है, तो हरिषेण ने उन्हें अन्तःकृत्केवली न कह कर मुण्डकेवली क्यों कहा ? जब कि व्यन्तरी के द्वारा सात दिन तक घोर उपसर्ग सहने का वे भी उल्लेख करते हैं ?

सुदर्शनोदयकार ने सुदर्शन का अन्तिम कामदेव के रुप से तो उल्लेख किया है, पर अन्तःकृत्केवली के रुप से नहीं। किन्तु सुदर्शन को केवल ज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात ही उन्होंने उनके निरंजन पद प्राप्त करने का वर्णन करके उनके अन्तःकृत्केवली होने की प्रकारान्तर से सूचना ही की है। यही कारण है कि उन्होंने उनकी गंधकुटी रची जाने, उपदेश देने और विहार आदि का कुछ भी वर्णन नहीं किया है।

(२) हरिषेण ने चम्पा के राजा का नाम 'दन्तिवाहन' दिया है, पर शेष आचार्यों ने धात्रीवाहन नाम दिया।

(३) हरिषेण ने सुदर्शन के गर्भ में आने के सूचक स्वप्नादिकों का वर्णन नहीं किया है, पर शेष सबने उन्हीं पांच स्वप्नों का उल्लेख किया है, जिन्हें कि सुदर्शनोदयकार ने लिखा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) हरिषेण ने और सुदर्शनोदयकार ने सुदर्शन की जन्म तिथि का कोई निर्देश नहीं किया है, जबकि नयनन्दि और सकल कीर्ति ने सुदर्शन का जन्म पौष सुदी ४ का बतलाया है। नयनन्दि तो बुधवार का भी उल्लेख किया है यथा-

पोसे पहुत्ते सेय पक्खए हुए, बुहवारए चउत्यि तिहि संजुए ।

(ब्या.भ.प्रति प. १२ B)

(५) सुभग गुवाला जब नदी में कूदा और काठ की चोट से मरणोन्मुख हुआ, तो उसने निदान किया कि इस मन्त्र के फल से मैं इन्हीं ऋषभदास सेठ के घर में उत्पन्न होऊं। ऐसा स्पष्ट वर्णन नयनन्दि और सकल कीर्ति करते हैं। यथा:

गोवो वि णियाणें तहिं मरे वि, थिउ वणिपिय उयरे अवयरे वि।

(सुदंसणचरिउ, पत्र ११)

निदानमकरोदित्थमेतन्मंत्रफलेन भो।
अस्यैव श्रेष्ठिनो नूनं भविष्यामि सुतो महान् ॥

(सुदर्शन चरित, सर्ग ५ श्लोक ६५)

(६) हरिषेण ने सुभग गुवाले के द्वारा शीतपरीषह सहने वाले मुनिराज की शीतबाधा को अग्नि जलाकर दूर करने का कोई वर्णन नहीं किया है। नयनन्दि और सकल कीर्ति ने उसका उल्लेख किया है।

(७) हरिषेण ने सुदर्शन के एक गुवाल भव का ही वर्णन किया है, जब कि शेष सबने भील के भव से लेकर अनेक भवों का वर्णन किया है।

(८) शेष सब चरित-कारों की अपेक्षा नयनन्दि ने सुदर्शन का चरित विस्तार से लिखा है। उनकी वर्णन शैली भी परिष्कृत, परिमार्जित एवं अपूर्व है, सुदर्शन के जन्म समय का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं-पुत्र के जन्म लेते ही परिजनों के कल्याण की वृद्धि हुई, जल वर्षा हुई, बनों में फल-फूल खूब फले-फूले, कूपों में पानी भर गया, और गायों के स्तनों में दूध की खूब वृद्धि हुई।

(९) नयनन्दि और सुदर्शनोदयकार ने सुदर्शन की बाल क्रीड़ाओं का बहुत सुन्दर वर्णन किया है।

(१०) नयनन्दि ने लिखा है कि सुदर्शन जब आठ वर्ष का हुआ, तब पिता ने उसे गुरु को पढ़ाने के लिए सौंप दिया। सुदर्शन ने १६ वर्ष की अवस्था होने तक गुरु से शब्दानुशासन, लिंगानुशासन, तर्क काव्य, छंदशास्त्र और राजनीति को पढ़ा। तथा मल्लयुद्ध, काष्ठकर्म, लेप्यकर्म, अग्निस्तम्भन, इन्द्रजाल आदि विद्याओं को भी सीखा ।

(११) नयनन्दि ने षोडश वर्षीय सुदर्शन कुमार के शरीर सौन्दर्य का बहुत ही सजीव वर्णन किया है और लिखा है कि गुरु के पास से विद्या पढ़ कर घर आने पर, सुदर्शन जब कभी नगर के जिस किसी भी मार्ग से निकल कर बाहर घूमने जाते, तो पुरवासिनी स्त्रियां, उसे देखकर विह्वल हो जातीं और वस्त्राभूषण पहिनने तक की भी उन्हें सुध-बुध नहीं रहती थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२) मनोरमा के शरीर-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए प्रसंग वश नयनन्दि ने विभिन्न देशों की स्त्रियों के स्वभाव-गत वा शरीर-गत विशेषताओं का भी अपूर्ण वर्णन किया है।

(१३) नयनन्दि और सकल कीर्ति ने सुदर्शन के विवाह का मुहूर्त शोधने वाले श्रीधर ज्योतिषी के नाम का भी उल्लेख किया है और बताया है कि सुदर्शन मनोरमा का विवाह वैशाख सुदी पंचमी को हुआ।

(१४) नयनन्दि ने सुदर्शन के गार्हस्थिक जीवन का भी बहुत सुन्दर वर्णन किया है।

(१५) ऋषभदास सेठ के दीक्षित होते समय ही सुदर्शन ने एक पत्नी व्रत के साथ श्रावक के व्रत ग्रहण किये, इसका सभी ने समान रुप से वर्णन किया है। कपिला ब्राह्मणी द्वारा छल पूर्वक बुलाने आदि की घटनाएं भी सभी ने समान रुप से वर्णन की हैं।

(१६) नयनन्दि लिखते हैं कि जब अन्तिम बार सुदर्शन प्रोषधोपवास के दिन स्मशान को जाने लगे- तो उन्हें अनेक अपशकुन हुए। इन अपशकुनों का भी उन्होंने बड़ा अनुभव-पूर्ण वर्णन किया है। इसी स्थल पर उन्होंने स्मशान की भयानकता का जो वर्णन किया है, उसे पढ़ते हुए एक बार हृदय कांपने लगता है।

(१७) पंडिता दासी सुदर्शन को ध्यानस्थ देखकर उनसे कहती है कि यदि धर्म में जीव-दया को धर्म बतलाया है,तो मेरे साथ चलकर मरती राजरानी की रक्षा कर ।

(१८) रानी की प्रार्थना पर भी जब सुदर्शन ध्यानस्थ मौन रहते हैं, तब दोनों की चित्त-वृत्तियों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन नयनन्दि ने किया है। सुदर्शन रानी के राग भरे वचनों को सुनकर वा काय की कुचेष्टा को देखकर मनमें विचारते हैं कि सभी सांसारिक सुख अनन्त बार मिले और आगे फिर भी उनका मिलना सुलभ है। किन्तु इस महान चारित्र रूप धन का पाना अति दुर्लभ है, मैं इन तुच्छ विषयों के लिए कैसे इस अमूल्य धन का परित्याग करूं ।

(१९) मनोरमा ने जब सुना कि मेरे पति को राजा ने मारने का आदेश दे दिया है, उस समय उसके करुण विलाप का बड़ा ही मर्म-भेदी वर्णन नयनन्दि ने किया है ।

(२०) सुदर्शन के ऊपर चाण्डाल द्वारा किया गया असिप्रहार जब हार रुप से परिणत हो गया, तब यह बात सुनकर राजा ने क्रोधित हो अनेकों सुभटों को सुदर्शन के मारने के लिए भेजा। धर्म के रक्षक एक देव ने उन सबको कील दिया। जब राजा को यह पता चला तो वह क्रुद्ध हो बड़ी सेना लेकर स्वयं सुदर्शन को मारने के लिए चला। तब देव ने भी बहुत बड़ी सेना अपनी विक्रिया से बनाई। दोनों सेनाओं में और देव तथा राजा में घमासान युद्ध हुआ। इसका बहुत विस्तृत एवं लोम-हर्षक वर्णन नयनन्दि ने किया है। सकलकीर्ति ने भी उक्त सभी स्थलों पर नयनन्दिका अनुसरण करते हुए वर्णन किया है। किन्तु यतः सुदर्शनोदय एक काव्य रुप से रचित ग्रन्थ है। अतः इसमें घटनाओं का विस्तृत वर्णन नहीं दिया गया है ।

(२१) सुदर्शन के मुनि बन जाने पर व्यन्तरी के द्वारा जो घोर उपसर्ग सात दिन तक किया गया उसका रोम-हर्षक वर्णन करते हुए नयनन्दि लिखते हैं कि उसके घोर उपसर्ग से एक बार तीनों लोक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षोभित हो गये, पर सुदर्शन का एक लोम भी नहीं हिला। धन्य है ऐसी दृढ़ता को। प्रस्तुत ग्रन्थकार ने उस व्यन्तरी के उपसर्ग में मात्र इतना ही लिखा है कि उस उपसर्ग के चिन्तवन करने मात्र से हृदय में कम्पन होने लगता है। पर यह नहीं बताया कि यह उपसर्ग कितने दिन तक होता रहा ।

(२२) सुदर्शन मुनिराज को केवलज्ञान उत्पन्न होने पर इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। अवधिज्ञान से सुदर्शन मुनिराज के केवल ज्ञान उत्पन्न होने की बात जान कर उसने सब देवी-देवताओं को सांथ लेकर और ऐरावत हाथी पर बैठकर मध्य लोक को प्रस्थान किया। उस समय ऐरावत हाथी के एक लाख योजन विस्तार की और उसके शत मुख दन्तों पर सरोवर, कमल और उन पर अप्सराओं आदि के नृत्य का ठीक वैसा ही वर्णन किया है-जैसा कि तीर्थंकरों के जन्माभिषेक को आते समय जिनसेनादि अन्य आचार्यों ने किया है। उक्त विस्तृत लक्ष योजन वाले ऐरावत हाथी पर आते हुए जब इन्द्र भरत क्षेत्र के समीप पहुँचा, तो उसने यह देख कर कि यह क्षेत्र तो बहुत छोटा है - अपने ऐरावत हाथी के विस्तार को संकुचित कर लिया । नयनन्दि ने लिखा है -

जबूदीवहे जेतिओ वित्थह तेत्तिओ किउ संवरि करिंदे ।
तत्थुवलग्गवि आए मणे अणुराए वुच्चइ एम सुरिंदो ॥

(ब्यावर-प्रति पत्र ८५)

ऐरावत हाथी के शरीर-संवरण की बात दिगम्बर ग्रन्थों में नयनन्दि के द्वारा लिखी हुई प्रथम बार ही देखने में आई है, हालांकि यह स्वाभाविक बात है, अन्यथा लाख योजन का हाथी जरा से भरत में कैसे आ सकता है? श्वेताम्बर-सम्मत जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में ऐसा स्पष्ट उल्लेख है कि जब इन्द्र स्वर्ग से चलता है, तब हाथी का विस्तार लाख योजन का ही होता है। पर आते हुए जब नन्दीश्वर द्वीप से इधर जम्बूद्वीप की ओर पहुँचता है तब उसके संकेत से हाथी के शरीर का विस्तार संकुचित हो जाता है।

(२३) नयनन्दि और सकलकीर्ति दोनों ने ही हरिषेण के समान सुदर्शन केवली के धर्मोपदेश और विहार का वर्णन किया है।

(२४) दोनों ने हरिषेण के समान गन्धकुटी में जाकर देवदत्ता वेश्या आदि के व्रत ग्रहण की चर्चा की है।

(२५) नयनन्दि और सकलकीर्ति ने सुदर्शन का निर्वाण पौष सुदी पंचमी सोमवार के दिन बतलाया है।

नयनन्दि के पश्चात् सुदर्शन का आख्यान ब्रह्म नेमिदत्त विरचित आराधना कथा कोश में पाया जाता है। पर इसमें कथानक अति संक्षेप से दिया है। इसमें न कपिला के छल-प्रपंच का उल्लेख है, न देवदत्ता वेश्या और व्यन्तरी के ही उपसर्ग का उल्लेख है। केवल एक ही बात उल्लेखनीय है कि गुवाला ने शाम को वन से घर जाते हुए एक साधु को खुले मैदान में शिला पर अवस्थित देखा । घर पर रात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में वह विचारता रहा कि इतनी तेज ठंड में वे साधु कैसे रहे होंगे? पिछली रात में वह भैंसे लेकर चराने को निकला और देखता है कि वे साधु तथैव ध्यानस्थ विराजमान है तब उनके शरीर पर पड़े हुए तुषार (बर्फ) को उसने अपने हाथों से दूर किया, उनके पाद-मर्दनादि किये और महान् पुण्य का संचय किया। यथा-

तथा पश्चिमरात्रौ च गृहीत्वा महिषी पुनः।
तत्रागत्य समालोक्य तं मुनिं ध्यानसंस्थितम्।।
तच्छरीरे महाशीतं तुषारं पतितं द्रुतम्।
स्फेटयित्वा स्वहस्तेन मुनेः पादादिमर्दनम्।।
कृत्वा स्वास्थ्यं निधायोच्चैः पुण्यभागी बभूव च ।।७८।।

(आराधना तथा कोश पृ. १०९)

उपरि वर्णित तीनों कथानकों को सामने रखकर जब हम सुदर्शनोदय में वर्णित कथानक पर दृष्टिपात करते हैं, तो ज्ञात होता है कि उपर्युक्त कथानकों का सार बहुत सुन्दर रूप से इसमें दिया हुआ है, और यतः यह काव्य रुप से रचा गया है, अतः काव्यगत समस्त विशेषताओं से यह भर-पूर है। इस प्रकार समुच्चय रुप से वर्णित सुदर्शन के चरित के विषय में आ. नयनन्दि का यह कथन पूर्ण रुप से सत्य सिद्ध होता है कि रामायण में राम सीता के वियोग से शोकाकुल दिखाई देते हैं, महाभारत में पाण्डव और कौरवों की कलह एवं मारकाट दिखाई देती है, तथा अन्य लौकिक शास्त्रों में जार, चोर, भील आदि का वर्णन मिलता है। किन्तु इस सुदर्शन सेठ के चरित में ऐसा एक भी दोष दिखाई नहीं देता, अर्थात् यह सर्वथा निर्दोष चरित है। यथा-

रामो सीय वियोय-सौय-विहुंर संपत्तु रामायणे
जादा पंडव धायरट्ट सददं गोत कली भारहे।
डेड्डाकोलिय चोररज्जुणिरदा आहासिदा सुद्दये
णो एक्कंपि सुदंसणस्स चरिदे दोसं समुन्भासिदं ।।

(ब्यावर भवन प्रति, पत्र ११ B)

वास्तव में आ. नयनन्दि का यह कथन पूर्ण रुप से सत्य है कि सुदर्शन के चरित में कहीं कोई दोष या महापुरष की मर्यादा का अतिक्रम नहीं दिखाई देता, प्रत्युत सुदर्शन का उत्तरोत्तर अभ्युदय ही दृष्टिगोचर होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुदर्शनोदय का अन्तरङ्ग दर्शन

ऊपर सुदर्शन सेठ के चरित का सामान्य दर्शन पाठकों को कराया गया है। अब प्रस्तुत सुदर्शनोदय के भीतर वर्णित कुछ विशेषताओं का दिग्दर्शन कराया जाता है -

(१) इसके निर्माता ने सुदर्शन की भील के भव से लेकर उत्तरोत्तर उन्नति दिखाते हुए सर्वोत्कृष्ट अभ्युदय रुप निर्वाण की प्राप्ति तक का वर्णन कर इसके 'सुदर्शनोदय' नाम को सार्थक किया है।

(२) इसमें द्वीप, क्षेत्र, नगर, ग्राम, हाट, उद्यान, पुरुष, स्त्री, शिशु, कुमार, गृहस्थ और मुनि का वर्णन पूर्ण आलङ्कारिक काव्य शैली में किया गया है।

(३) इसकी रचना में संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वियोगिनी, वसन्ततिलका, द्रुतविलाम्बित और शार्दूलविक्रीडित छन्दों का तो उपयोग किया ही है, साथ ही देशी भाषा के प्रसिद्ध प्रभाती, काफी, होली, सारंग, रसिक, श्यामकल्य, सोरठ, छंदचाल और कव्वाली आदि के रागों में भी अनेक सुन्दर गीतों की रचना की है। जिसे पढ़ने पर पाठक का हृदय आनन्द से आन्दोलित हुए बिना नहीं रह सकता। इसके अंतिरिक्त देशी रागरागनियों में गाये जाने वाले भी अनेक गीतों की रचना इसमें दृष्टिगोचर होती है। जिनकी सूची परिशिष्ट में दी गई है।

(४) सुदर्शन के गर्भ में आने पर उनकी माता ने जो पांच स्वप्न देखे, उनका और मुनिराज के द्वारा उनके फल का वर्णन बहुत सुन्दर किया गया है।

(५) सुदर्शन के जन्म और बाल्यकाल की क्रीड़ाओं का वर्णन बहुत स्वाभाविक हुआ है, उसे पढ़ते समय ऐसा भान होने लगता है, मानों बालक सुदर्शन सामने ही खेल रहा है।

(६) सुदर्शन को लक्ष्य करके जो प्रभाती, जिन-दर्शन, जिन-पूजन आदि का वर्णन इसमें किया गया है, वह अत्यन्त भावना पूर्ण एवं प्रत्येक गृहस्थ को अनुकरणीय है।

(७) कपिला ब्राह्मणी और अभया रानी की कामोन्मत्त चेष्टाओं का वर्णन अनूठा है और देवदत्ता वेश्या के द्वारा जो प्राणायाम, अनेकान्त और सिद्धशिला का चित्र खींचा गया है, वह तो कवि की कल्पनाओं की पराकाष्ठा का ही द्योतक है।

(८) उक्त तीनों ही स्थलों पर सुदर्शन के उत्तर, उनकी चातुरी, ब्रह्मचर्य-दृढ़ता और परम संवेग-शीलता के परिचायक हैं। यहां उन्हें देकर हम प्रस्तावना का कलेवर नहीं बढ़ाना चाहते। पाठक मूल ग्रंथ को पढ़ते हुए स्वयं ही उन्हें हृदयङ्गम करेंगे।

(९) ऋषभदास सेठ के पूछने पर मुनिराज के द्वारा धर्म के स्वरुप का वर्णन, सुदर्शन के पूछने पर गृहस्थ धर्म का निरुपण, स्त्रीकृत उपसर्गों की दशा में सुदर्शन का शरीर-गत विरुपता का चिन्तवन, घर जाते हुए मोहिनी माया का दर्शन, सुदर्शन मुनिराज के रुप में मुनि धर्म के आदर्श का वर्णन और वेश्या को लक्ष्य करके किया गया श्रावक धर्म का उपदेश मननीय एवं ग्रन्थ-निर्माता के अगाध धार्मिक परिज्ञान का परिचायक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०) नवें सर्ग के ५८वें श्लोक में द्विदल अन्न को कच्चे दूध, दही और छांछ के साथ खाने का निषेध किया गया है। इसकी विशद व्याख्या करते हुए ग्रन्थकार ने लिखा है - "वर्तमान के कुछ जैन महानुभाव कहते हैं कि कच्चे दूध और कच्चे दूध से जमे दही के साथ द्विदल अन्न नहीं खाना चाहिए। गरम दूध से जमे हुये दही को पुनः गरम करने की क्या जरुरत है? और ऐसे लोग अपने कथन की पुष्टि में पं. आशाधर के सागार धर्मामृत के पांचवें अध्याय का 'आमगोरससंप्रक्तं द्विदलं' इत्यादि २८ वां श्लोक प्रस्तुत करते हैं. पर इस श्लोक में आये हुए 'आम' शब्द का अर्थ है अनग्नि पक्क, तथा गोरस का अर्थ है दूध और दही। आम विशेषण है और गोरस विशेष्य है। 'आमौ च तौ गोरसौ दुग्ध-दधिनी ताभ्यां संप्रक्तं द्विदलं'। इसका अर्थ होता है- कच्चे दूध से या कच्चे दही से मिला हुआ द्विदल। किन्तु 'कच्चे दूध के दही से,' ऐसा अर्थ कहां से लिया जा सकता है। स्वयं पं. आशाधरजी ने भी अपनी टीका में यही अर्थ किया है। देखो-

नाहरेन्न भक्षयेद् दयापरः। किं तत्? द्विदलं मुद्र-माषादि धान्यम् । किं विशिष्ट? आमेत्यादि-आमेनानग्रिपक्के न गोरसेण दध्ना अक्केथितक्षीरादिसम्भूतेन, तक्रेण च संप्रक्तं' इत्यादि।

अर्थात् बिना गरम किये हुये गोरस यानी दूध और दही के साथ, तथा बिना गरम किये हुए दूध वगैरह की बनी छांछ के साथ मिला हुआ, ऐसा द्विदल अन्न। अब यदि 'अक्कथितक्षीरादिसम्भूतेत' इस विशेषण को इसके पूर्व के दधि शब्द का मान लिया जाय, तो फिर इसमें जो 'आदि' शब्द हैं, वह व्यथ रहता है। अतएव वह विशेषण तो आगे वाले तक्र शब्द का है। जिस दूध में से, या दही में से लोनी (मक्खन) निकाल लिया जाता है उसे तक्र या छाछ कहते हैं।

किञ्च- कितने ही पूर्वाचार्यों ने तो हर हालत में ही क्या दही और दूध दोनों के ही साथ द्विदल खाने का निषेध किया है। देखो-

"वेदल मिसियउ देहि महिउ भुत्तु ण सावय होय।

खद्दयि दंसण भंगु पर समत्तउ मइलेइ ॥३६॥"

(योगीन्द्र देव कृत श्रावकाचार)

इसी प्रकार श्री श्रुतसागर सूरि ने भी चारित्र पाहुड की टीका में लिखा है-

"द्विदलान्न मिश्रं दधि तक्रं खादितं सम्यक्त्वमपि मलिनयेदिति"॥

(पृष्ठ ४३)

उक्त दोनों ही उद्धरणों में यह बतलाया गया है कि कच्चे और पक्के दोनों ही तरह के गोरस के साथ द्विदल अन्न खाने वाला अपने सम्यक्त्व को भी मलिन कर देता है। फिर व्रतीपना तो रहेगा ही कहां से।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह भली भांति ज्ञात हो जाता है कि पक्के दूध के जमाये हुये कच्चे दही-छांछ के साथ द्विदल अन्न के खाने को किसी भी जैनाचार्य ने भोज्य नहीं बतलाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(११) इसी नवें सर्ग के ६३ वें श्लोक में सचित्त त्याग प्रतिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि संयमी पुरुष पत्र और फल जाति की किसी भी अनग्निपक्व वनस्पति को नहीं खाता है। यहां पर ग्रन्थकार ने अनग्निपक' पद देकर उन लोगों की ओर एक गहरा संकेत किया है- जो कि मूल वृक्ष से पृथक हुए पत्र, पुष्प, फल आदि को सचित्त नहीं मानते हैं। यह ठीक है कि तोड़े गये पत्र फलादिक में मूल वृक्ष जाति का जीव नहीं रहता, पर बीज आदि के रूप में सप्रतिष्ठित होने के कारण वह सचित ही बना रहता है। गन्ना को उसके मूल भाग से काट लेने पर भी उसके पर्व (पोर की गांठ, अनन्त निगोद के आश्रित हैं।) फिर उसे कैसे अचित माना जा सकता है। गन्ने का यंत्र-पीलित रस ही अचित्त होता है और तभी वह सचित्त त्यागी को ग्राह्य है। अमरुद आदि फलों के भीतर रहने वाले बीज भी सप्रतिष्ठित हैं, अतः वृक्ष से अलग किया हुआ अमरुद भी सचित्त ही है। यही बात शेष पत्र-पुष्प और फलादिक के विषय में जानना चाहिए।

(१२) इसी नवें सर्ग के श्लोक ६५ में सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार ने 'समस्तमप्युज्झतु सम्व्यवायं' वाक्य के द्वारा स्त्री मात्र का ही त्याग नहीं कराया है, प्रत्युत अनंग क्रीड़ा, हस्तमैथुन, आदि सभी प्रकार के अनैतिक मैथुन सेवन को भी सर्वथा त्याज्य प्रतिपादन किया है। साधारण बारह व्रतों के पालन करने वाले के लिए अनंगक्रीड़ा आदि अतीचार हैं, पर प्रतिमाधारी के लिए तो वह अनाचार ही हैं।

(१३) इसी सर्ग के ७०-७१ वें श्लोक में धर्म रुप वृक्ष का बहुत सुन्दर रुपक बतलाया गया है, जिसका आनन्द पाठक उसे पढ़ने पर ही ले सकेंगे।

सुदर्शनोदय पर प्रभाव

प्रस्तुत सुदर्शनोदय के कथानक पर जहां अपने पूर्ववर्ती कथा ग्रन्थों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, वहां धार्मिक प्रकरणों पर सागरधर्मामृत और क्षत्रचूड़ामणि का प्रभाव परिलक्षित होता है। यथा-

'मां हिंस्यात्सर्वभूतानीत्यार्षं धर्मे प्रमाणयन्।
सागसोऽप्यङ्गिनो रक्षेच्छक्त्या किन्तुनिरागसः॥

(सुदर्श. सर्ग ४, श्लो. ४१)

न हिंस्यात्सर्वभूतानीत्यार्षं धर्मे प्रमाणयन्।
सागसोऽपि सदा रक्षेच्छक्त्या किन्तु निरागसः॥

(सागार. अ. २, श्लो. ८१)

पत्रशांक च वर्षासु नऽऽहर्तव्यं दयावता ॥

(सुदर्शं. स. ९, श्लो. ५६)

वर्षास्वदलितं चात्र पत्रशाकं च नाहरेत्॥

(सागारधर्मा. अ. ५ श्लो. १८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मदीयं मासलं देह दृष्टवेयं मोहमागता।
दुरन्तदुरितेनाहो चेतनास्याः समावृता।।

(सुदर्श. स. ७. श्लो. २२)

मदीयं मांसलं मांसममीमांसेयमङ्गना।
पश्यन्ती पारवश्यान्धा ततो याम्यात्मनेऽथवा।।

(क्षत्रचूडामणि, लम्ब ७ श्लो. ४०)

इस तीसरी तुलना के प्रकरण को देखते हुए यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि सुदर्शनोदयकार पर क्षत्रचूड़ामणि के उक्त प्रकरण का प्रभाव है।

एक विचारणीय बात

सुदर्शनोदय में वर्णित प्रसंगों को गहराई से देखने पर एक स्थल ऐसा दिखाई देता है, जो कि विद्वानों के लिए विचारणीय है। नवें सर्ग में देवदत्ता वेश्या के द्वारा सुदर्शन मुनिराज को पड़िगाह कर और मकान के भीतर ले जाकर उनसे अपना अभिप्राय प्रकट करने का वर्णन आया है। उस वेश्या के वचनों को सुनकर और आये हुए संकट को देखकर उसे दूर करने के लिए सुदर्शन मुनिराज के द्वारा वेश्या को सम्बोधित करते हुए संसार, शरीर और विषय-भोगों की असारता, अशुचिता और अस्थिरता का उपदेश दिलाया गया है। साधारण दशा में यह उपदेश उपयुक्त था। किन्तु गोचरी को निकले हुए साधु तो गोचरी सम्पन्न हुए बिना बोलते नहीं हैं, मौन से रहते हैं, फिर यहां पर ग्रन्थकार ने कैसे सुदर्शन के द्वारा उपदेश दिलाया? आ. हरिषेण, नयनन्दि आदि ने भी साधु की गोचरी-सम्बन्धी मौन रखने की परिपाटी का पालन किया है और आये हुए उपसर्ग को देखकर सुदर्शन के मौन रखने का ही वर्णन किया है। यह आशंका प्रत्येक विद्वान पाठक को उत्पन्न होगी। जहां तक मैं समझता हूँ, सुदर्शनोदयकार ने पूर्व परम्परा के छोड़ने की दृष्टि से ऐसा वर्णन नहीं किया है, गोचरी को जाते हुए साधु की मर्यादा से वे स्वयं भली भांति परिचित हैं। फिर भी उनके ऐसा वर्णन करने का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि वेश्या के द्वारा अपना अभिप्राय प्रकट करते ही सुदर्शन मुनिराज अपने साथ किये छल को समझ गये और उन्होंने गोचरी करने का परित्याग कर उसे सम्बोधन करना उचित समझा, जिससे कि यह संसार, देह और भोगों की असलियत को समझ कर उनसे विरक्त हो जाय। पर सुदर्शन मुनिराज के इस उपेदश का उस पर कोई असर नहीं हुआ और उसने उन्हें अपनी शय्या पर हठात् पटक लिया और लगातार तीन दिन तक उसने अपने सभी अमोघ कामास्त्रों का उन पर प्रयोग किया। पर मेरु के समान अचल सुदर्शन पर जब उसके सभी प्रयोग असफल रहे, तब अन्त में वह अपनी असफलता को स्वीकार कर उनका गुण-गान करती हुई प्रशंसा करती है, उनके चरणों में गिरती है, अपने दुष्कृत्यों के लिए निन्दा करती हुई क्षमायाचना करती है और उपदेश देने के लिए प्रार्थना करती है। सुदर्शन मुनिराज उसकी यथार्थता को देखकर उसे पुनः उपदेश देते हैं और अन्त में उन्हें सफलता मिलती है। फलस्वरुप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह वेश्या और वह पंडिता दासी दोनों घर-बार छोड़कर और अपने पापों का प्रायश्चित करके आर्यिका बन जाती हैं। इस प्रकार सुदर्शनोदयकार का यह उक्त वर्णन पूर्व परम्परा का परिहार न कह कर उन पतितों के उद्धार का ही कार्य कहा जाना चाहिए। ग्रन्थकार को सुदर्शन मुनिराज के द्वारा उपदेश दिलाने का यही समुचित अवसर प्रतीत हुआ, क्योंकि उनके अन्तःकृत्केवली होने की दृष्टि से उन्हें उनके द्वारा आगे उपदेश देने का और कोई अवसर दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुदर्शनोदयः

वीरप्रभुः स्वीयसुबुद्धिनावा भवाब्धितीरं गमितप्रजावान् ।
सुधीवराराध्यगुणान्वया वाग्यस्यास्ति नः शास्ति कवित्वगावा ॥

जिस वीर प्रभु की गुणशालिनी वाणी की आराधना-उपासना सुधीवर उत्तम बुद्धिवाले उच्च कुलीन विद्वज्जनों ने और मन्दबुद्धि वाले मृगसेन धीवर जैसे नीच कुलीन लोगों ने की है, तथा जिस वाणी की हम सरीखे अल्प-ज्ञानियों के ऊपर भी कवित्व शक्ति प्राप्त करने के रुप में कृपा हो रही है, ऐसे श्रीवीर प्रभु अपनी सुबुद्धि रुप नाव के द्वारा संसार के समस्त प्राणियों को भवसागर से पार उतारने वाले होवें ॥१॥

वागुत्तमा कर्मकलङ्कजेतुर्दुरन्तदुःखाम्बुनिधौ तु सेतुः ।
ममास्त्व मुष्मिंस्तरणाय हेतुरदृष्टपारे कविताभरे तु ॥२॥

कर्म-कलङ्क को जीतने वाले श्रीजिन भगवान् की जो दिव्य-वाणी इस दुरन्त दुःखों से भरे भवसागर में सेतु (पुल) के समान है, वही भगवद्-वाणी इस अपार काव्य-सागर से पार उतरने के लिए मुझे भी सहायक हो ॥२॥

भवान्धुसम्पातिजनैकबन्धुर्गुरुश्चिदानन्दसमाधिसिन्धुः ।
गतिर्ममैतस्मरणैकहस्तावलम्बिनः काव्यपथे प्रशस्ता ॥३॥

जो गुरुदेव भव-कूप में पड़े जनों के उद्धार करने के लिए एक मात्र बन्धु हैं और चिदानन्द-समाधि के सिन्धु हैं, उनके गुणा-स्मरण का ही एकमात्र जिसके हस्तावलम्बन है, ऐसे मेरे इस काव्य-पथ में उनके प्रसाद से प्रशस्त गति हो ॥३॥

सुदर्शनाख्यान्तिमकामदेव कथा पथायातरथा मुदे वः।
भो भो जना वीरविभोर्गुणौघानसोऽनुकूलं स्मरताममोघा ॥४॥

हे पाठकों, सुदर्शन नाम के अन्तिम कामदेव की कथा आप लोगों के लिए रोचक एवं प्रमोद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्धक है। उसका व्याख्यान आचार्य-परम्परा से अविच्छिन्न चला आ रहा है और जो अनन्त गुणों के निधान श्रीवीर भगवान् का स्मरण करने वाले आप लोगों के लिए बहुत ही अनुकूल है, जिसका सुनना आप लोगों के जीवन को सफल बनाने वाला है। (यहां पर मैं उसी का वर्णन करुंगा, सो एकाग्र होकर सुनें।) ॥४॥

पुराणशास्त्रं बहु दृष्टवन्तः नव्यं च भव्यं भवतात्तदन्तः।
इदं स्विदङ्के द्रुतमभ्युदेति यदादरी तच्छिशुको मुदेति ॥५॥

हे मानुभावो, आप लोगों ने पुराणों और शास्त्रों को बहुत बार देखा है, जिनकी कि रचना अपूर्व, मनोरंजक एवं प्रशंसनीय है। उन्हीं में प्रसंग-वश सुदर्शन सेठ का वृत्तान्त आया हुआ है। उन्हीं के आधार पर यह प्रबन्ध लिखने के लिए उनके रचयिता आचार्यों का अनुयायी यह बालक भी सादर उद्यत हो रहा है ॥५॥

अस्मिन्निदानीमजडेऽपि काले रुचिः शुचिः स्यात्खलु सत्तमाऽऽले।
जडाशयादेवमदङ्कपङ्काज्जाते सुवृत्तेऽपि न जातु शङ्का ॥६॥

ज्ञान-विज्ञान से उन्नत इस वर्तमान काल में मुझ जैसे अज्ञ पुरुष के द्वारा वर्णन किये जाने वाले इस चरित के पठन-श्रवण में उत्तम पुरुषों की अच्छी रुचि होगी, या नहीं, ऐसी शङ्का तो मेरे मन में है ही नहीं, क्योंकि प्रचण्ड ग्रीष्म-काल में यदि किसी सरोवर में कोई कमल दृष्टिगोचर हो, तो उस पर तो भ्रमर और भी अधिक स्नेह दिखलाया करता है ॥६॥

विचारसारे भुवनेऽपि साऽलङ्कारामुदारां कवितां मुदाऽलम्।
निषेवमाणे मयि यस्तु पण्डः स केवलं स्यात् परिफुल्लगण्डः॥७॥

विचारशील मनुष्यों के विद्यमान होने से सार-युक्त इस लोक में अलंकार (आभूषण) युक्त नायिका के समान विविध प्रकार के अलंकारों से युक्त इस उदार कविता को भली भांति सहर्ष सेवन करने वाले मुझ पर केवल वही पुरुष अपने गाल फुलावेगा-चिढ़ कर निन्दा करेगा - जो कि षण्ढ (नपुंसक-पक्ष में कविता करने के पुरुषार्थ से हीन) होगा। अन्य लोग तो मेरे पुरुषार्थ की प्रशंसा ही करेंगे ॥७॥

अनेक धान्यार्थकृतप्रचारा समुल्लसन्मानसवत्युदारा।
सतां ततिः स्याच्छरदुक्तरीतिः सा मेघसंघातविनाशिनीति ॥८॥

सत्पुरुषों की सन्तति-शरद् ऋतु के समान सुहावनी होती है। जैसे शरद्-ऋतु अनेक प्रकार के धान्यों को उत्पन्न करती है और मार्गों का कीचड़ सुखाकर गमना-गमन का संचार प्रारम्भ करने वाली होती है, उसी प्रकार सन्त जनों की सन्तति अनेक प्रकारों से अन्य लोगों का उपकार करने के लिए तत्पर रहती है। जैसे शरद्-ऋतु में मान सरोवर आदि जलाशयों का जल निर्मल लहरों से उल्लासमान रहता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी प्रकार सज्जनों की सन्तति का मनोमन्दिर भी सदा ही उल्लास-युक्त रहता है। जैसे शरद्-ऋतु में उदार एवं मेघ समूह का विनाश करने वाली होती है, उसी प्रकार सत्पुरुषों की सन्तति भी उदार एवं लोगों के पापों का विनाश करने वाली होती है ॥८॥

कृपाङ्कुराः सन्तु सतां यथैव खलस्य लेशोऽपि मुदे सदैव।
यच्छीलनादेव निरस्तदोषा पयस्विनी स्यात्सुकवेश्च गौः सा ॥९॥

सुकविकी वाणी रुप गाय को जीवित रहने के लिए जिस प्रकार सत्पुरुषों की दयारुप दूर्वा (हरी घास) आवश्यक होती है, उसी प्रकार उसे प्रसन्न रखने के लिए दूर्वा के साथ खल (दुष्ट पुरुष और तिलकी खली) का समागम आवश्यक है, क्योंकि खल के अनुशीलन से जैसे गाय निर्दोष (स्वस्थ) रहकर अधिक दूधारु हो जाती है, उसी प्रकार दुष्ट पुरुष के द्वारा दोष दिखाने से कवि की वाणी भी निर्दोष और आनन्द-वर्धक हो जाती है ॥९॥

कवेर्भवेदेव तमोधुनाना सुधाधुनी गौर्विधुवद्विधाना।
विरज्यतेऽतोऽपि किलैकलोकः स कोकवत्किन्त्वितरस्त्व शोकः ॥१०॥

जैसे चन्द्रमा की किरणें अन्धकार को मिटाने वाली और अमृत को बरसाने वाली होती हैं, उसी प्रकार सुकवि की वाणी भी अज्ञान को हटाकर मन को प्रसन्न करने वाली होती है। फिर भी चकवा पक्षी के समान कुछ लोग उससे अप्रसन्न ही रहते हैं और शेष सब लोग प्रसन्न रहते हैं, सो यह भले-बुरे लोगों का अपना-अपना स्वभाव है ॥१०॥

द्वीपस्य यस्य प्रथितं न्यगायं जम्बूपदं बुद्धिमदुत्सवाय।
द्वीपेषु सर्वेष्वधिपायमानः सोऽयं सुमेरुं मुकुटं दधानः ॥११॥

जिसका नाम ही बुद्धिमानों के लिए आनन्द का देने वाला है, जो सब द्वीपों का अधिपति बनकर सबके मध्य में स्थित है और जो सुमेरु रुप मुकुट को अपने शिर पर धारण किये हुए है, ऐसा यह प्रसिद्ध जम्बूद्वीप है ॥११॥

मुदिन्दिरामङ्गलदीपकल्पः समस्ति मस्तिष्कवतां सुजल्पः।
अनादिसिद्धः सुतरामनल्प लसच्चातुर्वर्गनिसर्गतल्पः ॥१२॥

यह जम्बूद्वीप अनादिकाल से स्वतः सिद्ध बना हुआ है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वगरुप पुरुषार्थ का स्वाभाविक समुत्पत्ति स्थान है, विचारशील जनों के द्वारा जिसके सदा ही गुण गाये जाते हैं ऐसा यह जम्बूद्वीप पुण्य रुप लक्ष्मी का मङ्गल-दीप सदृश प्रतीत होता है ॥१२॥

तदेक भागो भरताभिधानः समीक्षणाद्यस्य तु विद्विधानः।
भालं भवेन्नीरधिचीरवत्या भुवोऽद उच्चैःस्तनशैलतत्याः ॥१३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस जम्बूद्वीप में भरत नाम का एक भाग (क्षेत्र) है, जिसके देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह नीरधि (लवणसमुद्र) रुप वस्त्र को धारण करने वाली और पर्वत रुप उच्च स्तन वाली पृथ्वी देवी का सुन्दर भाल (ललाट) ही है ॥१३॥

स्फुरायमाणं तिलकोपमेयं किलार्य खण्डोत्तमनामधेयम्।
गङ्गापगासिन्धुनदान्तरत्र पवित्रमेकं प्रतिभाति तत्र ॥१४॥

उस भरत क्षेत्र में भी तिलक के समान शोभायमान होने वाला, आर्यावर्त इस उत्तम नाम को धारण करने वाला यह आर्य-खण्ड है, जो कि गंगा और सिन्धु नाम की महा नदियों के अन्तराल में अवस्थित है और आर्य जनों के निवास के कारण जो पवित्र प्रदेश माना गया है ॥१४॥

तदेकदेशः शुचिसन्निवेशः श्रीमान् सुधीमानवसंश्रये सः।
अङ्गाभिधानः समयः समस्ति यस्यासकौ पुण्यमयी प्रशस्तिः ॥१५॥

उस आर्य खण्ड में अंग नाम का एक देश है, जिसका सन्निवेश (वसावट) सुन्दर है और जहां पर श्रीमान एवं बुद्धिमान् लोग निवास करते हैं उस अंग देश की पुण्यमयी प्रशस्ति इस प्रकार है ॥१५॥

सग्रन्थितां निष्फलमुच्छिखत्वं वैरस्य भावं दधदग्रतस्त्वम्।
इक्षो सदीक्षोऽस्यसतः सतेति महीभृता पीलनमेवमेति ॥१६॥

हे इक्षुवृन्द ! तुम लोग भी तो दुर्जनों के सहाध्यायी ही हो! क्योंकि जिस प्रकार दुर्जन लोग मायाचार की गांठ को हृदय के भीतर धारण करते हैं, उसी प्रकार तुम लोग भी अपने भीतर गंडेरी की गांठों को धारण करते हो. दुर्जन लोग बिना प्रयोजन ही अपने शिर को ऊंचा किये रहते हैं और तुम लोग भी अपने ऊपर फूल जैसा निष्फल तुर्रा धारण किये हुये हो। दुर्जन लोग सबके साथ वैरभाव धारण करते हैं और तुम लोग भी अपने ऊपरी अग्रभाग में उत्तरोत्तर नीरस भाव को धारण करते हो। बस, ऐसा मानकर ही मानों भूमिधर किसान लोग उस देश में ईख को पेलते ही रहते हैं। भावार्थ - उस देश में ईख अधिकता से पेली जाती थी, जिससे कि लोगों को गुड़, खाण्ड, शक्कर की प्राप्ति सुलभ थी ॥१६॥

समुच्छलच्छाखतयाऽय वीनां कलध्वनीना भृशमध्वनीनान्।
फलप्रदानाय समाह्वयन्तः श्रीपादपाः कल्पतरुञ्जयन्तः ॥१७॥

उस देश में वृक्ष उछलती हुई अपनी लम्बी-लम्बी शाखा रुप भुजाओं के द्वारा इशारा करके, तथा अपने ऊपर बैठे हुए पक्षियों की मीठी बोली के बहाने से अपने फलों को प्रदान करने के लिए पथिक जनों को बार बार बुलाते हुए कल्पवृक्षों को भी जीतते रहते हैं। भावार्थ - उस देश में फलशाली वृक्षों की अधिकता थी ॥१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अङ्गीकृता अप्यमुना शुभेन पर्यन्तसम्पत्तरुणोत्तमेन।
श्रयन्ति वृद्धाम्बुधिमेव गत्वा ता निम्नगा एव जडाशयत्वात् ॥१८॥

उस देश की निम्नगा (नदियां) वस्तुतः निम्नगा हैं अर्थात् नीचे की ओर बहने वाली हैं। यद्यपि उन नदियों के दोनों तटों पर उद्गम स्थान से लेकर समुद्र में मिलने तक बराबर सघन उन्नत एवं उच्च वृक्ष खड़े हैं, तथापि जड़ाशय (मूर्ख-हृदय) होने से वे वृद्ध समुद्र के पास जाकर ही उसका आश्रय लेती हैं ॥१८॥

भावार्थ - संस्कृत साहित्य में 'ड' और 'ल' में भेद नहीं माना जाता। इस श्लोक में कवि ने यह भाव व्यक्त किया है कि कोई नवयुवती स्वयंवर मंडप में अनेक नवयुवकों के लगातार आदि से अन्त तक बैठे होने पर भी उन सबको छोड़कर यदि वह सबसे अन्त में बैठे हुए बूढ़े मनुष्य को वरण करे तो उसे जड़ाशय अर्थात् महामूर्ख ही कहा जायेगा। इसी प्रकार उस देश की जल से भरी हुई नदियों के दोनों किनारों पर एकसे बढ़कर एक उत्तम वृक्ष खड़े हैं, फिर भी वे नीचे को बहती हुई खारे और बूढ़े समुद्र से जाकर ही मिलती हैं। इसलिए उनका निम्नगा अर्थात् नीच के पास जानेवाली यह नाम सार्थक ही है। इस व्यंग्य से कवि ने यह भाव व्यक्त किया है कि उस अंगदेश में जल से भरी हुई नदियां सदा बहती रहती थी।

पदे पदे पावनपल्वलानि सदाम्रजम्बूज्वलजम्भलानि ।
सन्तो विलक्ष्या हि भवन्ति ताभ्यः सत्र प्रपास्थापनभावनाभ्यः ॥१९॥

उस देश में स्थान स्थान पर पवित्र जल से भरे हुए सरोवर थे और आम, जामुन, नांरगी आदि के उत्तम फलों से लदे हुए वृक्ष थे. इसलिए उस देश के धनिक वर्ग की सदाव्रतशाला खोलने और प्याऊ लगवाने की भावनाएं पूरी नहीं हो पाती थीं। क्योंकि सर्वसाधारण लोगों को पद-पद पर सरोवरों से पोने को पानी और वृक्षों से खाने को मिष्ट फल सहज में ही प्राप्त हो जाते थे ॥१९॥

ग्रामान् पवित्राप्सरसोऽप्यनेक-कल्पांघ्रिपान्यत्र सतां विवेकः ।
शस्यात्मसम्पत्समवायिनस्तान् स्वर्गप्रदेशान्मनुते स्म शस्तान् ॥२०॥

उस देश के ग्राम भी सज्जनों को स्वर्ग सरीखे-प्रतीत होते थे। जैसे स्वर्ग में उत्तम अप्सराएं रहती हैं, वैसे ही उन गांवों मे निर्मल जल के भरे हुए सरोवर थे। जैसे स्वर्ग में नाना जाति के कल्पवृक्ष होते हैं, उसी प्रकार उन गावों में भी अनेक जाति के उत्तम वृक्ष थे । जैसे स्वर्ग में नाना प्रकार की प्रशंसनीय सम्पदा होती है, उसी प्रकार उन गांवों में भी नाना जाति के धान्यों से सम्पन्न खेत थे। इस प्रकार वे गांव स्वर्ग जैसे ही ज्ञात होते थे ॥२०॥

पञ्चाङ्गरुपा खलु यत्र निष्ठा सा गोचराधारतयोपविष्टा।
भवानिनो वत्सलताभिलाषी स्पृशेदपीत्थं बहुधान्यराशिम् ॥२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस अंग देश के गांव पञ्चाङ्ग से प्रतीत होते थे। जैसे ज्योतिषियों का पञ्चाङ्ग तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण इन पांच बातों से युक्त होता है, उसी प्रकार उस देश के ग्राम वासी लोग सादा भोजन, सादा पहिनावा, पशु-पालन, कृषि-करण सादा रहन-सहन इन पांच बातों को सदा व्यवहार में लाते थे। उन ग्रामों में चारों ओर गोचर-भूमि थी, जो कि पञ्चाङ्ग के ग्रह गोचर का स्मरण कराती थी। वहां के गांवों के प्रधान पुरुष गायों के बछड़ों से बड़ा स्नेह रखते थे, क्योंकि उनके द्वारा उत्पन्न की हुई अपार धान्य राशि उन्हें प्राप्त होती थी ॥२१॥

उद्योतयन्तोऽपि परार्थमन्तर्घोषा बहुव्रीहिमया लसन्तः।
यतित्वभङ्चन्त्यविकल्पभावान्नृपा इवामी महिषीश्वरा वा ॥२२॥

उस देश में जो गुवालों की बसतियां हैं, उसमें बसने वाले गुवाले लोग अपने अन्तरङ्ग में परोपकार की भावना लिए रहते थे, जैसे कि बहुव्रीहि समास अपने मुख्य अर्थ को छोड़कर दूसरे ही अर्थ को प्रकट करता है, एवं उन गुवालों के पास अनेक प्रकार के धान्यों का विशाल संग्रह था। तथा उस देश के गुवाले अविकल्पभाव से यतिपने को धारण करते थे। साधु संकल्प-विकल्प भावों से रहित होता है और वे गुवाले अवि अर्थात् भेड़ों के समूह वाले थे। तथा वे गुवाले राजाओं के समान महिषीश्वर थे। राजा तो महिषी (पट्टरानी) का स्वामी होता है और वे गुवाले महिषी अर्थात् भैंसों के स्वामी थे। भावार्थ - उस देश के हर गांव में गुवाले रहते थे, जिससे कि सारे देश में दूध-दही और घी की कहीं कोई कमी नहीं थी ॥२२॥

अनीतिमत्यत्र जनः सुनीतिस्तया भयाढ्यो न कृतोऽपि भीतिः।
विसर्गमात्मश्रिय ईहमानः स साधुसंसर्गविधानिधानः ॥२३॥

कवि विरोधालङ्कार-पूर्वक उस देश का वर्णन करते हैं- अनीतिवाले उस देश में सभी जन सुनीति वाले थे और भयाढ्य होते हुए भी उन्हें किसी से भी भय नहीं था। विसर्ग को ही अर्थात् खोटे धंधे को ही अपनी लक्ष्मी बढ़ाने वाला समझते थे, फिर भी वे अच्छे धंधों के करने वालों में प्रधान थे. ये सभी बातें परस्पर विरुद्ध हैं, अतः विरोध का परिहार इस प्रकार करना चाहिए कि ईति (दुर्भिक्ष आदि) से रहित उस देश में सभी सुन्दर नीति का आचरण करते थे और भा अर्थात् कान्ति से युक्त होते हुए भी वे किसी से भयभीत नहीं थे। वे अपनी चंचल लक्ष्मी का विसर्ग अर्थात् त्याग या दान करना ही उसका सच्चा उपयोग मानते थे और सदा साधु जनों के संसर्ग करने में अग्रणी रहते थे। ॥२३॥

भुवस्तु तस्मिंल्लपनोपमाने समुन्नतं नक्रमिवानुजाने।
चम्पापुरी नाम जनाश्रयं तं श्रियो निधाने सुतरां लसन्तम् ॥२४॥

इस प्रकार सर्व सुख-साधनों से सम्पन्न वह अङ्गदेश इस पृथ्वी रूपी स्त्री के मुख के समान प्रतीत होता था और जिस प्रकार मुख पर नाक का एक समुन्नत स्थान होता है, उसी प्रकार उस अङ्गदेश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में चम्पापुरी नाम की नगरी का सर्व प्रकार से उन्नत होने के कारण उच्च स्थान था। भावार्थ- लक्ष्मी के निधानभूत उस अङ्गदेश में चम्पापुरी नगरी थी, जहां पर उत्तम जनों का निवास था ॥२४॥

शालेन बद्धं च विशालमिष्ट-खलक्षणं सत्परिखोपविष्टम्।
बभौ पुरं पूर्वमपूर्वमेतद्विचित्रभावेन विलोक्यतेऽतः ॥२५॥

आकाश को स्पर्श करने वाले विशाल शाल (कोट) से वह चम्पापुर नगर चारों ओर से वेष्टित था और उसको सर्व ओर से घेरकर जल से भरी गहरी उत्तम खाई भी अवस्थित थी। इस प्रकार वह पुरी उस समय अपूर्व रूप को धारण करके शोभा को प्राप्त थी और इसीलिए वह लोगों के द्वारा आश्चर्ययुक्त विचित्र भाव से देखी जाती थी ॥२५॥

यस्मिन् पुमांसः सुरसार्थलीलाः सुरीतिसूक्ता ललनाः सुशीलाः।
पुरं बृहत्सौधसमूहमान्यं तत्स्वर्गतो नान्यदियाद्वदान्यः ॥२६॥

उस नगर में पुरुष सुर-सार्थ अर्थात् देव-समूह के समान लीला-विलास करने वाले थे, अथवा सुरस अर्थ (धन-सम्पत्ति) का भली भांति उपभोग करने वाले थे. वहां की ललनाएं देवियों के समान सुशील और सुन्दर मिष्ट भाषिणी थी। वहां के विशाल प्रासाद सौधसमूह से मान्य थे। स्वर्ग के भवन तो सुधा (अमृत) से परिपूर्ण होते हैं और इस नगर के भवन सुधा (चूना) से बने हुए थे। इस प्रकार विवेकी लोग उस नगर को सम्पूर्ण सादृश्य होने के कारण स्वर्ग से भिन्न और कुछ नहीं मानते थे- अर्थात् उसे स्वर्ग ही समझते थे ॥२६॥

सुरालयं तावदतीत्य दूरात्पुराद् द्विजिह्वाधिपतेश्च शूराः ।
समेत्य सत्सौधसमूहयुक्ते सन्तो वसन्तोऽकुटिलत्वसूक्ते ॥२७॥

सुरालय को तथा द्विजिह्वों (सर्पों के) के अधिपति शेषनाग के निवास नागलोक को भी दूर से ही छोड़कर शूरवीर पुण्याधिकारी महापुरुष उत्तम सौध-समूह से युक्त उस कुटिलता-रहित सरल चम्पापुर में आकर बसते थे ॥२७॥

भावार्थ - इस श्लोक में पठित 'सुरलाय' द्विजिह्व और सौधपद द्व्यर्थक हैं। जिस प्रकार बुद्धिमान् सज्जन पुरुष सुरा (मदिराः) के आलय (भवन) को छोड़कर सुधा (अमृत) मय स्थान में जाना पसन्द करते हैं, उसी प्रकार पुण्याधिकारी देव लोग भी अपने सुर + आलय स्वर्ग को छोड़ कर उस नगर में जन्म लेते थे । इसी प्रकार जैसे सन्त पुरुष कुटिल स्थान को छोड़कर सरल स्थान का आश्रय लेते हैं ठीक इसी प्रकार से नागकुमार जाति के देव भी अपने कुटिल नागलोक को छोड़कर उस नगर में जन्म लेते थे। कवि के कहने का भाव यह है कि वहां देवलोक या नागलोक से आनेवाले जीव ही जन्मलेते थे, नरक या तिर्यंच गति से आने वाले नहीं, क्योंकि इन दोनों गतियों से आनेवाले जीव क्रूर और कुटिल परिणामी होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्तामया एव जनाश्च चन्द्र–कान्ताः स्त्रियस्ताः सकला नरेन्द्रः।
शिरस्सु वज्रं द्विषतामिहालं पुरं च रत्नाकरवद्विशालम् ॥२८॥

उस नगर के निवासी जन मुक्तामय थे, स्त्रियां सर्व कलाओं से सम्पन्न चन्द्रकान्त तुल्य थीं और राजा शत्रुओं के शिरों पर वज्रपात करने के कारण हीरकमणि के समान था। इस प्रकार वह चम्पापुर एक विशाल रत्नाकर (रत्नों के भण्डार समुद्र) के समान प्रतीत होता था ॥२८॥

भावार्थ - जैसे समुद्र में मोतियों, चन्द्रकान्त मणियों और हीरा, पन्ना आदि जवाहरातों का भण्डार होता है, उसी प्रकार नगर के निवासी मुक्त आमय थे अर्थात् नीरोग शरीर वाले थे और मोतियों की मालाओं को भी धारण करते थे। स्त्रियों के शरीर चन्द्रमा की कान्ति को धारण करने के कारण चन्द्रकान्तमणि से प्रतीत होते थे और राजा शत्रुओं के शिरों पर वज्र प्रहार करने से हीरा जैसा था. इस प्रकार सर्व उपमाओं से सादृश्य होने के कारण उस नगर को रत्नाकार की उपमा दी गई है।

पराभिजिद् भूपतिरित्यनन्तानुरुपमेतन्नगरं समन्तात्।
लोकोऽखिलः सत्कृतिकः पुनस्ताः स्त्रियः समस्ता नवपुष्य शस्ताः ॥२९॥

वह नगर सर्व ओर से ज्योतिर्लोक सा प्रतीत होता था. क्योंकि जैसे ज्योतिर्लोक में अभिजत् नक्षत्र होता है, उसी प्रकार उस नगर का राजा पर–अभिजित् अर्थात् शत्रुओं को जीतने वाला था। आकाश में जैसे कृत्तिका नक्षत्र होता है, उसी प्रकार उस नगर के निवासी सभी लोग सत्–कृतिक थे, अर्थात् उत्तम कार्यों के करने वाले थे. और जैसे ज्योतिर्लोक में पुष्य नक्षत्र होता है, वैसे ही उस नगर में रहने वाली समस्त स्त्रियां 'न वपुषि अशस्ताः' थीं अर्थात् शरीर में भद्दी या असुन्दर नहीं थी, प्रत्युत सुन्दर और पुष्ट शरीर को धारण करने वाली थीं । इस प्रकार वह सारा नगर ज्योतिर्लोक सा ही दिखाई देता था.॥२९॥

बलेः पुरं वेद्मि सदैव सर्पैरधोगतं व्याप्ततया सदर्पैः।
पुरं शचीशस्य भृतं नभोगैः स्वतोऽधरं पूर्णमिदं सुयोगैः ॥३०॥

वह चम्पापुर तीनों लोकों में श्रेष्ठ था, क्योंकि बलिराजा का नगर पाताल लोक तो सदा ही दर्पयुक्त विषधर सर्पों से व्याप्त होने के कारण अधम है, निकृष्ट है । और शची इन्द्राणी के स्वामी इन्द्र का पुर स्वर्ग लोक 'नभोगैः भृतं' अर्थात् नभ (आकाश) में गमन करने वाले देवों से भरा हुआ है। दूसरा अर्थ यह कि वह 'भोगैः न भृतं' अर्थात् सुख के साधन भोग–उपभोगों से भरा हुआ नहीं है, (क्योंकि देव लोग आहार, निद्रा आदि से रहित होते हैं, अतः वहां खाने–पीने और सोने आदि की सामग्री का अभाव है और वह आकाश में अधर अवस्थित है, अतः किसी काम का नहीं है। किन्तु चम्पानगर भूमि पर अवस्थित एवं भोग–उपभोग की सामग्री से सम्पन्न होने के कारण सर्व योगों से परिपूर्ण है, अतः सर्वश्रेष्ठ है ॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनालयाः पर्वततुल्यगाथाः समग्रभूसम्भवदेणनाथाः।
श्रृङ्गाग्रसंलग्नपयोदखण्डाः श्रीरोदसीदशितमानदण्डाः ॥३१॥

उस नगर में जिनालय पर्वत के समान प्रतीत होते थे। जैसे पर्वत उन्नत एवं विशाल होते हैं, वैसे ही वहां के जिनालय भी अति उत्तुंग एवं विस्तृत थे। जैसे पर्वतों पर मृगराज विराजते हैं, वैसे ही उन जिनालयों के शिखरों पर चारों ओर सिंहों की मूर्तियां बनी हुई थी। और जैसे पर्वतों के श्रृङ्गों के अग्रभाग से मेघ-पटल संलग्न रहता है, उसी प्रकार इन जिनालयों के शिखरों के अति ऊँचे होने से उनसे भी मेघ-पटल स्पर्श करता रहता था । इस प्रकार वहां के जिनालय अपनी ऊँचाई के कारण पृथ्वी और आकाश को नापने वाले मानदण्ड से प्रतीत होते थे ॥३१॥

वणिक्पथः श्रीधरसन्निवेशः स विश्वतो लोचननामदेशः।
यस्मिञ्जनः संस्क्रियतां च तूर्णं योऽभूदनेकाथतया प्रपूर्णः ॥३२॥

उस चम्पानगर का वणिक्पथ (बाज़ार) विश्वलोचन कोष सा प्रतीत होता था. जैसे यह कोष श्रीधर आचार्य-रचित है, उसी प्रकार वहां का बाजार सर्व प्रकार की श्री सम्पत्ति से सन्निविष्ट अर्थात् सजा हुआ था। जैसे कोष का नाम विश्वलोचन है, वैसे ही वहां का बाजार संसार-भर के लोगों-के नेत्रों द्वारा देखा जाता था अर्थात् संसार-भर के लोग क्रय-विक्रय करने के लिए वहां आते थे । जैसे विश्वलोचन कोष शब्दज्ञान से मनुष्य को शीघ्र संस्कृत अर्थात् व्युत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार वहां का बाजार भी खरीदने योग्य वस्तुओं से खरीददार को शीघ्र सम्पन्न कर देता था। जैसे यह कोष एक-एक शब्द के अनेक-अनेक अर्थों से परिपूर्ण है, वैसे ही वहां का बाजार एक-एक जाति के अनेक द्रव्यों से भरा हुआ था। तथा जैसे इस कोष में अनेक अध्याय, वर्ग आदि हैं, उसी प्रकार उस नगर के बाजारों के भी अनेक विभाग थे और वहां के राजमार्ग भी लम्बे चौड़े और अनेक थे ॥३२॥

पलाशिता किंशुक एव यत्र द्विरेफवर्गे मधुपत्वमत्र।
विरोधिता पञ्जर एव भातु निरौष्ठ्यकाव्येष्वपवादिता तु ॥३३॥

उस नगर में 'पलाश' इस शब्द का व्यवहार केवल किंशुक (ढाक) के वृक्ष में ही था और कोई मनुष्य पल अर्थात् मांस का खानेवाला नहीं था । मधुप शब्द का व्यवहार केवल द्विरेफ वर्ग अर्थात् भ्रमर-समुदाय में ही होता था और कोई मनुष्य वहां मधु और मद्य का पान करने वाला नहीं था। विरोध-पना वहां पिंजरों में ही था, क्योंकि उनमें ही वि अर्थात् पक्षी अवरुद्ध रहते थे और वहां के किसी मनुष्य में परस्पर विरोधभाव नहीं था। अपवादिता वहां निरौष्ठ्य काव्यों में ही थी, अर्थात् जो विशिष्ट काव्य होते थे, उनमें ही ओष्ठ से बोले जाने वाले प, फ आदि शब्दों का अभाव पाया जाता था, अन्यत्र कहीं भी अपवाद अर्थात् लोगों की निन्दा बुराई आदि दृष्टिगोचर नहीं होते थे ॥३३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कौटिल्यमेतत्खलु चापवल्ल्यां छिद्रानुसारित्वमिदं मुरल्याम् ।
काठिन्यमेवं कुचयोर्युवत्याः कण्ठे ठकत्वं न पुनर्जगत्याम् ॥३४॥

उस नगर में कुटिलता केवल धनुर्लता में ही देखी जाती थी, अन्य किसी भी मनुष्य में कुटिलता दृष्टिगोचर नहीं होती थी । छिद्रानुसारिता केवल मुरली (बांसुरी) में ही देखी जाती थी, क्योंकि मुरली के छेद का आश्रय लेकर गायक लोग अनेक प्रकार के राग आलापते थे, अन्यत्र कहीं भी छिद्रानुसारिता नहीं थी, अर्थात् कोई मनुष्य किसी अन्य मनुष्य के छिद्र (दोष) अन्वेषण नहीं करता था । कठोरपना केवल युवती स्त्रियों के स्तनों में ही पाया जाता था, अन्यत्र कहीं भी लोगों में कठोरता नहीं पाई जाती थी। कण्ठ में ही ठकपना पाया जाता था, अर्थात् 'क' कार और 'ठ' कार इन दो शब्दों से बने हुए कण्ठ में ठकपना था, अन्य किसी भी मनुष्य में ठकपना अर्थात् वंचकपना नहीं था। भावार्थ वहां के सभी मनुष्य सीधे, सरल, कोमल और निंश्चल थे ॥३४॥

श्रीवासुपूज्यस्य शिवाप्तिमत्वात् पुरीयमासीद्बहुपुण्यसत्वा ।
सुगन्धयुक्तापि सुवर्णमूर्तिरिति प्रवादस्य किल प्रपूर्तिः ॥३५॥

यद्यपि यह नगरी पहिले से ही बहुत पुण्यशालिनी थी, तथापि बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्यस्वामी के शिवपद-प्राप्ति करने से और भी अधिक पूज्य हो गई। इस प्रकार इस पुरीने 'सुगन्ध युक्त सोना वाली लोकोक्ति की पूर्ति कर दी थी ॥३५॥

व्याप्नोति वप्रशिखरैर्गगनं पुरं यत्,
पातालमूलमनुखातिकया स्म सम्यक।
आरामधामधनतो धरणीं समस्तां,
लोकत्रयीतिलकतां प्रतियात्यतस्ताम् ॥३६॥

यह नगर अपने परकोटे के शिखरों से तो आकाश को व्याप्त कर रहा था, अपनी खाई की गहराई से पाताल लोक के तल भाग को स्पर्श कर रहा था और अपने उद्यान एवं धन-सम्पन्न भवनों से समस्त पृथिवी को आक्रान्त कर रहा था. इस प्रकार वह पुर तीनों लोकों का तिलक बन रहा था । (इससे अधिक उसकी और क्या महिमा कही जाय) ॥३६॥

अधरमिन्द्रपुरं विवरं पुनर्भवति नागपतेर्नगरं तु नः।
भुवि वरं पुरमेतदियं मतिः प्रवितता खलु यव सतां ततिः ॥३७॥

इन्द्र का नगर स्वर्ग तो अधर हैं, निराधार आकाश में अवस्थित है, अतः बेकार है और नागपति शेषनाग का नगर पाताल में विवर रुप है, बिल (छिद्र) रुप से बसा है, अतएव वह भी किसी गिनती में आने के योग्य नहीं है। किन्त यह चम्पानगर पथ्वी पर सर्वाङ्गरूप से सन्दर बसा हुआ है और यहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर सज्जनों का समुदाय निवास करता है, अतः यह स्वर्ग और पाताल लोक से श्रेष्ठ नगर है, ऐसा मेरा विश्वास है ॥३७॥

धात्रीवाहननामा राजाऽभूदिह नास्य समोऽवनिभाजाम्।
तेजस्वीदृक् यथांऽशुमाली निजप्रजायाः यः प्रतिपाली ॥३८॥

इस नगर में एक धात्रीवाहन नाम का राजा हुआ, जिसकी समता करने वाला इस भूमण्डल पर दूसरा कोई अन्य राजा नहीं था। वह सूर्य के समान तेजस्वी था और अपनी प्रजा का न्याय-नीति-पूर्वक प्रतिपालन करता था ॥३८॥

यतिरिवासकौ समरसङ्गतः सुधारसहितः स्वर्गिवन्मतः।
पृथुदानवारिरिन्द्रसमान एवं नानामहिमविधानः ॥३९॥

वह राजा यति के समान 'समरसङ्गत' था। जैसे साधु समता रस को प्राप्त होते हैं, वैसे ही वह राजा भी समर (युद्ध) सङ्गत था, अर्थात् युद्ध करने में अति कुशल था। स्वर्ग में रहने वाले देवों केसमान वह राजा 'साधु-रस-हित था। जैसे देव सदा सुधा (अमृत) रस के ही पान करने के इच्छुक रहते हैं, वैसे ही यह राजा भी सुधार-सहित था, अर्थात् अपनी प्रजा की बुराइयों को दूर कर उन्हें सुखी बनाने वाला था. इन्द्र जैसे पृथुदानवारि है, पृथु (महा) दानवों का अरि है, उनका विनाशक है, उसी प्रकार यह राजा भी 'पृथु-दान-वारि' था, अर्थात् अपनी प्रजा को निरन्तर सर्व प्रकार के महान् दानों की वर्षा के जल से तृप्त करता रहता था. इस प्रकार वह धात्रीवाहन राजा नाना प्रकार की महिमा का धारण करने वाला था ॥३९॥

अभयमतीत्यभिधाऽभूद्भार्या ययाऽभिविदितो नरपो नार्या।
अपराजितयेवेन्दुशेखरः स्मरस्येव यत्कटाक्षः शरः ॥४०॥

उस धात्रीवाहन राजा के अभयमती नाम की रानी थी, जिसने नारी-सुलभ अपने विशिष्ट गुणों से राजा को अपने वश में कर रखा था, जैसे कि पार्वती ने महादेव को। उस रानी के कटाक्ष कामदेव के बाण के समान तीक्ष्ण थे ॥४०॥

रतिरिव रुपवती या जाता जगन्मोहिनीव काममाता।
चन्द्रकलेव च नित्यनूतनाऽऽनन्दवती नृपशुचः पूतना ॥४१॥

वह रानी रति के समान अत्यन्त रुपवती थी और कामदेव की माता लक्ष्मी के समान जगत को मोहित करने वाली थी। चन्द्रमा की नित्य बढ़ने वाली कला के समान वह लोगों को नित्य नवीन आह्लाद उत्पन्न करती थी और राजा के शोक-सन्ताप को नष्ट करने के लिए पूतना राक्षसी-सी थी ॥४१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चापलतेव च सुवंशजाता गुणयुक्ताऽपि वक्रिमख्याता।
सायकसमवायेन परेषां हृदि प्रवेशोचिता विशेषात् ॥४२॥

वह रानी ठीक धनुष लताका अनुकरण करती थी। जैसे धनुर्लता उत्तम वंश (वांस) से निर्मित होती है, उसी प्रकार यह रानी भी उच्च क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुई थी। जैसे धनुष गुण अर्थात् डोरो से संयुक्त रहता है, उसी प्रकार यह रानी भी सौन्दर्य आदि गुणों से संयुक्त थी। जैसे धनुर्लता वक्रता (तिरछापन) को धारण करती है, उसी प्रकार यह रानी भी मन में कुटिलता को धारण करती थी। जैसे धनुर्लता अपने द्वारा फेंके गये बाणों से दूसरे लोगों के हृदय में प्रवेश कर जाती है, उसी प्रकार यह रानी भी अपने कृत्रिम हाव-भावरूप बाणों से दूसरे लोगों के हृदय में प्रवेश कर जाती थी, अर्थात् उन्हें अपने वश में कर लेती थी ॥४२॥

निम्नगेव सरसत्वमुपेता तडिदिव चपलतोपहितचेता।
दीपशिखेव द्यु तिमत्यासीद्राज्ञे झष-चातक-शलभाशीः ॥४३॥

वह रानी निम्नगा (नीचे की और बहने वाली नदी) के समान सरसता से संयुक्त थी, बिजली के समान चपलता से युक्त चित्तवाली थी, और दीपशिखा के समान कान्तिवाली थी। उसे देखकर राजा की चेष्ठा मीन, चातक और शलभ के समान हो जाती थी ॥४३॥

भावार्थ - जैसे मछली बहते हुए जल में कल्लोल करती हुई आनन्दित होती है, चातक पक्षी चमकती बिजली को देखकर पानी बरसने के आसार से हर्षित होता है और शलभ (पंतगा) दीप-शिखा को देखकर प्रमोद को प्राप्त होता है, उसी प्रकार धात्रीवाहन राजा भी अपनी अभयमती रानी की सरसता को देखकर मीन के समान, बिजली सी चपलता को देखकर चातक के समान और शारीरिक-कान्ति को देखकर पतंगा के समान अत्यन्त आनन्द को प्राप्त था.

निशाशशाङ्क इवायमिहाऽऽसीत् परिकलितः किल यशसां राशिः।
यतः समुद्रोद्धारकारकस्तामसवृत्तिकयाऽभिसारकः ॥४४॥

जिस प्रकार अपने उदय से समुद्र को उद्वेलित करने वाला प्रकाश युक्त चन्द्रमा अन्धकारमयी रात्रि से भी सम्बन्ध रखता है और उसके साथ अभिसार करता है, उसी प्रकार सुवर्णादिकी मुद्राओं (सिक्कों) का उद्धार करने वाला - सिक्कों का चलाने वाला और यश का भण्डार भी यह धात्रीवाहन राजा अपनी भोगमयी तामसी प्रवृत्ति द्वारा रानी अभयमती के साथ निरन्तर अभिसरण करता रहता था ॥४४॥

सार्धसहस्त्रद्वयात्तु हायनानामिहाद्यतः।
बभूवायं महाराजो महावीरप्रभोः क्षणे ॥४५॥

चम्पापुरी का वह धात्रीवाहन नाम का महाराज आज से अढ़ाई हजार वर्षों के पहिले भगवान् महावीर स्वामी के समय में हुआ है ॥ ४५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं,
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
तेन प्रोक्तसुदर्शनोदय इह व्यत्येति संख्यापको,
देशादेर्नृ पतेश्च वर्णनपरः सर्गोऽयमाद्योऽनकः ॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुजजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए, वाणीभूषण, बाल ब्रह्मचारी पं. भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर विरचित इस सुदर्शनोदय काव्य में अंगदेश और उसके राजा का वर्णन करने वाला यह प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ द्वितीयः सर्गः

अथोत्तमो वैश्यकुलावतंसः सदेकसंसत्सरसीसुहंसः।
तस्मिन्निवासी समभून्मुदा स श्रीश्रेष्ठिवर्यो वृषभस्य दासः ॥१॥

उसी समय उस चम्पापुर में वैश्यकुल का आभूषण, सज्जनों की सभा रुप सरोवरी का अद्वितीय हंस और सदा प्रसन्न रहने वाला श्रेष्ठिवर्य श्रीवृषभदास नाम का एक सेठ रहता था ॥१॥

द्विजिह्वतातीतगुणोऽप्यहीनः किलानकोऽप्येष पुनः प्रवीणः।
विचारवानप्यविरुद्धवृत्तिर्मदोज्झितो दानमयप्रवृत्ति ॥२॥

वह सेठ द्विजिह्वतातीत गुणवाला हो करके भी अहीन था।. अर्थात् दो जिह्वावाले सर्पों का स्वामी शेषनाग अपरिमित गुण का धारक होकर के भी अन्त में अहीन ही है, सर्प ही है। परन्तु यह सेठ द्विजिह्वन्ता अर्थात् चुगलखोरी के दुर्गुण से रहित एवं उत्तम सद्-गुणों का धारक होने से अहीन अर्थात् हीनता से रहित था, उत्तम था । वह सेठ आनक होते हुए भी अति प्रवीण था। अर्थात् आनक नाम नगाड़े का है, जो नगाड़ा हो, वह उत्तम वीणा कैसे हो सकता है ? इस विरोध का परिहार यह है कि वह सेठ आनक अर्थात् पापों से रहित था और अति चतुर था। तथा वह विचारवान् होते हुए भी अविरुद्ध वृत्ति था। 'वि' नाम पक्षी का है, जो पक्षियों के प्रचार से युक्त हो, वह पक्षियों से रहित आजीविका वाला कैसे हो सकता है। इस विरोध का परिहार यह है कि वह सेठ अति विचारशील था और जाति-कुल से अविरुद्ध न्याययुक्त आजीविका करने वाला था। वह सेठ मदोज्झित होकर के भी दानमय प्रवृत्तिवाला था। जो हाथी मद से रहित होता है, वह दान अर्थात् मद की वर्षा नहीं कर सकता। मद-युक्त गज के ही गण्डस्थलों से मद झरता है, मद-हीन गजों से नहीं। पर यह सेठ सर्व प्रकार के मदों से रहित हो करके भी निरन्तर दान देने की प्रवृत्तिवाला था ॥२॥

बभौ समुद्रोऽप्यजडाशयश्च दोषातिगः किन्तु कलाधरश्च ।
दृशो न वेषम्यमगात्कुतोऽपि स पाशुपत्यं महदाश्रितोऽपि ॥३॥

वह सेठ समुद्र हो करके भी अजलाशय था. जो समुद्र हो और जल का भरा न हो, यह विरोध है । इसका परिहार यह है कि वह समुद्र अर्थात् स्वर्णादिक की मुद्राओं (सिक्कों) से संयुक्त होते हुए भी जडाशय (मूर्ख) नहीं था, प्रत्युत अत्यन्त बुद्धिमान् था। वह दोषातिग होते हुए भी कलाधर था । कलाधर नाम चन्द्रमा का है, वह दोषा अर्थात् रात्रि का अतिक्रमण नहीं कर सकता, अर्थात् उसे रात्रि में उदित होना ही पड़ता है। पर यह सेठ सर्व प्रकार के दोषों से रहित हो करके भी कलाधर था,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् चातुर्य, आदि अनेक कलाओं का धारक था। और वह सेठ महान् चातुर्य, आदि अनेक कलाओं का धारक था। और वह सेठ महान् पाशुपत्य को आश्रित होकर के भी किसी भी प्रकार से दृष्टि की विषमता को नहीं प्राप्त था । भावार्थ - पशुपति नाम महादेव का है, पर वे विषम दृष्टि हैं, क्योंकि उनके तीन नेत्र हैं । पर यह सेठ सहस्रों गाय-भैंस आदि पशुओं का स्वामी हो करके भी विषम दृष्टि नहीं था, किसी को बुरी दृष्टि से नहीं देखता था, किन्तु सबको समान दृष्टि से देखता था ॥३॥

मतिर्जिनस्येव पवित्ररूपा बभूव नाभिभ्रमणान्धुकूपा।
सधर्मिणी तस्य वणिग्वरस्य कामोऽपि नामास्तु यदिङ्गवश्यः ॥४॥

उस वैश्यनायक सेठ वृषभदास की सेठानी का नाम जिनमति था, तो वह जिनभगवान् की मति के समान ही पवित्र रुप वाली थी, दोष-रहित थी। जिनभगवान् की मति संसार-परिभ्रमणरुप अंधकूप का अभाव करती है और सेठानी की नाभि दक्षिणावर्त भ्रमण को लिए हुए कूप के समान गहरी थी। जैसे जिनमत के अभ्यास से काम-वासना मिट जाती है, वैसे ही सेठानी की चेष्टा से कामदेव उसके वश में हो रहा था ॥४॥

लतेव मृद्वी मृदुपल्लवा वा कादम्बिनी पीनपयोधरा वा।
समेखलाभ्युन्नतिमन्नितम्बा तटी स्मरोत्तानगिरेरियं वा ॥५॥

वह सेठानी तला के समान कोमलाङ्गी मृदुल पल्लव वाली थी। जैसे लता स्वयं कोमल होती है, और उसके पल्लव (पत्र) और भी कोमल होते हैं, वैसे ही सेठानी का सारा शरीर ही कोमल था, पर उसके हस्त वा चरण तल तो और भी अधिक कोमल थे। वह कादम्बिनी (मेघमाला) के समान पीनपयोधरा थी। जैसे मेघमाला जल से भरे हुए बादलों से युक्त होती हैं, उसी प्रकार वह सेठानी विशाल पुष्ट पयोधरों (स्तनों) को धारण करती थी। और वह सेठानी कामरुप उत्तान पर्वत की मेखला-युक्त उपत्या का सी प्रतीत होती थी। जैसे पर्वतक उपत्य का कहीं समस्थल और कहीं विषमस्थल होती है, वैसे ही यह सेठानी भी मेखला अर्थात् करधनी से युक्त थी और उदरभाग में समस्थल तथा नितम्ब भाग में उन्नत स्थलवाली थी ॥५॥

कापीव वापी सरसा सुवृत्ता मुद्रेव शाटीव गुणैकसत्ता।
विधोः कला वा तिथिसत्कृतीद्धाऽलङ्कारपूर्णा कवितेव सिद्धा ॥६॥

वह सेठानी जल से भरी हुई वापी के समान सरल थी, मुद्रिका के समान सुवृत थी, जैसे अंगूठी सुवृत अर्थात् गोल होती है, उसी प्रकार वह सुवृत्त अर्थात् उत्तम आचरण करने वाली थी। साड़ी के समान एक मात्र गुणों से गुम्फित थी, जैसे साड़ी गुण अर्थात् सूत के धागों से बुनी होती है, उसी प्रकार वह सेठानी पातिव्रत्यादि अनेक गुणों से संयुक्त थी। चन्द्रमा की कला के समान तिथिसत्कृतीद्धा थी । जैसे चन्द्र की बढ़ती हुई कलाएँ प्रतिदिन तिथियों को प्रकट करती है, वैसे ही वह सेठानी प्रतिदिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतिथियों का आदर-सत्कार में तत्पर रहती थी। और वह सेठानी अलङ्कार परिपूर्ण उत्तम कविता के समान प्रसिद्ध थी। जैसे उत्तम कविता उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों से परिपूर्ण होती है, वैसे ही यह सेठानी भी गले, कान, हाथ आदि में नाना प्रकार के आभूषणों को धारण करती थी ॥६॥

पवित्ररुपामृतपूर्णकुल्या वाहां सदा हारिमृणालतुल्याम्।
शेवालवच्छलक्षणकचोपचारश्रीमन्मुखाम्भोजवती बभार ॥७॥

यह सेठानी पवित्र सौन्दर्य रुप अमृत से भरी हुई नदी-सी प्रतीत होती थी। उसके शरीर की भुजा तो कमल-नाल के समान लम्बी और सुकोमल थी, शिर के केश शेवाल (काई) के समान चिकने और कोमल थे और उन केशों के समीप उसका मुख खिले हुए कमल सी शोभा को धारण करता था ॥७॥

दीर्घोऽहिनीलः किल केशपाशः दृशोः श्रुतिप्रान्तगतो विलासः।
यस्या मुखे कौसुमसंविकास-संकाश आसीदपि मन्दहासः ॥८॥

उस सेठानी का केशपाश काले सांप केसमान लम्बा और काला था। उसके नेत्र कानों के समीप तक विस्तृत थे और उसके मुख पर विकसित सुमनों के समान सदा मन्द हास्य बना रहता था ॥८।

मालेव या शीलसुगन्धयुक्ता शालेव सम्यक् सुकृतस्य सूक्ता।
श्रीश्रेष्ठिनो मानसराजहंसीव शुद्धभावा खलु वाचि वंशी ॥९॥

वह सेठानी माला के समान शीलरुप सुगन्धि से युक्त थी, शाला के समान उत्तम सुकृत (पुण्य) की भाण्डार थी। श्री वृषभदास सेठ के मानस रूप मानसरोवर में निवास करने वाली राजहंसी के समान शुद्ध भावों की धारक थी और वंशी के समान मधुर भाषिणी थी ॥९॥

कुशेशयाभ्यस्तशया शयाना या नाम पात्री सुकृतोदयानाम् ।
स्वप्नावलीं पुंप्रवरप्रसूत्व-प्रासादसोपानततिं मृदुत्वक् ॥१०॥

अनल्पतूलोदिततल्पतीरे क्षीरोदपूरोदरचुम्बिचीरे।
लक्ष्मीरिवासौ तु निशावसाने ददर्श हर्षप्रतिपद्विधाने ॥११॥

कमल से भी अतिकोमल हस्तवाली और अपूर्व भाग्योदय की पात्री उस सेठानी ने एक दिन क्षीर सागर के समान स्वच्छ श्वेत चादर से आच्छादित एवं रूईदार कोमल गद्दा से संयुक्त शय्या पर लक्ष्मी के समान सोते हुए रात्रि के अवसान-काल में श्रेष्ठ पुरुष की उत्पत्ति की सूचक, पुण्य प्रासाद पर चढ़ने के लिए सोपान-परम्परा के समान, हर्ष को बढ़ाने वाली प्रतिपदा तिथि का अनुकरण करती हुई स्वप्नावली को देखा ॥१०-११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ प्रभाते कृतमङ्गला सा हृदेकदेवाय लसत्सुवासाः ।
रदांशुपुष्पाञ्जलिमर्पयन्ती जगौ गिरा वल्लकिकां जयन्ती ॥१२॥

इसके पश्चात् प्रभात समय जाग कर और सर्व मांगलिक कार्यों को करके तथा सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर वह सेठानी अपने स्वामी ऋषभदास सेठ के पास गई। वहां जाकर अपने हृदय के एक मात्र देव पति के लिए दान्तोंकी किरणरूप पुष्पाञ्जलि को अर्पण करती हुई और अपनी मीठी वाणी से वीणा को जीतती हुई इस प्रकार बोली ॥१२॥

भो भो विभो कौतुकपूर्णपञ्च–स्वप्नान्यपश्यं निशि मानसञ्च ।
ममामुकं मेवसमूहजेतो भृङ्गायते तन्मकरन्दहेतोः ॥१३॥

हे स्वामिन् मैंने आज रात में कौतुक परिपूर्ण पांच स्वप्न देखे हैं. उनके मकरन्द (पराग) के सूंघने के लिए मेरा मन भ्रमर जैसा उत्कण्ठित हो रहा है। आप ही मेरे सन्देह रुप मेघ-समूह के जीतने वाले हैं. (इस लिए उन स्वप्नों का फल कहिये ।) ॥१३॥

सुराद्रिरेवाद्रियते मयाऽऽदौ निधाय चित्ते भवदीयपादौ ।
नादौ सुराङ्के च्युतिशङ्कयेव केनोद्धृतः स्तम्भ इवायि देव ॥१४॥

हे देव, आपके चरणों को चित्त में धारण करके (जब मैं सो रही थी, तब) मैंने सबसे आदि में सुरगिरि (सुमेरु-पर्वत) देखा, जो कि ऐसा प्रतीत होता है, मानों अधर रहने वाले स्वर्गलोक के नीचे गिरने की शंका से ही किसी ने उसके नीचे अनादि से यह सुदृढ़ स्तम्भ लगा दिया हो ॥१४॥

दृष्टः सुरानोकहको विशाल शाखाभिराक्रान्तदिगन्तरालः ।
किमिच्छदानेन पुनस्त्रिलोकीमापूरयन् हे सुकृतावलोकिन् ॥१५॥

हे सुकृतावलोकिन् (पुण्यशालिन्) दूसरे स्वप्न में मैंने अपनी विशाल शाखाओं से दशों दिशाओं को पूरित करने वाला और किमिच्छिक दान से त्रिलोकवर्ती जीवों की आशाओं को पूरित करने वाला कल्पवृक्ष देखा है ॥१५॥

सम्भावितोऽतः खलु निर्विकारः प्रस्पष्टमुक्ताफलताधिकारः ।
पयोनिधिस्त्वदहृदि वाप्यवार–पारोऽतलस्पर्शितयाऽत्युदार ः ॥१६॥

हे स्वामिन्, तीसरे स्वप्न में मैंने आपके हृदय के समान निर्विकार (क्षोभ रहित प्रशान्त), अपार, वार, अगाध और उदार सागर को देखा है, जिसमें कि ऊपर मोती स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥१६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नयन्तमन्तं निखिलोत्करं तं समुज्ज्वलज्ज्वालतया लसन्तम् ।
अपश्यमस्यन्तमितो हुतं तत्स्फुलिङ्गजालं मुहुरुद्वमन्तम ॥१७॥

हे नाथ, चौथे स्वप्न में मैंने ऐसी निधूर्म अग्नि को देखा- जो कि समीपवर्ती इन्धन को जला रही थी । जिसमें से प्रकाशमान बड़ी-बड़ी ज्वालाएं चारों ओर से निकल रही थीं, जो हवन की हुई सामग्री को भस्मसात् कर रही थी और जिसमें से बार-बार स्फुलिंग-जाल (अग्नि-कण) निकलकर सर्व ओर फैल रहे थे ॥१७॥

विहाय साऽरं विहरन्तमेव विमानमानन्दकरं च देव।
दृष्टवा प्रबुद्धेः सुखसम्पदेवं श्रुतं तदेतद्भवतान्मुदे वाः ॥१८॥

हे देव, पांचवे स्वप्न में मैंने आकाश में विहार करते हुए आनन्दकारी विमान को देखा। इन सुख-सम्पत्तिशाली स्वप्नों को देखकर मैं प्रबुद्ध (जागृत) हो गई। मुझे इनके देखने से अत्यन्त हर्ष हुआ है और इनके सुनने से आपकी भी प्रमोद होवे ॥१८॥

यदादिदृष्टाः समदृष्टसारास्तदादिसृष्टा हृदि मुन्ममारात् ।
स्पष्टं सुधासिक्तमिवाङ्गमेतदुदञ्चन प्रायमुदीक्ष्यतेऽतः ॥१९॥

हे स्वामिन्, जबसे मैंने उत्तम पुण्य के सारभूत इन स्वप्नों को देखा है, तभी से मेरे हृदय में असीम आनन्द प्राप्त हो रहा है और मेरा यह सर्वाङ्ग अमृत से सींचे गये के समान रोमाञ्चों को धारण किये हुये स्पष्ट ही दिखाई दे रहा है ॥१९॥

इत्येवमुक्त्वा स्मरवैजयन्त्यां करौ समायुज्य तमानमन्त्याम् ।
किलांशिकेवाशिवति तेन मुक्ता महाशयेनापि सुवृत्तमुक्ताः ॥२०॥

इस प्रकार कहकर स्मर-वैजयन्ती (काल-पताका) उस सेठानी के हाथ जोड़कर नमस्कार करने पर महानुभाव वृषभदास सेठ ने भी उत्तम गोलाकार वाले मोतियों से युक्त माला के समान सुन्दर पद्यों से युक्त आर्शीवाद रुप वचनमाला उसे समर्पण की। अर्थात् उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥२०॥

वार्ताऽप्यदृष्टश्रुतपूर्विका वः यस्या न केनापि रहस्यभावः।
सम्पादयत्यत्र च कौतुकं नः करोत्यनूढा स्मयकौतुकं न ॥२१॥

सेठ बोला - प्रिये, तुम्हारे द्वारा देखी हुई यह स्वप्नों की बात तो अदृष्ट और अश्रुत पूर्व है, न मैंने कभी ऐसी स्वप्नावली देखी है और न कभी किसी के द्वारा मेरे सुनने में ही आई है। यह स्वप्नावली मुझे भी कौतुक उत्पन्न कर रही है। अविवाहित युवती पृथ्वी पर किसके कौतुक उत्पन्न नहीं करती है ? इस स्वप्नावली का रहस्य भाव तो किसी को भी ज्ञात नहीं है, फिर मैं तुम्हें क्या बतलाऊं ॥२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्याः क आस्तां प्रियएवमर्थः वक्तुं भवेद्योगिवरः समर्थः ।
भाग्येन तेनास्तु समागमोऽपि साकं किलाकं यदि नोऽघलोपि ॥२२॥

इस स्वप्नावली का क्या प्रिय अर्थ होगा, इसे कहने के लिए तो कोई श्रेष्ठ योगिराज ही समर्थ हो सकते हैं. भाग्य से ही ऐसे योगियों के साथ समागम संभव है । हमारे यदि पापों का लोप हो रहा है, तो उनका भी समागम हो ही जायेगा ॥२२॥

संस्मर्यतां श्रीजिनराजनाम तदेव नश्चेप्सितपूर्तिधाम ।
पापापहारीति वयं वदामः सम्विघ्नबाधामपि संहरामः ॥२३॥

अतएव श्री जिनराज का नाम ही हमें स्मरण करना चाहिए, वही पापों का अपहारक, सब विघ्न बाधाओं का संहारक और इच्छित अर्थ का पूरक है, ऐसा हमारा कहना है ॥२३॥

प्रत्याव्रजन्तामथ जम्पती तौ तदेकदेशे नियतं प्रतीतौ ।
मुनिं पुनर्धर्ममिवात्तमूर्ति सतां समन्तात्कृतशर्मपूर्तिम् ॥२४॥

(ऐसा विचार कर सेठ और सेठानी दोनों ने जिनालय में जाकर भगवान की पूजा की ।) वहीं उन्हें ज्ञात हुआ कि इसी जिनालय के एक स्थान पर मुनिराज विराजमान हैं। उन दोनों ने जाकर धर्म की साक्षात् मूर्ति को धारण करने वाले, तथा सज्जनों के लिए सुख-सम्पदा की पूर्ति करने वाले ऐसे योगिराज के दर्शन किये ॥२४॥

केशान्धकारींह शिरस्तिरोऽभूद दृष्ट्वा मुनीन्दुं कमलश्रियो भूः ।
करद्वयं कुड्मलतामयासीत्तयोर्जजृम्भे मुदपां सुराशिः ॥२५॥

मुनिराज रूप चन्द्रमा को देखकर सेठ और सेठानी का आनन्द रूप समुद्र उमड़ पड़ा, केशरुप अन्धकार को धारण करने वाला उनका मस्तक झुक गया, उनका मुख कमल के समान विकसित हो गया और दोनों हस्त कमल मुकुलित होगये।

भावार्थ - भक्ति और आनन्द से गद्-गद् होकर के अपने हाथों को जोड़कर उन्होंने मुनिराज को नमस्कार किया ॥२५॥

कृतापराधाविव बद्धहस्तौ जगद्धितेच्छोर्द्रुतमग्रतस्तौ ।
मिथोऽथ तत्प्रेमसमिच्छुकेषु संक्लेशकृत्वाद्रतिकौतुकेषु ॥२६॥

जगत् के प्राणिमात्र का हित चाहने वाले उन मुनिराज के आगे हाथ जोड़कर बैठे हुये वे सेठ और सेठानी ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों परस्पर प्रेम के इच्छुक स्त्री-पुरुषों में संक्लेश भाव उत्पन्न कर देने के कारण जिन्होंने अपराध किया है और जिन्हें हाथ बांधकर लाया गया है, ऐसे रति और कामदेव ही बैठे हों ॥२६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करौ पलाशप्रकरौ तु तेन तयोर्निबद्धौ यतिनो गुणेन ।
दृष्ट्वेति निर्गत्य पलायिता वाङ्नमोऽस्त्विवतीदृङ् मधुला भिया वा ॥२६॥

पलाश के समान उनके दोनों हाथ यतिराज के गुण से निबद्ध हो गये हैं, यह देखकर ही मानों भयभीत होकर उनके मुख से 'नमोऽस्तु' ऐसी मधुर वाणी शीघ्र निकल पड़ी ॥२७॥

भावार्थ - इस श्लोक में पठित पलाश, गुण और मधुर ये तीन पद द्वयर्थक हैं । पलाश नाम कोमल कोंपल का भी है और मांस-भक्षी का भी। गुण नाम स्वभाव या धर्म का भी है और डोरी या रस्सी का भी। मधुर नाम मीठे का भी है और मधु या मदिरा का भी है। इन तीनों पदों केप्रयोग से कवि ने यह भाव व्यक्त किया है कि जैसे कोई पुरुष मांस का भक्षण और मदिरा का पान करे, तो यह रस्सी से बांध कर अधिकारी पुरुष के सम्मुख उपस्थित किया जाता है और वहां पर वह डर के मारे उसको हाथ जोड़ने लगता है। प्रकृत में इसे इस प्रकार घटाना चाहिए कि सेठ और सेठानी के दोनों हाथ कोंपल के समान लाल वर्ण के थे, अतः पलाश (पल-भक्षण) के अपराध से वे मुनिराज के गुणरूप डोरी से बांध दिये गये और अपराधी होने के कारण ही मानों उनके मुख से नमस्कार-परक 'नमोऽस्तु' यह मधुर शब्द निकला और इसके बहाने से ही मानों उन्होंने पिये गये मधु या मदिरा को बाहिर निकाल दिया।

स्मासाद्य तत्पावनमिङ्गितञ्च तयोरुदर्कं सुरभि समञ्चत् ।
मधूपमं वाक्यमुदेति शस्यं मुनेर्मुखाब्जात्कुशलाशयस्य ॥२८॥

जैसे पवन के प्रवाह को पाकर जलाशयस्थ कमल का मधु पराग निकलकर सारे वातावरण को सुगन्धित कर देता है, वैसे ही इन सेठ-सेठानी के पावन स्वप्ररूप निमित्त को पाकर पवित्र अभिप्राय वाले मुनिराज के मुख-कमल से मधु-तुल्य मिष्ट प्रशंसनीय वाक्य प्रगट हुये, जो कि उनके भविष्य को और भी अधिक सुरभित और आनन्दित करने वाले थे ॥२८॥

मदुक्तिरेषा भवतोः सुवस्तु समस्तु किन्नो वृषवृद्धिरस्तु ।
अनेकधान्यार्थमुपायकर्त्रोर्महत्सु शीरोचितधामभर्त्रोः ॥२९॥

मुनिराज बोले - अनेक प्रकार से परके लिए हितकारक उपायों के करने वाले और सूर्य समान निर्मल ज्ञानरुप प्रकाश के भरने वाले, अतएव महापुरुषों में गिने जाने वाले आप दोनों के 'वृष-वृद्धि' हो और मेरी यह आशिष आपके लिए सुन्दर वस्तु सिद्ध हो ॥२९॥

भावार्थ - यह श्लोक भी द्व्यर्थक है। दूसरा अर्थ यह है कि जैसे अनेक प्रकार के धान्यों को उत्पन्न करने के प्रयत्न करनेवाले और हल चला करके अपनी आजीविका करने वाले किसानों के लिए वृष अर्थात् बैलों की वृद्धि कल्याणकारी होती है, उसी प्रकार तुम्हारे भी धर्मवृद्धि रूप आशीर्वाद भविष्य में सुफलदायी होवे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नत्रयाराधनकारिणा वा प्रस्पष्टमुक्तोचितवृत्तभावा।
समर्पिताऽधारि महाशयाभ्यां गुणावलीत्थं सहसाशयाभ्याम् ॥३०॥

जिस प्रकार इस व्यवहारी लोक में खनिज (हीरा-पन्ना आदिक) जलज (सीप-मोती) और प्राणिज (गजमुक्ता) ये तीन प्रकार के रत्न प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार से आध्यात्मिक लोक में प्रसिद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप तीन महा रत्नों के धारण करने वाले श्री मुनिराज के द्वारा समर्पण की हुई, स्पष्ट रुप से मुक्ताफल के समान वृत्त भाव (गोलाकारिता और छन्दरुपता) को धारण करने वाली, आर्शीवादरूप गुणमयी माला को वक्ष्यमाण प्रकार से विनम्र प्रार्थना करते हुए उस दम्पती ने बड़े आदर के साथ स्वीकार किया ॥३०॥

भवाँस्तरँस्तारयितुं प्रवृत्तः भव्यव्रजं भव्यतमैकवृत्तः ।
समो भवाब्धौ परमार्थनावाऽस्त्यस्माकमस्मात्पर मार्थनावा ॥३१॥

सेठ-सेठानी ने कहा - स्वामिन् आपका व्यवहार अति उत्तम है, आप भव्यजनों को परमार्थ रुप नाव के द्वारा संसार समुद्र से पार उतारने में प्रवृत्त हैं और स्वयं पार उतर रहे हैं । प्रशंसक और निन्दक में समान हैं। अतएव हमारी भी एक प्रार्थना है ॥३१॥

स्वाकूतसङ्केतपरिस्पृशापि दृशा कृशाङ्ग्या दुरितैकशापी ।
सम्प्रेरितः श्रीमुनिराजपाद-सरोजयोः सावसरं जगाद ॥३२॥

अपने अभिप्राय को प्रकट करने वाले संकेत की दृष्टि से उस कृशाङ्गी सेठानी के द्वारा प्रेरित और पाप से भयभीत ऋषभदास सेठ ने अवसर पाकर श्री मुनिराज के चरण-कमलों में इस प्रकार निवेदन किया ॥३२॥

सुमानसस्याथ विशांवरस्य मुद्रा विभिन्नाऽस्य सरोरुहस्य ।
मुनीशभानोरभवत्समीपे लोकान्तरायाततमः प्रतीपे ॥३३॥

लोगों के अन्तरङ्ग में विद्यमान अन्धकार के नाश करने वाले मुनिराज रूप सूर्य के समीप मानसरोवर के समान विशाल और प्रसन्न चित्तवाले वैश्यवर सेठ का मुखरुप कमल विकसित हो गया ॥३३॥

भावार्थ - जैसे सूर्य का सामीप्य पाकर कमल खिल जाता है, वैसे ही मुनिराज का सामीप्य पाकर सेठ का मुख कमल खिल उठा, अर्थात् वह अपने हृदय की बात को कहने लगा ।

निशीक्षमाणा भगवँस्त्वदीय-पादाम्बुजालेः सहचारिणीयम् ।
मेरुं सुरद्रुं जलधिं विमानं निर्धूमवह्निं च न तद्विदा नः ॥३४॥

हे भगवन् आपके चरण कमलों में भ्रमर के समान रूचि रखने वाले मुझ दास की इस सहधर्मिणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने रात्रि में सुमेरु पर्वत, कल्पवृक्ष, समुद्र, विमान और निर्धूम अग्नि पांच स्वप्न देखे हैं। इनका क्या रहस्य है, सो हमलोग नहीं जानते हैं ॥३४॥

किं दुष्फला वा सुफलाऽफला वा स्वप्नावलीयं भवतोऽनुभावात् ।
भवानहो दिव्यदृगस्ति तेन संश्रोतुमिच्छा हृदि वर्तते नः ॥३५॥

यह स्वप्नावली क्या दुष्फलवाली है, अथवा सुफलवाली है, या निष्फल जानेवाली है, यह बात हम आपकी कृपा से जानना चाहते है। अहो भगवन्, आप दिव्य दृष्टि हैं, अतएव हमारे मन में इन स्वप्नों का फल सुनने की इच्छा है ॥३५॥

श्रीश्रेष्ठिवक्त्रेन्दुपदं वहन्वा स्वयं गुणानां यतिराडुदन्वान् ।
एवं प्रकारेण समुज्जगर्ज पर्यन्ततो मोदमहो ससर्ज ॥३६॥

श्री वृषभदास सेठ के मुखरुप चन्द्र से निकली हुई वाणी रुप किरण का निमित्त पाकर गुणों के सागर मुनिराज ने इस प्रकार से गंभीर गर्जना की, जिससे कि समीपवर्ती सभी लोग प्रमोद को प्राप्त हुए ॥३६॥

अहो महाभाग तवेयमार्या पुम्पूतसन्तानमयैककार्या ।
भविष्यतीत्येव भविष्यते वा क्रमः क्रमात्तद्गुणधर्मसेवा ॥३७॥

अहो महाभाग, तुम्हारी यह भार्या पुनीत पुत्र रूप सन्तान को उत्पन्न करेगी । उस होनहार पुत्र के गुण-धर्मों को क्रमशः प्रकट करने वाले ये स्वप्न हैं ॥३७॥

स्वप्नावलीयं जयतूत्तमार्था चेष्टा सतां किं भवति व्यपार्था ।
किमर्कवच्चाम्रमहीरुहस्य पुष्पं पुनर्निष्फलमस्तु पश्य ॥३८॥

यह स्वप्नावली उत्तम अर्थ को प्रकट करने वाली है। क्या सज्जनों की चेष्टा भी कभी व्यर्थ जाती है। क्या आकवृक्ष के पुष्प के समान आम्र के पुष्प भी कभी निष्फल जाते हैं, इसे देखो (विचारो) ॥३८॥

भावार्थ - आकड़े के फूल तो फल-रहित होते हैं, परन्तु आम्र के नहीं। इसी प्रकार दुर्भाग्य वालों के स्वप्न भले ही व्यर्थ जावें, किन्तु सौभाग्यवालों के स्वप्न व्यर्थ नहीं जाते। वे सुफल ही फलते हैं।

भूयात्सुतो मेरुरिवातिधीरः सुरद्रुवत्सम्प्रति दानवीरः ।
समुद्रवत्सद्गुणरत्नभूपः विमानवत्सौरभवादिरूपः ॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्धूमसप्तार्चिरिवान्ततस्तु स्वकीयकर्मेन्धनभस्मवस्तु ।
जानीहि ते सम्भविपुत्ररत्नं जिनार्चने त्वं कुरु सत्प्रयत्नम् ।।४०।।

तुम्हारे सुमेरु के समान अतिधीर वीर पुत्र होगा । वह कल्पवृक्ष समान दानवीर होगा, समुद्र के समान सद्-गुणरुप रत्नों का भण्डार होगा, विमान के समान स्वर्गवासी देवों का भी वल्लभ होगा और अपने जीवन के अन्त में निर्धूम अग्नि के समान अपने कर्मरुप इन्धन को भस्मसात् करके शिवपद को प्राप्त करेगा। हे वेश्यवरोत्तम, तुम्हारे ऐसा श्रेष्ठ पुत्ररत्न होगा, यह तुम स्वप्नों का भविष्यफल निश्चय से जानो। अतः अब जिनेन्द्रदेव के पूजन-अर्चन में सत्प्रयत्न करो ।।३९-४०।।

पयोमुचो गर्जनयेव नीतौ मयूरजाताविव जम्पती तौ।
उदञ्चदङ्गेरुहसम्प्रतीतौ मुनेर्गिरा मोदमहो पुनीतौ ।।४१।।

मेघों की गर्जना सुनकर जैसे मयूर मयूरनी अति प्रमोद को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार वे दम्पती सेठ-सेठानी भी मुनिराज की यह उत्तम वाणी सुनकर अत्यन्त प्रमोद को प्राप्त हुए और उनका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया ।।४१।।

बभावथो स्वातिशयोपयुक्ति-मती सती पुण्यपयोधिशुक्तिः ।
मुक्तात्मभावोदरिणी जवेन समर्हणीया गुणसंस्तवेन ।।४२।।

जैसे स्वातिनक्षत्र की बिन्दु को अपने भीतर धारण कर समुद्र की सीप शोभित होती है, वैसे ही अपने पूर्वोपार्जित सातिशय पुण्य के योग से मोक्षगामी पुत्र को अपने गर्भ में धारण कर वह सती सेठानी भी परम शोभा को प्राप्त हुई और गर्भ-धारण के निमित्त अपने उदर की कृशता को छोड़कर वह अनेक गुणों से संयुक्त होकर लोगों से पूजनीय हो गई ।।४२।।

तस्याः कृशीयानुदरो जयाय बलित्रयस्यापि तदोदियाय ।
श्रीविग्रहे स्निग्धतनोर्यथावत्सोऽन्तःस्थसम्यग्वलिनोऽनुभावः ।।४३।।

उस कृशोदरी सेठानी का अति कृश उदर भी तीन बलियों के जीतने के लिए उस समय उदय को प्राप्त हुआ, सो यह उस गर्भस्थ अति बलशाली पुत्र का ही प्रभाव था। अन्यथा कौन कृशकाय मनुष्य तीन बलशालियों से युद्ध में विजय प्राप्त कर सकता हैं ।।४३।।

भावार्थ - जब किसी कृशोदरी स्त्री के गर्भ रहता है, तो गर्भ-वृद्धि के साथ-साथ उसके उदर में जो त्रिबली (तीन बलें) होती हैं, वे क्रमशः समाप्त हो जाती हैं। इस बात को ध्यान में रखकर कवि उत्प्रेक्षा करते हुए कहते हैं कि किसी कृश शरीर वाले की यह हिम्मत नहीं हो सकती कि वह तीन बलशाली लोगों के मुकाबले में खड़ा हो सके। पर उस सेठानी का कृश उदर अपनी कृशता को छोड़कर जो वृद्धि को प्राप्त होता हुआ उन तीन बलियों का मान-भंग कर रहा था, वह उसके गर्भस्थ पुत्र के पुण्य का प्रताप था ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इहोदयोऽभूदुदरस्य यावत् स्तनानने ध्यामलताऽपि तावत् ।
स्वभावतो ये कठिना सहेरं कुतः परस्याभ्युदयं सहेरन् ।।४४।।

उस सेठानी के उदर की इधर जैसे-जैसे वृद्धि हो रही थी, उधर वैसे-वैसे ही उसके कठोर स्तनों के मुखपर कालिमा भी आकर अपना घर कर रही थी। सो यह ठीक ही है, क्योंकि जो लोग स्वभाव से कठोर होते हैं, वे दूसरे के अभ्युदय को कैसे सहन कर सकते हैं ।।४४।।

कुचावतिश्यामलचूचुकाभ्यां सभृङ्गपद्माविव तत्र ताभ्याम् ।
सरोवरे वा हृदि कामिजेतुर्विरेजतुः सम्प्रसरच्छरे तु ।।४५।।

अपने सौन्दर्य से कामदेव की स्त्री रति को भी जीतने वाली उस सेठानी के हृदय रुप सरोवर में विद्यमान कुच अति श्याम मुख वाले चूचुकों से ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे गुलाबी रंगवाले कमलों के ऊपर बैठे हुए भौंरे शोभित होते हैं ।।४५।।

भावार्थ - सरोवर में जैसे जल भरा रहता है, कमल खिलते हैं, और उन पर आकर भौंरे बैठते हैं वैसे ही सेठानी के हृदय पर जलस्थानीय हार पड़ा हुआ था और उसमें कमलतुल्य स्तन थे, तथा उनके काले मुखवाले चूचुक भौंरे से प्रतीत होते थे।

वपुः सुधासिक्तमिवातिगौरं वक्त्रं शरच्चान्द्रविचारचौरम् ।
यथोत्तरं पीवरसत्कुचोरःस्थलं त्वगाद्गर्भवती स्वतोऽरम् ।।४६।।

उस गर्भवती सेठानी का शरीर अमृत-सिंचन के समान उत्तरोत्तर गौर वर्ण का होता गया, मुख शरद्-ऋतु के चन्द्रमा की चन्द्रिका को भी जीतने वाला हो गया और उसके वक्षःस्थल पर अवस्थित कुच उत्तरोत्तर उन्नत और पुष्ट होते चले गये ।।४६।।

भवान्धुपात्यङ्गिहितैषिणस्तुक्-सतो हितं गर्भगतस्य वस्तु।
मत्वाऽर्धसम्पूरितगर्ततुल्यामुवाह नाभिं सुकृतैककुल्या ।।४७।।

उस सुकृतशालिनी सेठानी की नाभि जो अभी तक बहुत गहरी थी, वह मानों संसार-कूप में पड़े हुये प्राणियों के हितैषी गर्भ-स्थित पुत्र के पुण्य-प्रभाव से भरी जाकर अधभरे गड्ढे के समान बहुत कम गहरी रह गई थी ।।४७।।

रागं च रोषं च विजित्य बालः स्वच्छत्वमञ्चेदिति भावनालः ।
दृशोरमुष्या द्वितयेऽवतारं कपर्दकोदारगुणो बभार ।।४८।।

इसके गर्भ में स्थित जो बालक है, वह राग और द्वेष को जीतकर पूर्ण स्वच्छता (निर्मलता) को प्राप्त करेगा, यह भाव प्रकट करने के लिये ही मानों उसके दोनों नेत्र कोड़ी के समान श्वेतपने को प्राप्त हो गये ।।४८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहसि तां युवतिं मतिमानत उदरिणीं समुदैक्षत यत्नतः ।
निधिघटीं धनहीनजनो यथाऽधिपतिरेष विशां स्वहशा तथा ॥४९॥

जैसे धन-हीन जन धन से भरी मटकी को पाकर अति सावधानी के साथ एकान्त में सुरक्षित रखता है, वैसे ही यह वैश्यों का स्वामी बुद्धिमान् सेठ भी अपनी इस गर्भिणी सेठानी की एकान्त में बड़े प्रयत्न के साथ रक्षा करने लगा ॥४९॥

परिवृद्धिमितोदरां हि तां सुलसद्धारपयोधराञ्चिताम् ।
मुमुदे समुदीक्ष्य तत्पतिर्भुवि वर्षामिव चातकः सतीम् ॥५०॥

जैसे मूसलाधार बरसती हुई वर्षा को देखकर चातक पक्षी अति प्रमोद को प्राप्त होता है, उसी प्रकार दिन पर दिन जिसके उदर की वृद्धि हो रही है और जिसके स्तनमण्डल पर लटकता हुआ सुन्दर हार सुशोभित हो रहा है, ऐसी अपनी गर्भिणी उस सेठानी को देख-देख कर उसका स्वामी सेठ वृषभदास भी बहुत प्रसन्न होता था ॥५०॥

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
तेन प्रोक्तसुदर्शनोदय इयान् सर्गो द्वितीयो गतः
श्रीयुक्तस्य सुदर्शनस्य जननीस्वप्नादिवाक्सम्मतः ॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुजजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए, वाणीभूषण, बाल ब्रह्मचारी पं. भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर-विरचित इस सुदर्शनोदय काव्य में सुदर्शन की माता के स्वप्न देखने और उनके फलका वर्णन करने वाला यह द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ तृतीयः सर्गः

सुषुवे शुभलक्षणं सुतं रविमैन्द्रीव हरित्सती तु तम् ।
खगसत्तमचारसूचिते समये पुण्यमये खलूचिते ॥१॥

इसके पश्चात् गर्भ के नव मास व्यतीत होने पर, किसी पुण्यमयी शुभ वेला में, जबकि सभी ग्रह अपनी-अपनी उत्तम राशि पर अवस्थित थे, उस सती जिनमती सेठानी ने शुभ लक्षण वाले पुत्र को उत्पन्न किया, जैसे कि पूर्व दिशा प्रकाशवान् सूर्य को उत्पन्न करती है ॥१॥

उदरक्षणदेशसम्भुवा समये सा समपूजयत्तु वा।
जगतीमुत विश्वमातरं परिमुक्ता परिचारिणीष्वरम् ॥२॥

जैसे स्वाति-बिन्दु के पान से उत्पन्न हुए मोती के द्वारा सीप शोभित होती है, उसी प्रकार उस मंगलमयी वेला में सेवा करने वाली महिलाओं के मध्य में अवस्थित उस सेठानी ने अपने उदर-प्रदेश से उत्पन्न हुए, उस बालक के द्वारा समस्त विश्व की आधार भूत इस पृथ्वी को अलंकृत किया ॥२॥

शशिना सुविकासिना निशा शिशुनोत्सङ्गगतेन सा विशाम् ।
अधिपस्य बभौ तनूदरी विलसद्धंसवयाः सरोवरी ॥३॥

जैसे विकास को प्राप्त पूर्ण चन्द्र के द्वारा रात्रि और विलास करते हुए हंस के द्वारा सरोवरी शोभित होती है, उसी प्रकार अपनी गोद में आये हुए उस कान्तिमान् पुत्र के द्वारा वह वैश्य सम्राट् वृषभदास की सेठानी सुशोभित हुई ॥३॥

सुतजन्म निशम्य भृत्यतः मुमुदे जानुजसत्तमस्ततः ।
परिपालितताम्रचूडवाग् रविणा कोकजनः प्रगे स वा ॥४॥

तदनन्तर नौकर के मुख से पुत्र का जन्म सुनकर वह वैश्य-श्रेष्ठ वृषभदास अति प्रमोद को प्राप्त हुआ। जैसे कि प्रभात काल में ताम्रचूड (मुर्गा) की बांग सुनकर सूर्य का उदय जान चातक पक्षी प्रमुदित होता है ॥४॥

प्रमदाश्रुभिराप्लुतोऽभितः जिनपं चाभिषिषेच भक्तितः।
प्रभुभक्तिरुताङ्गिनां भवेत्फलदा कल्पलतेव यद्भवे ॥५॥

हर्ष के आंसुओं से नहाये हुए सेठ वृषभदास ने भक्ति-पूर्वक जिनगृह जाकर जिनेन्द्र देव का अभिषेक किया। क्योंकि इस संसार में प्रभु की भक्ति ही प्राणियों को कल्पलता के समान मनोवाञ्छित फल-दायिनी है ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करिराडिव पूरयन्महीमपि दानेन महीयसा स हि ।
महिमानमवाप विश्रुत–गुणयुक्तोन्नतवंशसंस्तुतः ॥६॥

प्रसिद्ध उत्तम गुणोंरूप मुक्ताफलों से युक्त एवं उन्नत वंश वाले उस सेठ ने गजराज के समान महान् दान से सारी पृथ्वी को पूरित करते हुए 'दानवीर' होने की महिमा को प्राप्त किया।

भावार्थ - पुत्र-जन्म के हर्षोप लक्ष में सेठ वृषभदास ने सारी प्रजा को खूब ही दान देकर सम्मान प्राप्त किया ॥६॥

मृदुचन्दनचर्चिताङ्गवानपि गन्धोदकपात्रतः स वा।
शुशुभे प्रचलन्निवामलः पृथुपद्मह्रदवान् हिमाचलः ॥७॥

मृदुल चन्दन से चर्चित है अंग जिसका, ऐसा वह सेठ जिन-पूजन और दान करने के अनन्तर गन्धोदक-पात्र को हाथ में लेकर घर को आता हुआ ऐसा शोभित हो रहा था, मानों निर्मल विशाल पद्म सरोवर वाला हिमवान् पर्वत ही चल रहा हो ॥७॥

अवलोकयितुं तदा धनी निजमादर्श इवाङ्गजन्मनि ।
श्रितवानपि सूतिकास्थलं किमु बीजव्यभिचारि अङ्कुरः ॥८॥

घर पहुँच कर वह सेठ पुत्र को देखने के लिए प्रसूति स्थान पर पहुँचा और दर्पण के समान उत्पन्न हुए पुत्र में अपनी ही छवि को देखकर अति प्रसन्न हुआ। सो ठीक ही है - क्या अकुंर बीज से भिन्न प्रकार का होता है ? अर्थात् नहीं ।

भावार्थ - उत्पन्न होने वाला अंकुर जैसे अपने बीज के समान होता है, उसी प्रकार यह पुत्र भी सेठ के समान ही रुप-रंग और आकृतिवाला था ॥८॥

परिपातुमपारयँश्च सोऽङ्गजरुपामृतमद्भुतं दृशोः ।
स्तुतवानुत निर्निमेषतां द्रुतमेवायुतनेत्रिणा धृताम् ॥९॥

अपने निमेष-उन्मेष वाले इन दोनों नेत्रों से पुत्र के अद्भुत अपूर्व सौन्दर्य रुप अमृत का पान करता हुआ वह सेठ जब तृप्ति के पार को प्राप्त नहीं हुआ, तब वह सहस्त्र नेत्र धारक इन्द्र की निर्निमेष दृष्टि की प्रशंसा करने लगा ।

भावार्थ - सेठ को उस पुत्र के दर्शन से तृप्ति नहीं हो रही थी और सोच रहा था कि यदि मैं भी सहस्त्र नेत्र का धारक निर्निमेष दृष्टि वाला इन्द्र होता, तो पुत्र के रुपामृत का जी भर कर पान करता ॥९॥

सुरवर्त्मवदिन्दुमम्बुधेः शिशुमासाद्य कलत्रसन्निधेः।
निवयैः स्मितसत्त्विषामयमभवद्धामवतां गुणाश्रयः ॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे समुद्र से चन्द्र को प्राप्त कर नक्षत्रों का आधार भूत आकाश उसकी चन्द्रिका से आलोकमय हो जाता है, उसी प्रकार गृहस्थों के गुणों का आधार वह सेठ भी प्रिया से प्राप्त हुए उस चन्द्र-तुल्य पुत्रको देखकर सस्मित मुख हो गया ॥१०॥

कुलदीपयशःप्रकाशितेऽपतमस्यत्र जनीजनैर्हिते।
समयोचितमात्रनिष्ठितिर्घटिता मङ्गलदीपकोद्धृतिः ॥११॥

श्रेष्ठिकुल के दीपक उस पुत्र के यश और शरीर की कान्ति के द्वारा प्रकाशित उस प्रसूति स्थान में अन्धकार के अभाव होने पर भी कुल की वृद्धा स्त्रियों ने समयोचित कर्त्तव्य के निर्वाह के लिए माङ्गलिक दीपक जलाये ॥११॥

गिरमर्थयुतामिव स्थितां ससुतां सँस्कुरुते स्म तां हिताम् ।
स ततो मृदुगन्धतोयतः जिनधर्मो हि कथञ्चिदित्यतः ॥१२॥

जिस प्रकार 'कथञ्चित' चिह्न से युक्त स्याद्वाद के द्वारा जैन धर्म प्राणिमात्र का कल्याण करने वाली अर्थ-युक्त वाणी का संस्कार करता है, उसी प्रकार उस वृषभदास सेठ ने पुत्र के साथ अवस्थित उसकी हितकारिणी माता का मृदुल गन्धोदक से जन्मकालिक संस्कार किया। अर्थात् पुत्र और उसकी माता पर गन्धोदक क्षेपण किया ॥१२॥

सितिमानमिवेन्दुतस्तकमभिजातादपि नाभिजातकम् ।
परिवर्धयति स्म पुत्रतः स तदानीं मृदुयज्ञसूत्रतः ॥१३॥

तदनन्तर उस सेठ ने तत्काल के पैदा हुए उस बालक के नाभिनाल को कोमल यज्ञ-सूत्र से बांधकर उसे दूर कर दिया, मानो द्वितीया के चन्द्रमा पर से उसके कलङ्क को ही दूर कर दिया हो ॥१३॥

स्नपितः स जटालवालवान् विदधत्काञ्चनसच्छविं नवाम् ।
अपि नन्दनपादपस्तदेह सुपर्वाधिभुवोऽभवन्मुदे ॥१४॥

तत्पश्चात स्नान कराया गया वह काले भंवराले बालों वाला बालक तपाये हुए सोने के समान नवीन कान्ति को धारण करता हुआ सेठ के और भी अधिक हर्ष का उत्पन्न करने वाला हुआ, जैसे कि सुन्दर जटाओं से युक्त, जल-सिञ्चित क्यारी में लगा हुआ नन्दनवन का वृक्ष (कल्पवृक्ष) देवताओं के हर्ष को बढ़ाने वाला होता है ॥१४॥

सुतदर्शनतः पुराऽसकौ जिनदेवस्य ययौ सुदर्शनम् ।
इति तस्य चकार सुन्दरं सुतरां नाम तदा सुदर्शनम् ॥१५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुत्र-जन्म का समाचार सुनकर सेठ पुत्र-दर्शन के पहिले जिनदेव के पुण्य-कारक दर्शन के लिए गया था, अतएव उसने स्वतः स्वभाव से सुन्दर उस बालक का नाम 'सुदर्शन' रक्खा ॥१५॥

द्युतिदीप्तिमताङ्गजन्मना शुशुभाते जननी धनी च ना।
शशिना शुचिशर्वरीव सा दिनवच्छ्रीरविणा महायशाः ॥१६॥

कान्ति और दीप्ति से युक्त उस पुत्र के द्वारा महान् यश वाले माता और पिता इस प्रकार शोभा को प्राप्त हुए, जिस प्रकार कि चन्द्र से युक्त चांदनी रात और प्रकाशमान् सूर्य से युक्त दिन शोभा को प्राप्त होता है ॥१६॥

मृदुकुड्मललग्नभृङ्गवत्स पयःपानमयेऽन्वयेऽभवत् ।
करपल्लवलालिते सुधा-लतिकाया अवनावहो बुधाः ॥१७॥

हे बुधजनो, माता के कर-पल्लव में अवस्थित वह बालक स्तनों से दुग्ध पान करते समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो उत्तम पल्लव (पत्र) वाली अमृतलता के कोरकों पर लगा हुआ भौंरा ही हो ॥१७॥

मुहुरूद्गिलनापदेशतस्त्वतिपातिस्तनजन्मनोऽन्वतः ।
अभितोऽपि भवस्तलं यशःपयसाऽलङ्कृतवान्निजेन सः ॥१८॥

मात्रा से अधिक पिये गये दूध को वह बालक भूमि पर इधर-उधर उगलता हुआ ऐसा प्रतीत होता था, मानो अपने यशःस्वरुप दूध के द्वारा वह भूतल को सर्व ओर से अंलकृत कर रहा है ॥१८॥

निभृतं स शिवश्रियाऽभितः सुकपोले समुपेत्य चुम्बितः ।
शुशुभे छविरस्य साऽन्विताऽरुणमाणिक्य-सुकुण्डलोदिता ॥१९॥

यथासमय उस बालक के दोनों कानों में लाल माणिक से जड़े हुए कुण्डल पहिनाये गये। उनकी लाल-लाल कान्ति उसके स्वच्छ कपोलों पर पड़ती थी। वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो प्रेमाभिभूत होकर शिव-लक्ष्मी ने एकान्त में आकर उसके दोनों कपोलों पर चुम्बन ही ले लिया है। अतः उसके ओष्ठों की लालिमा ही उस बालक के कपोलों पर अंकित हो गई है ॥१९॥

गुरुमाप्य स वै क्षमाधरं सुदिशो मातुरथोदयन्नरम् ।
भुवि पूज्यतया रविर्यया नृदृगम्भोजमुदेऽव्रजत्तथा ॥२०॥

जैसे सूर्य पूर्व दिशारुपी माता की गोद से उठकर उदयाचलरूप पिता के पास जाता है, तो सरोवरों के कमल विकसित हो जाते हैं और वह संसार में पूजा जाता है, उसी प्रकार वह बालक भी जब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी सुकृतकारिणी माता की गोद से उठकर क्षमा को धारण करने वाले पिता के पास जाता था, तब वह लोगों के नयन कमलों को विकसित करता हुआ सभी के आदर भाव को प्राप्त करता था।

भावार्थ – सभी लोग उसे अपनी गोद में उठाकर अपना प्रेम प्रकट करना चाहते थे ॥२०॥

जननीजननीयतामितः श्रणनाङ्के मृदुतापुताऽभितः ।
करपल्लवयोः प्रसूनता–समधारीह सता वपुष्मता ॥२१॥

जननी-तुल्य धायों के हाथों में खिलाया जाता हुआ वह कोमल और सुन्दर शरीर का धारक बालक ऐसा प्रतीत होता था, मानों किसी सुन्दर लता के कोमल पल्लवों के बीच में खिला हुआ सुन्दर फूल ही हो ॥२१॥

तुगहो गुणसंग्रहोचिते मृदुपल्यङ्क इवार्हतोदिते ।
शुचिबोधवदायतेऽन्वितः शयनीयोऽसि किलेति शायितः ॥२२॥

हे वत्स, श्री अरहन्त भगवान् के वचनों के समान असीम गुणों के भरे, संम्यग्ज्ञान के समान विशाल इस कोमल पंलग पर तुम्हें शयन करना चाहिए, ऐसा कहकर वे धायें उस बालक को सुलाया करती थीं ॥२२॥

भावार्थ – नाना प्रकार की उत्तम भावनाओं से भरी हुई लोरियाँ (गीत) गा-गा कर वे धायें उसे पालने में झुलाती हुई सुलाती थी।

सुत पालनके सुकोमले कमले वा निभृतं समोऽस्यले: ।
इति ताभिरिहोपलालितः स्वशयाभ्यां शनकैश्च चालितः ॥२३॥

अथवा, हे वत्स कमल के समान अति सुकोमल इस पालने में भ्रमर के समान तुम्हें चुपचाप सोना चाहिए, इत्यादि लोरियों से उसे लाड़-प्यार करती हुई और अपने हाथों से धीरे-धीरे झुलाती हुई वे धायें उसे सुलाया करती थीं ॥२३॥

विधृताङ्गुलि उत्थितः क्षणं समुपस्थाय पतन् सुलक्षणः ।
ध्रियते द्रुतमेव पाणिसत्तलयुग्मे स्म हितैषिणो हि सः ॥२४॥

जब कभी उसे अंगुलि पकड़ाकर खड़ा किया जाता था, तो वह सुलक्षण एक क्षण भर के लिए खड़ा रह कर ज्यों ही गिरने के उन्मुख होता, त्यों ही शीघ्र वह किसी हितैषी बन्धुजन के कोमल कर-युगल में उठा लिया जाता था ॥२४॥

अनुभाविमुनित्वसूत्रले प्रसरन् बालहठेन भूतले ।
तनुसौरभतोऽभ्यधाद्वरं धरणेर्गन्धवतीत्वमप्यरम् ॥२५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"आगामी काल में मुनिपना स्वीकार करने पर मुझे इसी पर सोना पड़ेगा" मानों यही सूचित करते हुए वह बालक जब अपनी बाल हठ से भूतल पर लोट-पोट होता था, तब वह अपने शरीर के सौरभ से धूलि को सुरभित कर पृथ्वी के गन्धवतीत्व गुण को स्पष्ट कर दिखलाता था ॥२५॥

भावार्थ - वैशेषिक मतवालों ने पृथ्वी को गन्धवती कहा है, अर्थात् वे गन्ध को पृथ्वी का विशेष या खास गुण मानते हैं। कवि ने उसे ध्यान में रखकर यह उत्प्रेक्षा की है। साथ ही भूतल पर लोटने की क्रीड़ा से उनके भविष्य काल में मुनि बनने की भी सूचना दी है।

द्रुतमाप्य रुदन्नथाम्बया पय आरात्स्तनयोस्तु पायितः ।
शनकैः समितोऽपि तन्द्रितां स्म न शेते पुनरेष शायितः ॥२६॥

खेलते-खेलते वह बालक जब रोने लगता,तो माता भूखा समझ कर उसे शीघ्र स्तनों से लगाकर दूध पिलाने लगती। दूध पीते-पीते जब वह अर्धनिद्रित सा हो जाता, तो माता धीरे से उसे पालने में सुलाने के लिए ज्यों ही उद्यत होती, त्यों ही वह फिर जाग जाता और सुलाने पर भी नहीं सोता था ॥२६॥

समवर्धत वर्धयन्नयं सितपक्षोचितचन्द्रवत्स्वयम् ।
निजबन्धुजनस्य सम्मदाम्बुनिधिं स्वप्रतिपत्तितस्तदा ॥२७॥

इस प्रकार अपनी सुन्दर चेष्टाओं के द्वारा अपने बन्धुजनों के आनन्द रूप समुद्र को बढ़ाता हुआ यह बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति स्वयं भी दिन पर दिन बढ़ने लगा ॥२७॥

विनताङ्गजवर्धमानता वदनेऽमुष्य सुधानिधानता ।
समभून्न कुतोऽपि वेदना भुवि बालग्रहभोगिभिर्मनाक् ॥२८॥

भूतलवर्ती अन्य साधारण बालक जैसे बालपने में होने वाले नाना प्रकार के रोगरूप सर्पों से पीडित रहते हैं, उस प्रकार से इस बालक के शरीर में किसी भी प्रकार की जरा-सी भी वेदना नहीं हुई। प्रत्युत विनता के पुत्र वैनतेय (गरुड़) के समान रोगरूप सर्पों से वह सर्वथा सुरक्षित रहा, क्योंकि उसके मुख में अमृत रहता हैं। इस प्रकार वह बालक सर्वथा नीरोग शरीर, एवं सदा विकसित मुख रहते हुए बढ़ रहा था ॥२८॥

सुमवत्समतीत्य बालतां प्रभवन् प्रेमपरायणः सताम् ।
सुगुरोरुपकण्ठमाप्तवानपि कौमाल्यगुणं गतः स वा ॥२९॥

जैसे सुमन (पुष्प) लता का त्याग कर और सूत में पिरोया जाकर माला के रुप में श्रेष्ठ गुरुजनों के गले को प्राप्त हो सज्जनों का प्यारा होता है, उसी प्रकार वह सुन्दर मनवाला बालक सुदर्शन भी बालभाव का त्याग कर और गुणों से संयुक्त कुमार पने को प्राप्त होकर किसी सुयोग्य गुरु के सान्निध्य को प्राप्त कर सज्जनों का प्रेम-पात्र हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ - कुमारपना प्राप्त होते ही वह गुरु के पास विद्याध्ययन करने के लिए भेजा गया ॥२९॥

कुशलसद्भावनोऽम्बुधिवत् सकलविद्यासरित्सचिवः ।
सहजभावेन सञ्जातः सुदर्शन एष भो भ्रात : ॥३०॥

हे भाई, कुशलता और सद्-भावना वाला यह सुदर्शन समुद्र के समान सहज भाव से ही समस्त विद्या रुपी नदियों के द्वारा सम्पन्न हो गया और अपने नाम को सार्थक कर दिखाया ॥३०॥

भावार्थ - जैसे समुद्र कुश (जल) के सद्भाव से सदा शोभायमान रहता है और नदियां स्वतः स्वभाव उसमें आकर मिलतीं रहती हैं, उसी प्रकार यह सुदर्शन अपनी कुशलता और गुरु-सेवा आदि सत्कार्यों के द्वारा अनायास ही सर्व विद्याओं में पारंगत हो गया और इसी कारण वह सच्चा 'सुदर्शन' बन गया।

परमागमपारगामिना विजिता स्यां न कदाचनाऽमुना।
स्म दधाति सुपुस्तकं सदा सविशेषाध्ययनाय शारदा ॥३१॥

परमागम के पारगामी इस सुदर्शन के द्वारा कदाचित् मैं पराजित न हो जाऊं, ऐसे विचार से ही शारदा (सरस्वती) देवी विशेष अध्ययन के लिए पुस्तक को सदा हाथ में धारण करती हुई चली आ रही है ॥३१॥

भावार्थ - सरस्वती को 'विणा-पुस्तक-धारिणी' माना गया है। उस पर से कवि ने सुदर्शन को लक्ष्य में रखकर उक्त कल्पना की है।

युवतां समवाप बाल्यतः जडताया अपकारिणीमतः ।
शरदं भुवि वर्षणात् पुनः क्षणवल्लक्षणमेत्य वस्तुनः ॥३२॥

जैसे वर्षा ऋतु में पानी बरसने के कारण भूतल पर कीचड़ हो जाती है और शरद् ऋतु के आने पर वह सूख जाती है, एवं लोगों का मन प्रसन्नता से भर जाता है, उसी प्रकार सुदर्शन बालपने में होने वाली जड़ता (अज्ञता) का अपकार (विनाश) करने वाली और लोगों के मन को प्रसन्न करने वाली युवावस्था को प्राप्त हुआ ॥३२॥

युवभावमुपेत्य मानितं वपुरेतस्य च कौतुकान्वितम् ।
बहुमञ्जुलतासमन्वितं मधुनोद्यानमिवावभावितः ॥३३॥

युवावस्था को प्राप्त होकर इस सुदर्शन का शरीर नाना प्रकार के कौतूहलों से युक्त होकर और अत्यधिक मंजुलता (सौन्दर्य) को धारण कर शोभायमान होने लगा। जैसे कि कोई सुन्दर लताओं वाला उद्यान वसन्त ऋतु को पाकर नाना प्रकार के कौतुकों (फूलों) और फलों से आच्छादित होकर शोभित होने लगता है ॥३३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथसागरदत्तसंज्ञिनः वणिगीशस्य सुतामताङ्गिनः ।
समुदीक्ष्य मुदीरितोऽन्यदा. धृत आसीत्तदपाङ्गसम्पदा ॥३४॥

उसी नगर में सागरदत्त नाम का एक और भी वैश्यपति (सेठ) रहता था। उसके एक अति सुन्दर मनोरमा लड़की थी। किसी समय जिन-मन्दिर में पूजन करता हुआ वह सुदर्शन उसे देखकर उसके कटाक्ष-विक्षेपरुप सम्पदा से उस पर मोहित हो गया ॥३४॥

रतिराहित्यमद्यासीत् कामरुपे सुदर्शने ।
ततो मनोरमाऽप्यासील्लतेव तरुणोज्झिता ॥३५॥

इधर तो साक्षात् कामदेव के रूप को धारण करने वाला सुदर्शन रति (काम की स्त्री) के अभाव से विकलता का अनुभव करने लगा और उधर मनोरमा भी वृक्ष के आश्रय से रहित लता के समान विकलता का अनुभव करने लगी।

भावार्थ - एक दूसरे को देखने से दोनों ही परस्पर में मोहित होकर व्याकुलता को प्राप्त हुए ॥३५॥

कुतः कारणतो जाता भवतामुन्मनस्कता ।
वयस्यैरिति पृष्टोऽपि समाह स महामनाः ॥३६॥

किस कारण से आज आपके उदासीनता (अनमनापन) है, इस प्रकार मित्रों के द्वारा पूछे जाने पर उस महामना सुदर्शन ने उत्तर दिया ॥३६॥

यदद्य वाऽऽलापि जिनार्चनायामपूर्वरुपेण मयेत्यपायात् ।
मनोऽरमायाति ममाकुलत्वं तदेव गत्वा सुहृदाश्रयत्वम् ॥३७॥

आज जिन-पूजन के समय मैंने अपूर्व रुप से (अधिक उच्च स्वर से) गाया, उसकी थकान से मेरा मन कुछ आकुलता का अनुभव कर रहा है, और कोई बात नहीं है, ऐसा है मित्रो, तुम लोग समझो। इस श्लोक-पठित 'वाऽऽलापि' (बालाऽपि) और 'अपूर्वरुपेण' इस पद के प्रयोग-द्वारा यह अर्थ भी व्यक्त कर दिया कि पूजन करते समय जिस सुन्दर बाला को देखा है, उसके अपूर्व रुप से मेरा मन आकुलता का अनुभव कर रहा है ॥३७॥

अहो किलाश्लेषि मनोरमायां त्वयाऽनुरूपेण मनो रमायाम् ।
जहासि मत्तोऽपि न किन्नु मायां चिदेति मेऽत्यर्थमकिन्नु मायाम् ॥३८॥

तमन्यचेतस्कमवेत्य तस्य संकल्पतोऽनन्यमना वयस्यः ।
समाह सद्यः कपिलक्षणेन समाह सद्यः कपिलः क्षणेन ॥३९॥ (युग्मम्)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुदर्शन का यह उत्तर सुनकर अन्य मित्र तो उसके कथन को सत्य समझकर चुप रह गये। किन्तु कपिल नाम का प्रधान मित्र उसके हृदय की बात को ताड़ गया और बन्दर के समान चपलता के साथ मुस्कराता हुआ बोला - अहो मित्र, मुझ से भी मायाचार करना नहीं छोड़ते हो ? मैं तुम्हारे अनमनेपन का रहस्य समझ गया हूँ, किन्तु हे दुखी मित्र, मेरी बुद्धि तुम्हारी माया को जानती है, तुम्हारा मन रमा (लक्ष्मी) के समान सुन्दर उस मनोरमा में आसक्त हो गया है, सो यह तो तुम्हारे अनुरुप ही है ॥३८-३९॥

यदा त्वया श्रीपथतः समुद्राद्धे सोम सा कैरवहारमुद्रा ।
क्षिप्ताऽसि विक्षिप्त इवाधुना तु स्मितामृतैस्तावदितः पुनातु ॥४०॥

सोम (चन्द्र) समान सौम्य मुद्रा के धारक हे सुदर्शन, समुद्र के समान विशाल राजमार्ग वाले बाजार से जाते हुए तुमने जबसे श्वेत कमलों के हार जैसी धवल मुद्रावाली उसे देखा है और उस पर अपनी दृष्टि फेंकी है, तभी से तुम विक्षिप्त चित्त से प्रतीत हो रहे हो। (कहो मेरी बात सच है न?) अब तो जरा अपने मन्द हास्यरुप अमृत से इसे पवित्र करो ।

भावार्थ - अब तो जरा मुस्करा कर मेरी बात की सचाई को स्वीकार करो ॥४०॥

सुदर्शन त्वञ्च चकोरचक्षुषः सुदर्शनत्वं गमितासि सन्तुष ।
तस्या मम स्यादनुमेत्यहो श्रुता किं चन्द्रकान्ता न कलावता द्रुता ॥

हे सुदर्शन, तुम भी उस चकोर-नयना मनोरमा के सुदर्शन बनोगे, इस बात का विश्वास कर हृदय में सन्तोष धारण करो। मेरा अनुमान है कि उसका भी मंन तुम पर मोहित हो गया है, क्योंकि कलावान् चन्द्रमा को देखकर चन्द्रकान्तमणि द्रवित न हुई हो, ऐसा क्या कभी सुना गया है? ॥४१॥

तदेतदाकर्ण्य पिताऽप्यचिन्तयत्किमग्रहीच्चित्तविधौ स्तनन्धयः ।
किमेतदस्मद्वशवर्तिकल्पनमहो दुराराध्य इयान् परो जनः ॥४२

सुदर्शन की मनोरमा पर मोहित होने की बात को सुनकर पिता विचारने लगा - कि इस बालक ने अपनी मनोवृत्ति में यह क्या हठ पकड़ ली है । क्या यह अपने बस की बात है ? अहो, अन्य जन दुराराध्य होता है ।

भावार्थ - अन्य मनुष्य को अपने अनुकूल करना बहुत कष्ट-साध्य होता है, वह अपनी बात को माने, या न माने, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है ॥४२॥

इति तच्चिन्तनेनैवाऽऽकृष्टः सागरदत्तवाक् ।
स्वयमेवाऽऽजगामाहो फलतीष्टं सतां रूचिः ॥४३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार वृषभदास सेठ के चिन्तवन से ही मानो आकृष्ट हुए सागरदत्त सेठ स्वयं ही आ उपस्थित हुए। ग्रन्थकार कहते हैं कि सागरदत्त सेठ के इस प्रकार अचानक स्वयं आजाने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि सुकृतशाली सज्जनों की इष्ट वस्तु स्वयं ही फलित हो जाती है॥ ४३॥

तमेनं विधुमालोक्य स उत्तस्थौ समुद्रवत् ।
सुदर्शनपिताऽप्यत्राऽऽतिथ्यसत्कारतत्परः ॥४४॥

समुद्रदत्त सेठ को इस प्रकार सहसा आया हुआ देखकर सुदर्शन का पिता वृषभदास सेठ भी चन्द्रमा को देखकर समुद्र के समान अति हर्षित हो अतिथि सत्कार करने के लिए तत्परता के साथ उठ खड़ा हुआ ॥४४॥

क्षेमप्रश्नानन्तरं ब्रूहि कार्यमित्यादिष्टः प्रोक्तवान् सागरार्यः ।
श्रीमत्पुत्रायास्मदङ्गोद्भवा स्यान्नोचेद्धानिः सा पुनीताम्बुजास्या ॥४५॥

परस्पर कुशल-क्षेम पूछने के अनन्तर वृषभदास सेठ बोले - कहिये, अकस्मात कैसे आपका शुभागमन हुआ है, क्या सेवा योग्य कार्य है? इस प्रकार पूछने पर सागरदत्त सेठ बोले - मैं आपके श्रीमान सुदर्शन कुमार के लिए अपनी पुण्यगात्री कमल-वदना मनोरमा कुमारी को देना चाहता हूँ। यदि कोई हानि न हो, तो मेरी प्रार्थना स्वीकार की जाय ॥४५॥

भूमण्डलोन्नतगुणादिव सानुरागा-द्गङ्गेव निर्मलरसोल्लसितप्रयागा ।
याऽगाज्जनिं जगति भो जडराशिजेन-तस्याः प्रयोग इह यः खलु बालकेन ॥४६॥

भूयात्कस्य न मोदायेति वदन् श्रेष्टिसत्तमः ।
वृषभोपपदो दासो जिनपादसरोजयोः ॥४७॥

सागरदत्त सेठ के उक्त वचनों को सुनकर श्रीजिनराज के चरम कमलों का दास श्रेष्ठिवर्य वृषभदास हर्षित होता हुआ बोला - भूमण्डल पर उन्नत मस्तक वाले हिमालय के समान उत्तम गुणवान्, परम अनुरागी श्रीमान् से उत्पन्न हुई, निर्मल जल से उल्लसित होकर बहने वाली प्रयाग में उत्तम जनों से पूजनीय ऐसी गंगा के समान रसमयी और उत्कृष्ट कुलवाले लोगों द्वारा प्रार्थनीय आपकी सुपुत्री यदि खारे जलवाले लवण समुद्र के समान मुझ जड़ बुद्धि वाले पुरुष के बालक के साथ संयोग को प्राप्त होती है, तो उनका यह सम्बन्ध पृथ्वी पर किसके प्रमोद के लिए न होगा ॥४६-४७॥

ततोऽनवद्ये समये तयोरभूत्करग्रहोदारमहोत्सवश्च भूः ।
अपूर्वमानन्दमगान्मनोरमा-सुदर्शनाख्यानकयोरपश्रमात् ॥४८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तदनन्तर उत्तम निर्दोष लग्न मुहूर्त के समय मनोरमा और सुदर्शन नामवाले उन दोनों वर-वधू का विवाह-महोत्सव बड़े भारी समारोह के साथ सम्पन्न हुआ, जिसे देखकर समस्त लोग अपूर्व आनन्द को प्राप्त हुए ॥४८॥

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
तेन प्रोक्तसुदर्शनोदय इयान् सर्गो द्वितीयोत्तरः
श्रीयुक्तस्य सुदर्शनस्य च समुद्वाहप्रतिष्ठापरः ॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुज जी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीभूषण, बाल ब्रह्मचारी पं. भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर-विरचित इस सुदर्शनोदय काव्य में सुदर्शन कुमार के विवाह का वर्णन करने वाला तृतीय सर्ग समाप्त हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ चतुर्थः सर्गः

अथ कदापि वसन्तवदाययावुपवनं निजपल्लवमायया।
जगदलं विदधत्सकलं भवानृषिवरः सुमनः समुदायवान् ॥१॥

अथानन्तर किसी समय उस नगर के उपवन में वसन्तराज के समान कोई ऋषिराज अपने संघ के साथपधारे। जैसे वसन्तराज आता हुआ वृक्षों को पल्लवित कर जगत् में आनन्द भर देता है,-उसी प्रकार ये ऋषिराज भी आते हुए अपने चरण कमलों की शोभा से जगत् भरको आनन्दित कर रहे थे। जैसे वसन्त के आगमन पर वृक्ष सुमनों (पुष्पों) के समुदाय से संयुक्त हो जाते हैं, उसी प्रकार ये ऋषिवर भी उत्तम मनवाले साधु सन्तों के समुदाय वाले थे ॥१॥

प्रवरमात्मवतामभिनन्दिषु निखिलपौरगणोऽप्यभिवन्दिषुः।
मुनिवरं वनमेष तदाऽव्रजच्छ्रियमितः स्वकरे कुसुमस्रजः ॥२॥

आत्मज्ञान और धर्मभावना के धारक लोग जिन्हें देखकर आनन्दित होते हैं, ऐसे महात्माओं में मुख्य गिने जाने वाले उन मुनिवर के अभिवन्दन करने के इच्छुक समस्त पुरवासी लोग। अपने-अपने हाथों में पुष्पमालाओं-को लेने के कारण अनुपम शोभा को धारण करते हुए उपवन को चले ॥२॥

अजानुभविनं द्रष्टुं जानुजाधिपतिर्ययौ।
परिवारसमायुक्तः परिवारातिवर्तिनम् ॥३॥

समस्त कुटुम्ब-परिवारके त्यागी ओर एकमात्र अपनी अजर-अमर आत्मा का अनुभव करने वाले उन मुनिवर के दर्शनों के लिए वह वैश्याधिपति वृषभदास सेठ भी अपने परिवार के लोगों के साथ गया ॥३॥

उत्तमाङ्गं सुवंशस्य यदासीदृषिपादयोः।
धर्मवृद्धिरभूदास्याद् गुणमार्गणशालिनः ॥४॥

जब उस उत्तम वंश में उत्पन्न हुए सेठ ने अपने उत्तमाङ्ग (मस्तक) को ऋषि के चरणों में रक्खा, तब गुण स्थान और मार्गणा स्थानों के विचारशाली ऋषिराज के मुख से 'धर्मवृद्धि' रुप आशीर्वाद प्रकट हुआ ॥४॥

भावार्थ - इस श्लोक का श्लेष रुप अर्थ यह भी है कि जैसे कोई मनुष्य गुण (डोरी) और मार्गण (वाण) वाला हो, उसे यदि उत्तम वंश (वांस) प्राप्त हो जाता है, तो वह सहज में ही उसका धनुष बना लेता है। इसी प्रकार ऋषिराज तो गुण स्थान और मार्गणास्थान के ज्ञान धारक थे ही। उन्हें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तम वंशरुप वृषभदास सेठ प्राप्त हो गया, अतः सहज में ही धर्मवृद्धि रुप धनुष प्रकट हो गया।

स्वरूपं श्रोतुमिच्छामि धर्मसन्नामवस्तुनः ।
इति श्रेष्ठिसमाकूतं निशम्याऽऽह यतीश्वरः ॥५॥

जब मुनिराज ने धर्म वृद्धि आशीर्वाद दिया तब सेठ ने कहा - भगवन्, 'धर्म' इस सुन्दर नाम वाली वस्तु का क्या स्वरुप है ? इस प्रकार सेठ के अभिप्राय को सुनकर मुनिराज बोले ॥५॥

धर्मस्तु धारयन् विश्वं तदात्मा विश्वमात्मसात् ।
विन्दन् भद्रतयाऽन्यार्थं विसृजेद देहमात्मनः ॥६॥

जो विश्व को धारण करे अर्थात् सारे जगत् का प्रतिपालन करे, ऐसे शुद्ध वस्तु-स्वभाव को धर्म कहते हैं। इस धर्म को धारण करने वाला धर्मात्मा पुरुष सारे विश्व को अपने समान मानता हुआ अन्य के कल्याण के लिए भद्रता-पूर्वक अपने शरीर को अर्पण कर देगा, किन्तु अपने देह की रक्षार्थ किसी भी जीव-जन्तु को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहेगा ॥६॥

देही देहस्वरूपं स्वं देहसम्बन्धिनं गणम् ।
मत्वा निजं परं सर्वमन्यदित्येष मन्यते ॥७॥

यह संसारी प्राणी अपने द्वारा ग्रहण किये हुए इस शरीर को और शरीर से सम्बन्ध रखने वाले माता, पिता, पुत्रादि कुटुम्बी जन को अपना मानकर शेष सर्व को अन्यसमझता है ॥७॥

रज्यमानोऽत इत्यत्र परस्मात्तु विरज्यते।
एवं च मोहतो मह्यां लाति त्यजति चाङ्गकम् ॥८॥

अतः जिन्हें वह अपना समझता है, उन्हें इष्ट मानकर उनमें अनुराग करने लगता है और जिन्हें पर समझता है, उन्हें अनिष्ट मानकर उनसे विरक्त होता है अर्थात् विद्वेष करने लगता है । इस प्रकार मोह के वशीभूत होकर यह जीव इस संसार में एक शरीर को छोड़ता और दूसरे शरीर को ग्रहण करता है और इस प्रकार वह जन्म मरण करता हुआ संसार में दुःख भोगता रहता है ॥८॥

पिता पुत्रत्वमायाति पुत्रः शत्रुत्वमन्यदा।
शत्रुश्च मित्रतामित्थमङ्गभू रङ्गभूरिव ॥९॥

रंगभूमि (नाटक घर) के समान इस संसार में यह प्राणी कभी पिता बनकर पुत्रपने को प्राप्त होता है, कभी पुत्र ही शत्रु बन जाता है और कभी शत्रु भी मित्र बन जाता है ॥९॥

भावार्थ - इस परिवर्तनशील संसार में कोई स्थायी शत्रु या मित्र, पिता या पुत्र, माता या पुत्री बनकर नहीं रहता, किन्तु कर्म वशीभूत होकर रंगभूमि के समान सभी वेष बदलते रहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेदमनुसन्दधानोऽयं सुयोग पयोगयोः ।
भूत्वा मोही दुरारोही वृथा हसति रौति च ॥१०॥

कर्म परवशता के इस रहस्य को नहीं समझता हुआ यह अज्ञानी मोही जीव वृथा ही इष्ट वस्तु के संयोग में हंसता है और अनिष्ट वस्तु के संयोग में रोता है ॥१०॥

सच्चिदानन्दमात्मानं ज्ञानी ज्ञात्वाऽङ्गतः पृथक् ।
तत्तत्सम्बन्धि चान्यच्चा त्यक्त्वाऽऽत्मन्यनुरज्यते ॥११॥

किन्तु ज्ञानी जीव अपनी आत्मा को शरीर से भिन्न सत् (दर्शन) चित् (ज्ञान) और आनन्द (सुख) स्वरूप जानकर उसमें ही तल्लीन रहता है और शरीर एवं शरीर के सम्बन्धी कुटुम्बादि को पर जानकर उनसे विरक्त हो उन्हें छोड़ देता है ॥११॥

संसारस्फीतये जन्तोर्भावस्तामस इष्यते।
विलोमतामितो मुक्तयै स्याल्लक्ष्माधर्मधर्मयोः ॥१२॥

जीव के तामसभाव- (विषय कषायरूप प्रवृत्ति-) को अधर्म कहा गया है । यह तामसभाव ही संसार की परम्परा का बढ़ाने वाला है और इससे विपरीत जो सात्त्विक भाव (समभाव या साम्यप्रवृत्ति) है, उसे धर्म कहा गया है । यह सात्त्विक भाव ही मुक्ति का प्रधान कारण है। संक्षेप में यही धर्म और अधर्म का स्वरुप है ॥१२॥

वागेव कौमुदी साधु–सुधांशोरमृतस्त्रवा।
तया वृषभदासस्याभून्मोहतिमिरक्षतिः ॥१३॥

इस प्रकार चन्द्र की चन्द्रिका के समान अमृत–वर्षिणी और जगद–आह्लादकारिणी मुनिराज की वाणी को सुनकर उस वृषभदास सेठ का मोहरूप अन्धकार दूर हो गया ॥१३॥

तमाश्विनं मेघहरं श्रितस्तदाऽधिपोऽपि दासो वृषभस्य सम्पदाम् ।
मयूरवन्मौनपदाय भन्दतां जगाम दृष्ट्वा जगतोऽप्यकन्दताम् ॥१४॥

मेघों के दूर करने वाले और कीचड़ के सुकाने वाले अश्विन मास को पाकर जैसे मयूर मौन भाव को अंगीकर करता है और अपने सुन्दर पुच्छ–पखों को नोंच नोंच कर फेंक देता है, ठीक इसी प्रकार मुझ जैसों के शीघ्र ही पाप को नाश करने वाले मुनिराज को पाकर सम्पदाओं का स्वामी होकर के भी श्री वृषभदेव का दास वह वृषभदास सेठ जगत् की असारता और कष्ट–रूपता को देखकर मयूर–पंखों के समान अपने सुन्दर केशों को उखाड़ कर और वस्त्राभूषण त्यागकर मुनि पदवी को प्राप्त हुआ, अर्थात दिगम्बर–दीक्षा ग्रहण करके मुनि बन गया ॥१४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे नाथ मे नाथ मनोऽविकारि सुराङ्गनाभिश्च तदेव वारि ।
मनोरमायां तु कथं सरस्यां सुदर्शनस्येथमभूत्समस्या ॥१५॥

मुनिराज की वाणी सुनकर और अपने पिता को इस प्रकार मुनि बना देखकर सुदर्शन भी संसार से उदास होता हुआ मुनिराज से बोला – हे नाथ, हे स्वामिन्, मैं मानता हूं कि यह संसार असार है, विनश्वर है । पर देवाङ्गनाओं से भी विकार भाव को नहीं प्राप्त होने वाला मेरा यह मन रुप जल मनोरमारुपी सरसी (सरोवरी) में अवश्य ही रम रहा है, यह मेरे लिए बड़ी कठिन समस्या है, जिससे कि मैं मुनि बनने के लिए असमर्थ हो रहा हूँ। इस प्रकार सुदर्शन ने अपनी समस्या मुनिराज से प्रकट की ॥१५॥

मुनिराह निशम्येदं श्रृणु तावत्सुदर्शन।
प्रायः प्राग्भवभाविन्यौ प्रीतत्यप्रीती च देहिनाम ॥१६॥

सुदर्शन की बात सुनकर मुनिराज बोले – सुदर्शन, सुनो–जीवों के परस्पर प्रीति और अप्रीति प्रायः पूर्वभव के संस्कार वाली होती है।

भावार्थ – तेरा जो मनोरमा में अति अनुराग है, वह पूर्वभव के संस्कार–जनित है, जिसे मैं बतलाता हूं, सो सुन ॥१६॥

त्वमेकदा विन्ध्यगिरेनिवासी भिल्लस्त्वदीयांघ्रियुगेकदासी।
तयोरगाज्जीव नमत्यघेन निरन्तरं जन्तुबधाभिधेन ॥१७॥

पूर्वभव में तुम एक बार विन्ध्याचल के निवासी भील थे और यह मनोरमा भी उस समय तुम्हारे चरण–युगल की सेवा करने वाली गृहिणी थी। उस समय तुम दोनों ही निरन्तर जीवों का वध कर–करके अपना जीवन पाप से परिपूर्ण बिता रहे थे ॥१७॥

मृत्वा ततः कुक्कुरतामुपेतः किञ्चिच्छुभोदर्कवशात्तथेतः।
जिनालयस्यान्तिकमेत्य मृत्युं सुतो बभूवाथ गवां स पत्युः ॥१८॥

भील की पर्याय से मर कर तुम्हारा जीव अगले भव में कुत्ता हुआ। कुछ शुभ होनहार के निमित्त से वह कुत्ता किसी जिनालय के समीप आकर मरा और किसी गुवाले के यहां जाकर पुत्र हुआ ॥१८॥

आकर्षताब्जं च सहस्त्रपत्रं तेनैकदा गोपतुजैकमत्र।
इदं प्रवृद्धाय समपणीयं स्वयं नभोवाक् समुपालभीयम् ॥१९॥

एक बार सरोवर में से सहस्त्रपत्र वाले कमल को तोड़ते हुए उस गुवाले के लड़के ने यह आकाशवाणी सुनी कि वत्स, यह सहस्रदल कमल किसी बड़े पुरुष को समर्पण करना,स्वयं उपभोग न करना ॥१९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोऽस्मे त्वज्जनकायासौ राज्ञै राजा जिनाय च।
समर्पयितुमैच्छत्तत्सर्वे प्राप्ता जिनालयम् ॥२०॥

गुवाले के लड़के ने सोचा – हमारे नगर में तो वृषभदास सेठ सबसे बड़े आदमी हैं, अतः वह कमल देने के लिए उनके पास पहुँचा और आकाशवाणी की बात कहकर वह कमल उन्हें देने लगा। किन्तु सेठ ने कहा कि मेरे से भी बड़े तो इस नगर के राजा हैं, उन्हें यह देना चाहिए, ऐसा कहकर सेठ उस बालक को साथ लेकर राजा के पास पहुंचा और आकाशवाणी की बात कहकर वह कमल उन्हें भेंट करने लगा। तब राजा ने कहा कि मेरे से ही क्या, सारे त्रैलोक्य में सबसे बड़े तो जिनराज हैं, यह उन्हें ही समर्पण करना चाहिए, ऐसा कहकर वे सब (राजा उन दोनों को साथ लेकर) जिनालय पहुँचे ॥२०॥

सर्वेषामभिवृद्धाय जिनाय समहोत्सवम् ।
तत्र तद्दापयामासुर्गोपबालकहस्ततः ॥२१॥

वहां पहुँचकर राजा ने बड़े महोत्सव के साथ उस गोप बालक के हाथ से वह सहस्रदल कमल त्रैलोक्य में सबसे बड़े जिन देव के लिए समर्पण करवा दिया, अर्थात् जिनभगवान् के आगे चढ़वा दिया ॥२१॥

गोदोहनाम्भोभरणादिकार्य करं पुनर्गोपवरं स आर्यः ।
श्रेष्ठी मुहुः स्नेहतयाऽन्वरक्षीद् धर्माम्बुवाहाय न कः सपक्षी ॥२२॥

वृषभदास सेठ ने उस गुवाले के लड़के को योग्य होनहार देखकर अपनी गायों के दुहने और जल भरने आदि कार्यों के करने के लिए अपने यहां नौकर रख लिया और बहुत स्नेह से उसकी रक्षा करने लगा। सो ठीक ही है, धर्म-बुद्धिवाले जीव की कौन सहायता नहीं करता ॥२२॥

मुनि हिमर्तौ द्रुममूलदेश स्थितं वनान्ताद्दिवसात्यये सः ।
प्रत्याव्रजन् वीक्षितवानुदारमात्मोत्तमाङ्गार्पितकाष्ठभारः ॥२३॥

एक समय शीतकाल में जबकि हिम-पात हो रहा था, वह गुवाल का लड़का अपने शिर पर लकड़ियों का भार लादे हुए वन से शाम को घर वापिस आ रहा था,तब उसने मार्ग मे एक वृक्ष के नीचे आसन मांडकर बैठे हुए ध्यानस्थ उदार साधु को देखा ॥२३॥

मत्तोऽप्यवित्तविधिरेष मयोपकार्यः किन्नेति चेतसि स भद्रतया विचार्य ।
निश्चेलकं तमभिवीक्ष्य बभूव यावद् रात्रं तदग्र उपकल्पितवह्निभावः ॥२४॥

वस्त्र से रहित और ध्यान में अवस्थित उन मुनिराज को देखकर भोलेपन से वह विचारने लगा अहो, ये तो मेरे से भी अधिक निर्धन और गई बीती दशा को प्राप्त दिख रहे हैं ? फिर मुझे इनका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपकार क्यों न करना चाहिए ? ऐसा विचार कर वह सारी रात उनकी शीत-बाधा को दूर करने के लिए उनके आगे आग जलाता हुआ बैठा रहा ॥२४॥

प्रातः समापितसमाधिरिहानगार धुर्यो नमोऽर्हत इतीदमदादुदारः ।
यत्सूक्तिपूर्वकमुपात्तविधेयवादः। व्यत्येति जीवनमथ स्म लसत्प्रसादः ॥२५॥

प्रातः काल जब अनगार धुरीण (यदि-शिरोमणि) उन मुनिराज ने अपनी समाधि समाप्त की और ,सामने आग जलाते हुए उस गुवाल बालक को देखा, तो उसे निकट भव्य समझकर उदारमना उन मुनिराज ने उसके लिए 'नमोऽर्हते' (णमो अरिहताणं) इस महामंत्र को दिया और कहा कि इस मंत्र के स्मरण-पूर्वक ही प्रत्येक कार्य को करना । वह बालक सविनय मन्त्र ग्रहण कर और मुनिराज की वन्दना करके अपने घर चला आया और प्रत्येकं कार्य के प्रारम्भ मे उक्त महामंत्र का उच्चारण करता हुआ आनन्द पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगा ॥२५॥

महिषीमेकदोद्धर्तु सरस्येति स्म कूर्दितः ।
काष्ठसङ्घाततो मृत्युं मन्त्रस्मरणपूर्वकम् ॥२६॥
महामन्त्रप्रभावेणोत्पन्नोऽसि त्वं महामनाः ।
एतस्माद्भवतो मुक्तिं यास्यसीति विनिस्चिनु ॥२७॥

(युग्मम्)

एक दिन जब वह गाय-भैंसों को चराने के लिए जंगल में गया हुआ था, तब एक भैंस किसी सरोवर में घुस गई। उसे निकालने के लिए ज्यों ही वह उक्त मन्त्र स्मरण पूर्वक सरोवर में कूदा, त्योंही पानी के भीतर पड़े हुए किसी तीक्ष्ण काष्ठ के आघात से वह तत्काल मर गया और उस महामंत्र के प्रभाव से हे सौभाग्य-शालिन् वृषभदास सेठ के तुम महामना पुत्र उत्पन्न हुए हो । (यद्यपि आज तुम्हें वैराग्य नहीं हो रहा है, तथापि) तुम इसी भव से मोक्ष को जाओगे, यह निश्चित समझो ॥२६-२७॥

भिल्लिनी तस्य भिल्लस्य मृत्वा रक्ताक्षिकाऽभवत् ।
ततश्च रजकी जाताऽमुष्मिन्नेव महापुरे ॥२८॥
तत्रास्याः पुण्ययोगेनाप्यार्यिकासंघसङ्गमात् ।
बभूव क्षुल्लिकात्वेन परिमामः सुखावहः ॥२९॥

(युग्मम्)

उस भील की भीलनी मरकर भैंस हुई। पुनः वह भैंस मरकर इसी ही महान् नगर में धोबी की लड़की हुई। वहां पर उसके योग से उसका आर्यिकाओं के संघ के साथ समागम हो गया, जिसका परिणाम बड़ा सुखकर हुआ, वह धोबिन क्षुल्लिका बन गई ॥२८-२९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाबिन्दुरेति खलु शुक्तिषु मौक्तिकत्वं लोहोऽथ पार्श्वदृषदाऽञ्चति हेमसत्त्वम् ।
सत्सम्प्रयोगवशतोऽङ्गवतां महत्वं सम्पद्यते सपदि तद्वदभीष्टकृत्वम् ॥३०॥

देखो- जैसे जल की एक बिन्दु सीप के भीतर जाकर मोती बन जाती है और पारस पाषाण का योग पाकर लोहा भी सोना बन जाता है, उसी प्रकार सन्तजनों के संयोग से प्राणियों का भी अभीष्ट फलदायी महान् पद शीघ्र मिल जाता हैं।

भावार्थ - वह नीच कुलीन धोबिन भी आर्यिकाओं के समागम से क्षुल्लिका बन कर कुलीन पुरुषों के द्वारा पूजनीय बन गई ॥३०॥

शाटकं चोत्तरीयं च वस्त्रयुग्ममुवाह सा।
कमण्डलुं भुक्तिपात्रमित्येतद्‌द्वितयं पुनः ॥३१॥

क्षुल्लिका की अवस्था में वह एक श्वेत साड़ी (धोती) और एक श्वेत उत्तरीय (चादर) इन दो वस्त्रों को अपने शरीर पर धारण करती थी, तथा कमण्डलु और थाली ये दो पात्र अपने साथ रखती थी ।

भावार्थ - शरीर-संवरण के लिए दो वस्त्र और खान-पान के लिए उक्त दो पात्रों के अतिरिक्त शेष सर्व परिग्रह का उसने त्याग कर दिया था । ॥३१॥

शाटीव समभूदेषा गुणानामधिकारिणी ।
सदारम्भादनारम्भादघादप्यतिवर्तिनी ॥३२॥

वह क्षुल्लिका आरम्भिक और अनारम्भिक अर्थात् साङ्कल्पिक पाप से (जीव घात से) दूर रहकर और दया, क्षमा, शील, सन्तोष आदि अनेक गुणों की अधिकारिणी बनकर श्वेत साड़ी के समान ही निर्मल बन गई ॥३२॥

भावार्थ - घर के खान-पान, लेन-देन, वाणिज्य-व्यवहार आदि के करने से होने वाली हिंसा को आरम्भिक हिंसा कहते हैं और सङ्कल्प-पूर्वक किसी भी प्राणी के घात करने को साङ्कल्पिक हिंसा कहते हैं। उस धोबिन ने क्षुल्लिका बनकर दोनों ही प्रकार की हिंसा का त्याग कर दिया था, अतः उसके दया, क्षमादि अनेक गुण स्वतः ही प्रकट हो गये थे। और इस प्रकार वह अपनी पापमय जीविका छोड़कर पवित्र जीवन बिताने लगी।

सत्यमेवोपयुञ्जाना सन्तोषामृतधारिणी ।
पर्वण्युपोषिता काल-त्रये सामायिकं श्रिता ॥३३॥

क्षुल्लिकापने में वह सदा सत्य वचन बोलती थी (झूठ बोलने और चोरी करने का तो उसने सदा के लिए त्याग ही कर दिया था। निर्मल ब्रह्मचर्य व्रत पालती थी।) ऊपर कहे गये वस्त्र और पात्र-युगल के अतिरिक्त सर्वपरिग्रह का त्याग कर देने से वह सन्तोषरूप अमृत को धारण करती थी। प्रत्येक अष्टमी चतुर्दशी के पर्व पर उपवास रखती थी और तीनों सन्ध्याकालों में सदा सामायिक करती थी ॥३३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्त्याऽर्पितं वह्न्युपकल्पि शाकं भैक्ष्येण भुङ्क्त्वाऽथ दिवैकदा कम्
तदैव पीत्वाऽमुकसंघ के तु स्थित्वा स्मरन्तो परमार्थनेतुः ॥३४॥

अग्नि-पक्क दाल-भात, शाक-रोटी आदि जिन भोज्य पदार्थों को गृहस्थ भक्ति से देता था, अथवा वह स्वयं भिक्षावृत्ति से ले आती थी, उन्हें ही एक बार दिन में खाकर और तभी पानी पीकर वह आर्यिकाओं के संघ मे रहती हुई सदा परमार्थ (मोक्ष-मार्ग) के नेता जिनदेव का स्मरण करती रहती थी ॥३४॥

सौहार्दमङ्गिमात्रे तु किल्ष्टे कारुण्यमुत्सवम् ।
गुणिवर्गमुदीक्ष्याऽगान्माध्यस्थ्यं च विरोधिषु ॥३५॥

वह सदा प्राणिमात्र पर मैत्रीभाव रखती थी, कष्ट से पीड़ित प्राणी पर करुणाभाव रखती हुई उसके दुख को दूर करने का प्रयत्न करती रहती थी, गुणी जनों को देखकर अतीव हर्षित हो उत्सव मनाया करती थी और विरोधी विचार वाले व्यक्तियों पर माध्यस्थ्य भाव रखती थी ॥३५॥

वारा वस्त्राणि लोकानां क्षालयामास या पुरा ।
ज्ञानेनाद्याऽऽत्मनश्चित्तमभूत्क्षालितुमुद्यता (क्षालयितुंगता) ॥३६॥

जो धोबिन पहले जल से लोगों के वस्त्रों को धो-धोकर स्वच्छ किया करती थी। वही अब क्षुल्लिका बनकर ज्ञानरुप जल के द्वारा अपने मन के मैल को धो-धोकर उसे निर्मल स्वच्छ बनाने के लिए सदा उद्यत रहती थी ॥३६॥

सैषा मनोरमा जाता तव वत्स मनोरमा ।
सती सीतेव रामस्य यया भाति भवानमा ॥३७॥

हे वत्स सुदर्शन, वही क्षुल्लिका मरकर तुम्हारे मन को रमाने वाली यह मनोरमा हुई है। जैसे सीता राम के मन को हरण करती हुई पूर्वकाल में शोभित होती थी, उसी प्रकार आप भी इसके साथ इस समय शोभित हो रहे हैं ॥३७॥

व्युत्पन्नमानितत्वेन देवत्वं त्वयि युज्यते ।
देवीयं ते महाभाग समा समतिलोत्तमा ॥३८॥

हे महाभाग, व्युत्पन्न (विद्वान्) पुरुषों के द्वारा सम्मानित होने से तुममें देवपना प्रकट है और उत्तम लक्षणों वाली यह मनोरमा भी तिलोत्तमा के समान देवी प्रतीत हो रही है ॥३८॥

सर्वमेतच्च भव्यात्मन् विद्धि धर्मतरोः फलम् ।
कामनामरसो यस्य स्यादर्थस्तत्समुच्चायः ॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे भव्यात्मन् तुम्हें जो कुछ सुख-सम्पदा, ऐश्वर्य आदिक प्राप्त हुआ है, वह सब पूर्वभव में लगाये हुए धर्म रुप कल्पवृक्ष का ही फल है. जैसे आम आदि फल में रस, गुठली, बक्कल आदि होते हैं, उसी प्रकार उस धर्म रुप फल का आनन्द रुप काम-भोग तो रस है और धन-सम्पदादि पदार्थों का समुदाय उस फल के गुठली-वक्कल आदि जानना चाहिए ॥३९॥

हे वत्स त्वञ्च जानासि पुरुषार्थचतुष्टये।
धर्म एवाद्य आख्यातस्तं विनाऽन्ये न जातुचित् ॥४०॥

हे वत्स, यह तो तुम भी जानते हो कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में धर्म ही प्रधान है और इसीलिए वह सब पुरुषार्थों के आदि में कहा गया है। धर्म पुरुषार्थ के बिना शेष अन्य पुरुषार्थ कदाचित् भी संभव नहीं है, उनका होना तो उसी के अधीन है ॥४०॥

मा हिंस्यात्सर्वभूतानीत्यार्षं धर्मे प्रमाणयन् ।
सागसोऽप्याङ्गिनो रक्षेच्छक्त्या किन्नु निरागसः ॥४१॥

'किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करे' इस आर्ष-वाक्य को धर्म के विषय में प्रमाण मानते हुए अपराधी जीवों की भी यथाशक्ति रक्षा करना चाहिए । फिर जो निरपराध हैं, उनकी तो खास कर रक्षा करना ही चाहिए ॥४१॥

प्रशस्तं वचनं ब्रूयाददत्तं नाऽऽददीत च ।
परोत्कषसहिष्णुत्वं जह्याद्वाञ्छन्निजोन्नतिम् ॥४२॥

सदा उत्तम सत्य वचन बोले, दूसरे के मर्मच्छेदक और निन्दा-परक सत्य वचन भी न कहे, किसी की बिना दी हुई वस्तु को न लेवे और अपनी उन्नति को चाहने वाला पुरुष दूसरे का उत्कर्ष देखकर मन में असहनशीलता (जलन-कुढ़न) का त्याग करे ॥४२॥

न क्रमेतेतरत्तल्पं सदा स्वीयञ्च पर्वणि ।
अनामिषाशनीभूयाद्वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ॥४३॥

दूसरे की शय्या का अर्थात् पुरुष परस्त्री के और स्त्री परपुरुष के सेवन का त्याग करे और पर्व के दिनों में पुरुष अपनी स्त्री का और स्त्री अपने पुरुष का सेवन न करे। सदा अनामिष-भोजी रहे, अर्थात् मांस को कभी भी न खावे, किन्तु अन्न-भोजी और शाकाहारी रहे। एवं वस्त्र से छने हुए जल को पीवें ॥४३॥

नमदाचरणं कृत्वा गृह्णीयाद् वृद्धशासनम् ः
परमप्यनुगृह्णीयादात्मने पक्षपातवान् ॥४४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मद मोह (नशा) उत्पन्न करने वाली मदिरा, भांग, तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं का सेवन न करें विनीत भाव धारण करके वृद्धजनों की आज्ञा स्वीकार करें ॥४४॥

सर्वेषामुपकाराय मार्गः साधारणो ह्ययम् ।
युवाभ्यामुररीकार्यः परमार्थोपलिप्सया ॥४५॥

सर्व प्राणियों के उपकार के लिए यह सुख-दायक साधारण (सामान्य, सरल) धर्म मार्ग कहा है, सो परमार्थ की इच्छा से तुम दोनों को यह स्वीकार करना चाहिए। ४५॥

श्रुत्वेति यतिराजस्य वचस्ताभ्यां नमस्कृतम् ।
तत्पादयोर्विनीताभ्यामोमुच्चारणपूर्वकम् ॥४६॥

इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर विनम्रीभूत उन दोनों ने (सुदर्शन और मनोरमा ने) अपनी स्वीकृति सूचक 'ओम्' पद का उच्चारण करते हुए उनके चरणों में नमस्कार किया ॥४६॥

अन्योन्यानुगुणैकमानसतया कृत्वाऽर्हदिज्याविधिं
पात्राणामुपतर्पणं प्रतिदिनं सत्पुण्यसम्पन्निधी।
पौलोमीशतयज्ञतुल्यकथनौ कालं तकौ निन्यतुः
प्रीत्यम्बेक्षुधनुर्धरौ स्वविभवस्फीत्या तिरश्चक्रतुः ॥४७॥

तदनन्तर वे मनोरमा और सुदर्शन आपस में एक दूसरे के गुणों में अनुरक्त चित्त रहते हुए प्रतिदिन अर्हन्त देव की पूजा करके और पात्रों को नवधा भक्ति-पूर्वक दान देकर के उत्तम पुण्य के निधान बनकर इन्द्र और इन्द्राणी के समान आनन्द से काल बिताने लगे, तथा अपने वैभव-ऐश्वर्य को समृद्धि से रति और कामदेव का भी तिरस्कार करते हुए सांसारिक भोगोपभोगों का अनुभव करते हुए रहने लगे ॥४७॥

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
तेन प्रोक्तसुदर्शनोदय इह व्यत्येति तुर्याख्यया ।
सर्गः प्राग-जनुरादिवर्णनकरः श्री श्रेष्ठिनोऽसौ रयात् ॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुजजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणी भूषण, बाल ब्रह्मचारी पं. भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर-विरचित इस सुदर्शनोदय काव्य में सुदर्शन के पूर्वभव का वर्णन करने वाला चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ पञ्चमः सर्गः

तत्र प्रभातकालीनो राग :

अहो प्रभातो जातो भ्रातो भवभयहरजिनभास्करतः ।।स्थायी।।
पापप्राया निशा पलाया-मास शुभायाद्भूतलतः । ।।१।।

नक्षत्रता दृष्टिमपि नाऽञ्चति सितद्यु तेर्निगमनमतः ।।स्थायी।।
खंगभावस्य च पुनः प्रचारो भवति दृष्टिपथमेष गतः ।
क्रियते विप्रवरैरिहादरो जड़जातस्य समुत्सवतः ।।स्थायी ।।२।।

साऽमेरिकादिकस्य तु मलिना रुचिः सुमनसामस्ति यतः ।
भूराजी शान्तये वन्दितुं पादौ लगतु विरागभृतः ।।स्थायी ।।३।।

अहो भाई, देखो प्रभात काल हो गया है, जन्म मरण रुप भव-भय के दूर करने वाले श्री जिनवर-भास्कर के उदय से पाप-बहुल रात्रि इस शुभ चेष्टावाले भारत-भूतल से न जाने, किधर को भाग गई है । इस समय जैसे सित द्युति(श्वेत कान्तिवाले) चन्द्र के चले जाने से नक्षत्र गण भी दृष्टि-गोचर नहीं हो रहे हैं, वैसे ही श्वेत वर्ण वाले अंग्रेजों के चले जाने से इस समय भारतवासियों में अक्षत्रियपना (कायरपना) भी दिखाई नहीं दे रहा है, किन्तु सभी लोग अब साहसी बनकर क्षत्रियपना दिखला रहे हैं इस प्रभात-वेला में खगगण (पक्षियों का समूह) जैसे आकाश में इधर-उधर संचार करता हुआ दिखाई दे रहा है, वैसे ही नभोयान (हवाई जहाज) भी नभस्तल पर विहार करते हुए दिखाई दे रहे हैं । तथा ब्राह्मण लोग स्नानादि से निवृत होकर देव पूजन के लिए जैसे जलजों (कमलों) को तोड़ रहे हैं, वैसे ही वे लोग अब हीन जाति के लोगों का आदर सत्कार भी उल्लास के साथ कर रहे हैं। और जैसे इस प्रभात-बेला में गुलाब आदि सुन्दर पुष्पों के ऊपर भौंरे आदि की मलिन कान्ति दृष्टिगोचर हो रही है, वैसे ही अमेरिका आदि अनेक देशवासियों के हृदयों में अब भी भारत के प्रति मलिन भावना दिखाई दे रही है । अतएव भूराजी (ग्रन्थकार) कहते हैं कि भूमण्डलकी सारी प्रजा की शान्ति के लिए वीतराग श्रीजिनभगवान् के चरणों की इस समय वन्दना करनी चाहिए ।।१-३।।

आगच्छताऽऽगच्छत भो जिनार्चनार्थं याम ।
जिनमूर्तिमात्मस्फूर्त्तिं स्वदृसा निभालयाम ।।स्थायी ।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जलचन्दनतण्डुलपुष्पादिकमविकलतया नयाम ।
जिनमभ्यर्च्य निजं जनुरेतत्साफल्यं प्रणयाम ।।स्थायी ।।२।।

श्रीजिनगन्धोदकं समन्ताच्छिरसा स्वयं वहाम ।
कलिमलधावनमतिशयपावनमन्यत्किं निगदाम ।।स्थायी ।।३।।

उत्तमाङ्गतिमि सुदेवपदयोः स्वस्य स्वयं दधाम ।
उत्तमपदसम्प्राप्तिमितीदं स्फुटमेव प्रवदाम ।।स्थायी ।।४।।

किमति भणित्वा सद्गुणगानं गुणवत्तया लसाम ।
भूरानन्दस्यात्र नियमतश्चैवं वयं भवाम ।।स्थायी ।।५।।

आओ भाइयो आओ, हम लोग सब मिलकर श्री जिनभगवान् की पूजन को चलें और हमारे कर्त्तव्य का स्मरण कराने वाली श्रीजिनमुद्रा को अपने नयनों से अवलोकन करें। जल, चन्दन, तन्दुल, पुष्प आदि पूजन सामग्री को शोध-वीनकर अपने साथ ले चलें और श्रीजिनदेव की पूजन करके अपने इस मनुष्य जन्म को सफल बनावें । पूजन से पूर्व जिनभगवान् का अभिषेक करके पाप मल धोने वाले और अतिशय पवित्र इस श्रीजिन-गन्धोदक को हम सब स्वयं ही भक्ति भाव से अपने शिर पर धारण करें। और अधिक हम क्या कहें, उत्तम-शिव पद की प्राप्ति के लिए हम लोग अपने उत्तमाङ्ग (मस्तक) को श्रीजिनदेव के चरण-कमलों में रक्खे- उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करें, यही हमारा निवेदन है। यथाशक्ति भगवान् के सद्गुणों का गान करके हम भी गुणीजनों में गणना के योग्य बन जावें। भूरामल का यही कहना है, कि नियम पूर्वक इस मार्ग से ही भूतल पर आनन्द-प्रसार करके हम लोग आनन्द प्राप्त कर सकते हैं ।।१-५।।

卐 रसिकनामरागः 卐

भो सखि जिनवरमुद्रां पश्य नय दृशमाशु सफलतां स्वस्य ।।स्थायी।।

राग-रोषरहिता सती सा छविरविरुद्धा यस्य,
तुला त्विलायां किं भवेदपि दृगपि न सुलभा तस्य ।।नयदृश ।।१।।

पुरा तु राज्यमितो भुवः पुनरञ्चति चैक्यं स्वस्य ।
योग-भोगयोरन्तर खलु नासा दृशा समस्य ।।नयदृशमाशु ।।२।।

कल इति कल एवाऽऽगतो वा पल्यङ्कासनमस्य ।
बलमखिलं निष्फलं च तच्चेदात्मबलं नहि यस्य ।।नय दृशमाशु ।।३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्यसि शान्तिसमिच्छकस्त्वं सम्भज सन्निधिमस्य ।
भूरामादिभ्यास्तिलाञ्जलिमर्पय नर्मोदस्य ।।नय दृशमाशु ।।४।।

हे मित्र, जिनवर की वीतराग मुद्रा का दर्शन करो और अपने नयनों को सफल करो । देखो, राग-द्वेष से रहित यह वीतराग मुद्रा कितनी शान्त दिखाई दे रही है कि जिसकी तुलना इस भूतल पर अन्यत्र सुलभ नही है। हमारा यह सौभाग्य है कि हमें ऐसी अत्यन्त दुर्लभ प्रशान्त मुद्रा के दर्शन सुलभ हो रहे हैं । पहले तो जिस जिनराज ने इस समस्त भूमण्डल का राज्य-प्रशासन किया और यहां की जनता को त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, कामपुरुषार्थ) के सेवन रुप भोगमार्ग को बतलाया। तदनन्तर भोगों से उदास होकर और राज्य पाट का त्याग कर पद्मासन संस्थित हो नासादृष्टि रखकर अपनी आत्मा में तल्लीनता को प्राप्त होकर योग मार्ग को बतलाया इस प्रकार यह वीतराग मुद्रा भोग और योग के अन्तर को स्पष्टरूप से प्रकट कर रही है । जिनभगवान् की यह मूर्ति जो पद्मासन से अवस्थित है और हाथ पर हाथ रखकर निश्चल विराजमान है, सो संसारी जनों को यह बतला रही है कि आत्म-बल के आगे अन्य सब बल निष्फल हैं । हे भाई, यदि तुम शान्ति चाहते हो, तो इन राज्य-पाट, स्त्री-पुत्रादिक से दूर होकर और सांसारिक कार्यों को तिलाञ्जलि देकर इसके समीप आओ और एकाग्र चित्त होकर के इसकी सेवा-उपासना कर अपना जीवन सफल करो ।।१-४।।

卐 काफी होलिकारागः 卐

कदा समयः स समायादिह जिनपूजायाः ।।स्थायी।।
कञ्चनकलशे निर्मलजलमधिकृत्य मञ्जु गङ्गायाः ।

बाराधारा विसर्जनेन तु पदयोजिनमुद्रायाः
लयोऽस्तु कलङ्ककलायाः ।।स्थायी।।१।।

मलयगिरेश्चन्दनमथ नन्दनमपि लात्वा रम्भायाः ।
केशरेण सार्धं विसृजेयं पदयोर्जिनमुद्रायाः, न सन्तु कुतश्चापायाः ।।स्थायी ।।२।।
मुक्तोपमतन्दुलदलमुज्ज्वलमादाय श्रद्धायाः ।

सद्भावेन च पुञ्जं दत्वाऽप्यग्रे जिनमुद्रायाः,
पतिः स्यां स्वर्गरमायाः ।।स्थायी।।३।।

कमलानि च कुन्दस्य च जातेः पुष्पाणि च चम्पायाः ।
अर्पयामि निर्दर्पतयाऽहं पदोयजिनमुद्रायाः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यतः सौभाग्यं भायात् ।।स्थायी ।।४।।

षड्–रसमयनानाव्यञ्जनदलमविकलमपि च सुधायाः,
सम्बलमादायार्पयेयमहमग्रे जिनमुद्रायाः,
वशेऽपि स्यां न क्षुधायाः ।।स्थायी ।।५।।

शुद्धसर्पिषः कर्पूरस्याप्युत माणिक्यकलायाः ।
प्रज्वालयेयमिह दीपकमहमग्रे जिनमुद्रायाः,
हतिः स्याच्चितनिशायाः ।।स्थायी ।।६।।

कृष्णागुरुचन्दनकर्पूरादिकमय धूपदशायाः ।
ज्वालनेन कृत्वा सुवासनामग्रे जिनमुद्रायाः,
हरेयमदृष्टच्छायाम् ।।स्थायी ।।७।।

आम्रं नारङ्गं पनसं वा फलमथवा रम्भायाः ।
समर्पयेयमुदारभावतः पुरतो जिनमुद्रायाः,
हतिः स्यादसफलतायाः ।।स्थायी ।।८।।

जलचन्दनतन्दुलकुसुमस्रक् चरुणि दीपशिखायाः ।
तां च धूपमथ फलमपि धृत्वा पुरतो जिनमुद्रायाः,
स्थलं स्यामनर्घतायाः ।। स्थायी ।।९।।

एवंविधपूजाविधानतो जिननाथप्रतिमायाः ।
भातु जनः खलु सकलोत्सवभूरासाद्याकुलतायाः
विनाशमनेकविधायाः ।।स्थायी ।।१०।।

श्री जिनभगवान् की पूजन करने का कब वह सुअवसर मुझे प्राप्त हो, जबकि मैं गंगा के निर्मल जल को सुवर्ण–घट में भर कर लाऊँ और जिन मुद्रा के चरणों में विसर्जन कर अपने कर्म–कलंक को बहाऊं ? कब मैं मलयागिर चन्दन लाकर और कर्पूर–केशर के साथ घिसकर उसे जिनमुद्रा के चरणों में विसर्जन करुं, ताकि मेरे सर्व विघ्न विनष्ट हो जायें। कब मैं मोतियों के समान उज्जवल तन्दुलों को लेकर श्रद्धापूर्वक भक्ति भाव से जिनमुद्रा के आगे पुञ्ज देकर स्वर्ग लक्ष्मी का पति बनूं ? कब मैं कमल, कुन्द, चमेली, चम्पा आदि के सुगन्धित पुष्प लाकर निरहंकारी बन विनयभाव के साथ जिनमुद्रा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के चरणों में अर्पण करुं और सदा के लिए सौभाग्यशाली बनू ? कब मैं षट्-रसमयी नाना प्रकार के व्यञ्जन और अमृतपिन्ड को लेकर जिनमुद्रा के आगे अर्पण करुं, जिससे कि मैं भूख के वश में न रहूँ । कब मैं शुद्ध घृत, कपूर या रत्नमय दीपक लाकर जिनमुद्रा के आगे जलाऊ, जिससे कि मेरे मन का सब अंधकार विनष्ट हो और ज्ञान का प्रकाश हो । कब मैं कृष्णागुरु, चन्दन, कर्पूरादिक मयी दशाङ्गी धूप जलाकर जिनमुद्रा के आगे सुवासना करुं और अदृष्टकी छाया को कर्म के प्रभाव को दूर करुं । कब मैं आम, नारंगी, पनस, केला आदि उत्तम फल उदारभाव से जिनमुद्रा के आगे समर्पण करुं, जिससे कि मेरी असफलता का विनाश हो और प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त हो । कब मैं जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प माल, नैवेद्य, दीप, धूप और फल को एकत्रित कर, उनका अर्घ बनाकर जिन मुद्रा के आगे अर्पण कर अनर्घ-पद (मोक्ष) को प्राप्त करुं ? भूरामल कहते हैं कि इस प्रकार श्रीजिननाथ की प्रतिमा के पूजा-विधान से मनुष्य नाना प्रकार की आकुलता-व्याकुलताओं के विनाश को प्राप्त होकर सर्व प्रकार के उत्सव का स्थान बन जाता हैं ॥१-१०॥

तव देवांघ्रिसेवां सदा यामि त्विति कर्तव्यता भव्यताकामी ।स्थायी।
अघहरणी सुखपूरणी वृत्तिस्तव सज्ज्ञान ।
श्रृणु विनतिं मम दुःखिनः श्रीजिनकृपानिधान ॥
कुरु तृप्तिं प्रक्लृप्ति हर स्वामिन् तव देवांघ्रिसेवां सदा यामि ॥१॥

हे देव, मैं सदा ही तुम्हारे चरणों की सेवा करता रहूं और अपने कर्त्तव्य का पालन कर भव्यपना स्वीकार करुं, ऐसा चाहता हूं । हे उत्तम ज्ञान के भण्डार श्रीभगवान, आपकी प्रवृत्ति सहज ही भक्तों के दुःखों को दूर करने वाली और सुख को देने वाली है। इसलिए हे कृपा-निधान श्रीजिनदेव, मुझ दुखिया की भी विनती सुनो और हे स्वामिन् मेरी जन्म-मरण की बाधा को हर कर मुझे भी सुखी करो ॥१॥

अभिलषितं वरमाप्तवान् लोकः किन्न विमान ।
वेलेयं हतभागिनो मम भो गुणसन्धान ॥
किमिदानीं न दानिन् रसं यामि ॥ तव देवांघ्रिसेवां. ॥२॥

हे विमान, मान-मायादि से रहित भगवन्, आपकी सेवा भक्ति करके क्या अनेक लोगों ने अभिलषित वर नहीं पा लिया है ? अर्थात् पाया ही है। अब यह मुझ हतभागी की बारी है, सो हे गुणों के भण्डार, हे महादान के देने वाले, क्या अब मैं अभीष्ट वर को प्राप्त नहीं करुंगा ॥२॥

भुवि देवा बहुशः स्तुता भो सज्जेयोतिर्धाम ।
रविरिव नक्षत्रेषु तु त्वं निष्काम ललाम ॥
न तु इतरस्तरामन्तरा यामि । तव देवांघ्रिसेवां. ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे केवलज्ञान रुप परमज्योति के धाम, मैंने इस भूमण्डल पर अनेक देवों को देखा है और बहुत बार उनकी सेवा-भक्ति और स्तुति भी की है। परन्तु जैसी निस्पृह परोपकार वृत्ति आपकी है, वह उनमें नहीं पाई है। अन्य तारा समान देवों में आप सूर्य-समान महान् तेजस्वी देवाधिदेव हैं और निष्काम होने पर भी संसारी जीवों के अन्तस्तम के अपहरण करने वाले हैं अतः आपके समान अन्य कोई नहीं है ॥३॥

सर्वे ते निजशंसिनः सम्प्रति भान्ति जिनेश ।
स्वावलम्बनं ह्यादिशंस्तवं शान्तये सुवेश ॥
तव शिक्षा समीक्षा-परा नाभिन्। तव देवांघ्रिसेवा. ॥४॥

हे जिनेश, वे सब अन्य देव अपनी अपनी प्रशंसा करने वाले हैं, अतएव मुझे वे उत्तम प्रतीत नहीं होते हैं । किन्तु स्वावलम्बन का उपदेश देने वाले हे सहज जात स्वाभाविक सुन्दर वेश के धारक जिनेन्द्र, आपही शान्ति के देने वाले हो और हे लोकमान्य, आपकी शिक्षा-परीक्षा प्रधान है, आपका उपदेश है कि किसी के कथन को बिना सोचे समझे मत मानो, किन्तु सोच समझकर परीक्षा करके अंगीकार करो ॥४॥

卐 श्यामकल्याणरागः 卐

जिनप परियामो मोदं तव मुखभासा ॥स्थायी॥
खिन्ना यदिव सहजकद्विधिना, निःस्वजनी निधिना सा ॥१॥
सुरसनमशनं लब्ध्वा रुचिरं सुचिरक्षुधितजनाशा ॥२॥
केकिकुलं तु लपत्यतिमधुरं जलदस्तनितसकाशात् ॥३॥
किन्न चकोरदृशोः शान्तिमयी प्रभवति चन्द्रकला सा ॥४॥

हे जिनदेव, आपकी मुख कान्ति के देखने से हम इस प्रकार प्रमोद को प्राप्त होते हैं, जैसे कि जन्म-जात दरिद्रता से पीड़ित निर्धन पुरुष की स्त्री अकस्मात् प्राप्त हुए धन के भण्डार को देखकर प्रसन्न होती है, अथवा जैसे चिरकाल से भूखा मनुष्य अच्छे रसीले सुन्दर भोजन को पाकर प्रसन्न होता है, अथवा जैसे सजल-मेघ गर्जन से मयूरगण हर्षित हो नाचने और मीठी बोली बोलने लगते हैं। जैसे चन्द्र की चन्द्रिका चकोर पक्षी के नेत्रों को शान्ति-दायिनी होती है, उसी प्रकार आपके दर्शनों से हमें भी परम शान्ति प्राप्त हो रही है ॥१-४॥

अयि जिनप, तेच्छविरविकलभावा ॥स्थायी॥
पक्षकक्षमिति, कस्य दहन्ति श्रीवर, न मदनदावा : ॥१॥
कस्य करेऽसिररेरिति सम्प्रति, अमर प्रवर, भिया वा ॥२॥
वाञ्छति वसनं स च पुनरशनं कस्य न धनतृष्णा वा ॥३॥
भूरागस्य न वा रोषस्य न, शान्तिमयी सहजा वा ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे जिनवर, तुम्हारी छवि अविकल (निर्दोष) भावों को धारण करने वाली है। हे श्रीवर, इस संसार में ऐसा कौन प्राणी है, जिसके पक्ष कक्ष को (समीपवर्ती वनखण्ड को) कामरुप दावाग्नि ने भस्म न कर दिया हो ! केवल एक आप ही ऐसे दृष्टिगोचर हो रहे हैं जो कि उससे बचे हैं, या यों कहना चाहिए कि आपने जगत् को भस्म करने वाले उस काम को ही भस्म कर दिया है। हे देव शिरोमणि, हम देख रहे हैं कि शत्रुओं के भय से किसी देव के हाथ में खड्ग है, किसी के हाथ में धनुष बाण और किसी के हाथ में गदा। कोई शीतादि से पीड़ित होकर वस्त्र चाहता है, कोई भूख से पीड़ित होकर भोजन चाहता है और कोई दरिद्रता से पीड़ित होकर धन की तृष्णा में पड़ा हुआ है । किन्तु हे भगवन्, एक आपकी मूर्ति ही ऐसी दिखाई दे रही है, जिसे न किसी का भय है, न भूख है, न शीतादि की पीड़ा है और न धनादिक की तृष्णा ही है। आपकी यह सहज शान्तिमयी वीतराग मुद्रा है, जिसमें न राग का लेश है और न रोष (द्वेष) का ही लेश है। ऐसी यह शान्तमुद्रा मुझे परम शान्ति दे रही है ॥१-४॥

卐 छन्दोऽभिधश्चाल 卐

छविरविकलरुपा षायात् साऽऽर्हतीतिनः स्विदपायात् ॥स्थायी॥
वसनाभरणैरादरणीयाः सन्तु मूर्त्तयः किन्तु न हीयान् ।
तासु गुणः सुगुणायाश्छविरविकलरुपा पायात् ॥१॥

अर्हन्त भगवान की यह निर्दोष मुद्रा पापों से हमारी रक्षा करे । इस भूमण्डल पर जितनी भी देव-मूर्त्तियां दृष्टिगोचर होती है, वे सब वस्त्र और आभूषणों से आभूषित हैं- बनावटी वेष को धारण करती हैं - अतः उनमें सहज स्वाभाविक रुप गुण सौन्दर्य नहीं है, निर्विकारिता नहीं है । वह निर्विकारता और सहज यथा जात रुपता केवल एक अर्हन्त देव की मुद्रा में ही है, अतः वह हम लोगों की रक्षा करे ॥१॥

धरा तु धरणीभूषणताया नैव जात्वपि स दूषणतायाः ।
सहजमञ्जुलप्राया छविरविकलरुपा पायात् ॥२॥

अर्हन्त देव की यह मुद्रा धरणीतल पर आभूषणता की धरा (भूमि) है, इसमें दूषणता का कदाचित भी लेश नही है, यह सहज सुन्दर स्वभाव वाली है और निर्दोष छवि की धारण करने वाली है, वह हम लोगों की रक्षा करे ॥२॥

यत्र वञ्चना भवेद्रमायाः किङ्करिणी सा जगतो माया ।
ऐमि तमां सदुपायान् छविरविकलरुपा पायात् ॥३॥

जिस निर्दोष मुद्रा के अवलोकन करने पर स्वर्ग की लक्ष्मी भी वंचना को प्राप्त होती है अर्थात् ठगाई जाती है और जगत् की सब माया जिसकी किंकरणी (दासी) बन जाती है, मैं ऐसी सर्वोत्तम निर्दोष मुद्रा की शरण को प्राप्त होता हूँ। वह हम लोगों की रक्षा करे ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत्र मनाङ् न कलाऽऽकुलताया विकसति किन्तु कला कुलतायाः ।
भूरानन्दस्याऽऽयाञ्छविरविकलरुपा पायात् ॥४॥

ज़िस मुद्रा के दर्शन कर लेने पर दर्शक के हृदय में आकुलता का तो नाम भी नहीं रहता, प्रत्युत कुलीनता प्रकट होती है। और दर्शक स्वयं अपनी शुभ चेष्टा के द्वारा आनन्द का स्थान बन जाता है, ऐसी यह निर्दोष वीतरागमुद्रा पापों से हमारी रक्षा करे ॥४॥

अभ्यर्च्यार्हन्तमायान्तं विलोक्य कपिलाङ्गना ।
सुदर्शननभूत्कर्तुमसुदर्शनमादरात् ॥१॥

इस प्रकार श्रीअर्हन्तदेव की पूजन करके घर को आते हुए सुदर्शन को देखकर कपिल ब्राह्मण की स्त्री उस पर मोहित हो गई और उसे अपने प्राणों का आधार बनाने के लिए आदर-पूर्वक उद्यत हुई ॥१॥

भरुत्सखममुं मत्वा तस्या मदनवन्मनः ।
नातःस्थातुं शशाकेदं मनागप्युचितस्थले ॥२॥

उस कपिला ब्राह्मणी का मोम- सदृश मृदुल मन अग्नि समान तेजस्वी सुदर्शन को देखकर पिघल गया, अतः वह उचित स्थल पर रहने के लिए जरा भी समर्थ न रहा।

भावार्थ - उसका मन उसके काबू में न रहा ॥२॥

दृष्टवैनमधुनाऽऽदर्श कपिला कपिलक्षणा ।
क्षणेनैवाऽऽत्ससात्कर्तुमितिचापलतामधात् ॥३॥

आदर्श (दर्पण) के समान आदर्श रुप वाले उस सुदर्शन को देखकर कपि (बन्दर) जैसे लक्षण वाली अर्थात् चंचल स्वभाव वाली वह कपिला ब्राह्मणी एक क्षण में ही उसे अपने अधीन करने के लिए चापलता (धनुर्लता) के समान चपलता को धारण करती हुई।

भावार्थ - जैसे कोई मनुष्य किसी को अपने वश में करने के लिए धनुष लेकर उद्यत होता है, उसी प्रकार वह कपिला भी सुदर्शन को अपने वश में करने के लिए उद्यत हुई ॥३॥

मनो मे भुवि हरन्तं विहरन्तममुं सखि ।
बन्धामि भुजपाशेन जपांशेनमिहानय ॥४॥

वह कपिला अपनी दासी से बोली - हे सखि, राजमार्ग पर विहार करने वाले इस पुरुष ने मेरे मन को हर लिया है, अतः जपाकुसुम के समान कान्ति वाले इस धूर्त को यहां पर ला, मैं इसे अपने भुज पाश से बांधूगी ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वीकुर्वन् परिणामेनाऽयमतीव भयाढ्यताम् ।
उच्चैःस्तनाद्रिसंगुप्तो मत्तो भवितुमर्हति ॥५॥

यह अपने अनुपम शारीरिक सौन्दर्य से अतीव भयाढ्यता को स्वीकार कर रहा है, अर्थात् अत्यन्त भय-भीत है; अतएव यह मेरे द्वारा उच्च स्तन रुप पर्वत से संरक्षित होने के योग्य है ॥५॥

भावार्थ - इस श्लोक में 'भयाढ्य' पद दो अर्थवाला है । 'भा' का अर्थ आभा या कान्ति है, उसका तृतीय विभक्ति के एक वचन में 'भया' रुप बनता है, उससे आढ्य अर्थात् युक्त ऐसा एक अर्थ निकलता है और दूसरा भय से आढ्य अर्थात् 'भय-भीत' ऐसा दूसरा अर्थ निकलता है । जो भय से संयुक्त होता है, वह जैसे पर्वत के दुर्गम उच्च स्थलों में संरक्षणीय होता है, वैसे ही यह सुदर्शन भी भयाढ्य (कान्ति युक्ति) है, अंतः मेरे दुर्गम उच्च स्तनों से संरक्षणीय है अर्थात मेरे द्वारा वक्षःस्थल से आलिंगन करने योग्य है.

इत्युक्ताऽथ गता चेटी श्रेष्ठिनः सन्निधिं पुनः ।
छद्मना निजगादेदं वचनं च तदग्रतः ॥६॥

इस प्रकार कपिला के द्वारा कही गई वह दासी सुदर्शन सेठ के पास गई और उनके आगे छल-पूर्वक इस प्रकार बोली ॥६॥

सखी तेऽप्यभवत् पश्य नरोतम गदान्वितः।
केवलं त्वमसि श्रीमान् श्रीविहीनः स साम्प्रतम् ॥७॥

हे पुरुषोत्तम, देखो तुम्हारा सखा गदान्वित होकर श्रीविहीन है और तुम केवल निर्गद होकर इस समय श्रीमान् हो रहे हो ॥७॥

भावार्थ - इस श्लोक में श्लेष-पूर्वक दो अर्थ व्यक्त किये गये हैं. नरोत्तम या पुरुषोत्तम नाम श्रीकृष्ण का है वे श्री (लक्ष्मी) के स्वामी भी हैं और गदा नामक आयुध के धारक भी हैं। इस बात को ध्यान में रखकर वह दासी सुदर्शन से कह रही है कि आप श्रीमान् होते हुए भी गद (रोग) सेयुक्त नहीं है, नीरोग हैं और आपका मित्र श्रीमान् नहीं होते हुए भी गद से युक्त अर्थात् रोगी है । होना तो यह चाहिए कि जो श्रीमान् हो, वही गदान्वित हो, पर यहां तो उलटा ही हो रहा है कि जो श्रीमान् है, वह गदान्वित नहीं है और जो गदान्वित है - वह श्रीमान् नहीं । सो यह पुरुषोत्तम की श्रीमत्ता और गदान्वितता अलग-अलग क्यों दीख रही है। इस प्रकार दासी ने सुदर्शन से व्यंग्य में कहा।

अवागमिष्यमेवं चेदागमिष्यं न कि स्वयम् ।
मया नावगतं भद्रे सुहृद्यापतितं गदम् ॥८॥

दासी की बात सुनकर सुदर्शन बोला - हे भद्रे, मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं कि मेरे मित्र पर रोग ने आक्रमण किया है ? अन्यथा यह क्या संभव था कि मुझे मित्र के रोगी होने का पता लग जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और फिर मैं स्वयं उन्हें देखने के लिए न आता ॥८॥

उक्तवत्येवमेतस्मिन्नन्तरुल्लासशालिनी ।
दधानाऽऽस्ये तु वैलक्ष्यं पुनरप्येवमाह सा ॥९॥

सुदर्शन के इस प्रकार कहने पर अन्तरंग में अत्यन्त उल्लास को प्राप्त हुई भी वह दासी मुख में विरुपता को धारण कर पुनः इस प्रकार कहने लगी ॥९॥

नृराडास्तां विलम्बेन भुवि लम्बेन कर्मणा ।
स्वागच्छ गच्छ प्रसादोपरिसुप्तमवेहि तम् ॥१०॥

हे पुरुषराज, अब अधिक विलम्ब न करें, दुनियादारी के और सब काम छोड़कर पहले अपने मित्र से मिलें। आइये, आपका स्वागत है, ऐसा कह कर वह दासी सुदर्शन को कपिल के घर पर ले गई और बोली - जाइये, जो प्रासाद के ऊपर सो रहे हैं, उन्हें ही अपना मित्र समझिये ॥१०॥

भास्वानासनमापाद्याथोदयाद्रिमिवोन्नतम् ।
तत्र तल्पे नभःकल्पे घनाच्छादनमन्तरा ॥११॥
क्षणादुदीरयन्नेवं करव्यापारमादरात् ।
विषमायां च वेलायां प्रावृषीव चकार सः ॥१२॥ (युग्मम्)

सुदर्शन सेठ ऊपर गया और शय्या के समीप उदयाचल के समान ऊंचे आसन पर सूर्य के समान बैठकर सघन चादर से आच्छादित उस नभस्तल तुल्य शय्यापर आदर-पूर्वक यह कहते हुए अपना कर-व्यापार किया, अर्थात् हाथ बढ़ाया- जैसे कि वर्षा ऋतु की जल बरसती विषम वेला में सूर्य अपने कर-व्यापार को करता है अर्थात् किरणों को फैलता है ॥११-१२॥

भो भो मे मानसस्फीति-करिण्यां दुःसहोऽप्यहो ।
शरदीव तनौ तेऽयं सन्तापः कथमागतः ॥१३॥

हे मित्र, मान-सरोवर आदि जलाशयों के जलों को स्वच्छ बना देने वाली शरद् ऋतु में जैसे दुःसह सन्ताप (घाम) हो जाता है, वैसे ही हे भाई, मेरे मन को प्रसन्न करने वाली तुम्हारी इस कोमल देहलता में यह दुःसहस सन्ताप (ज्वर) कहां से कैसे आ गया ? मुझे इसका बहुत आश्चर्य है ॥१३॥

तदा प्रत्युत्तरं दातुं मृदङ्गवचसः स्थले ।
वीणायाः सरसा वाणी सद्यः प्रादुरभूदियम् ॥१४॥

सुदर्शन के उक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए मृदङ्ग के समान गम्भीर वचनो के स्थान पर वीणा के समान यह सरस वाणी शीघ्र प्रकट हुई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ - मर्दानी बोली के बदले जनानी बोली से उत्तर मिला ॥१४॥

अहो विधायिनः किन्न महोदय करेण ते।
विकासमेति मेऽतीव पद्मिन्याः कुचकोरकः ॥१५॥

अहो महोदय, सूर्य जैसे तेजस्वी और लोकोपकार करने वाले तुम्हारे करके स्पर्श से मुझ कमलिनी का-कुछ-कोरक अतीव विकास को प्राप्त हो रहा है ।

भावार्थ - वैसे तो मैं बहुत सन्तप्त थी, पर अब तुम्हारे हाथ का स्पर्श होने से मेरा वक्षःस्थल शान्ति का अनुभव कर रहा है ॥१५॥

सारोमाञ्चनतस्त्वं भो मारो भवितुमर्हसि ।
जगत्यस्मिन्नहं मान्या लति का तरुणायते ॥१६॥

हे पुरुषोत्तम, आप इस जगत् में सघन छायादार वृक्ष के समान तरुणावस्था को प्राप्त हो रहे हैं और मैं आपके द्वारा सामान्य (स्वीकार करने योग्य) नवीन लता के समान आश्रय पाने के योग्य हूं। हे महाभाग, आपके कर-स्पर्श से रोमाञ्चको प्राप्त हुई मैं रति के तुल्य हूँ। अतः आप सारभूत कामदेव होने के योग्य हैं ॥१६॥

वरं त्वत्तः करं प्राप्याप्यकमस्त्वधुना कुतः ।
कृतज्ञाऽहमतो भूमौ देवरजा नुरस्मि ते ॥१७॥

हे देवराज, तुम्हारे कर रुप वर को पाकर मैं भी कल को अर्थात् शान्ति को प्राप्त हो रही हूं, अब मुझे कष्ट कहां से हो सकता है ? भूमि पर इन्द्रतुल्य हे एश्वर्यशालिन् मैं इस कृपा के लिए आपकी बहुत कृतज्ञ हूँ। (ऐसा कहकर उसने सुदर्शन का हाथ पकड़ लिया) ॥१७॥

इत्येवं वचसा जातस्तमसेवावृतो विधुः ।
वैवर्ण्येनान्विततनुः किञ्चित्कालं सुदर्शनः ॥१८॥

कपिला के मुख से निकले हुए इस प्रकार के वचन सुनकर सुदर्शन कुछ काल के लिए किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया और उसका सारा शरीर विरुपता को प्राप्त हो गया, जैसे कि राहु से ग्रसित चन्द्रमा हतप्रभ हो जाता है ॥१८॥

हे सुबुद्धे न नाऽहं तु करत्राणां विनामवाक् ।
त्वदादेशविधिं कर्तुं कातरोऽस्मीति वस्तुतः ॥१९॥

कुछ देर में स्वस्थ होकर सुदर्शन ने कहा - हे सुबुद्धिशालिनी, मैं पुरुष नहीं हूं, किन्तु पुरुषार्थ-हीन (नपुंसक) हूं । सो स्त्रियों के लिए किसी भी काम का नहीं हूं। इसलिए वास्तव में तुम्हारी आज्ञा का पालन करने में असमर्थ हूं ॥१९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं सुमन्त्रवचसा भुवि भोगवत्या
दर्पोऽपसर्पणमगात्स्विदनन्यगत्या ।
हस्तं वध्मुञ्चदति मन्दतयाऽपि मत्या
यद्वोदयाद्वहु सुदर्शनपुणयतत्याः ॥२०॥

सुदर्शन सेठ के इस प्रकार के सुमंत्र रूप वचन से संसार में विषयरूप विषधर भोगों (सर्पो) को ही भला मानने वाली उस भोगवती कपिलारूपणी सर्पिणी का विषरूप दर्प एक दम दूर हो गया और अन्य कोई उपाय न देखकर मन्दमति ने सुदर्शन का हाथ छोड़ दिया। अथवा यह कहना चाहिए कि सुदर्शन की पुण्य परम्परा के उदय से कपिला ने उसका हाथ छोड़ दिया । (और सुदर्शन तत्काल अपने घर को चला दिया ॥२०॥

श्री मान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
तेन प्रोक्तसुदर्शनोदय इयान् सर्गो गतः पञ्चमो
विप्राण्या कृतवञ्चनाविजयवाक् श्रीश्रेष्ठिनः सत्तमः ॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुजजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए, बालब्रह्मचारी पं. भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर विरचित इस सुदर्शनोदय काव्य में कपिला ब्राह्मणी के द्वारा किये गये छलकपट का वर्णन करने वाला पंचवां सर्ग समाप्त हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ षष्ठः सर्गः

सारङ्गनामरागः

स वसन्त आगतो हे सन्तः, स वसन्तः ॥ स्थायी ।
परपुष्टा विप्रवराः सन्तः सन्ति सपदि सूक्तमुदन्तः ॥१॥
लताजातिरुपयाति प्रसरं कौतुकसान्मधुरवरं तत् ॥२॥
लसति सुमनसामेष समूहः किमुत न सखि विस्फुरदन्तः ॥३॥
भूरानन्दमयीयं सकला प्रचरित शान्तेः प्रभवं तत् ॥४॥

हे सज्जनों, आज वह वसन्त ऋतु आ गई है, जो कि सब जीवों का मन मोहित करती है, इस समय वि अर्थात् विहगों (पक्षियों) में प्रवर (सर्वश्रेष्ठ) पर-पुष्ट (काक से पोषित) कोकिल पक्षी अपनी 'कुहू-कुहू' इस प्रकार की उत्तम बोली को बोलते हुए जैसे सर्व ओर दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उसी प्रकार पर पुष्ट (क्षत्रियादि द्वारा दिये गये दान से पुष्ट होने वाले) विप्र-वर (श्रेष्ठ ब्राह्मण) भी चारों ओर उत्तम वेद-सूक्त गायन करते हुए दिखाई दे रहे हैं। आज कुन्द, चम्पा, चमेली आदि अनेक जाति की लताएँ सुन्दर मधुर पुष्पों को धारण कर सर्व ओर फैलती हुई जैसे वसन्त-उत्सव मना रही हैं, वैसे ही मनुष्यों की अनेक जातियां भी अपनी-अपनी उन्नति के मधुर कौतुक से परिपूर्ण होकर सर्व ओर प्रसार को प्राप्त हो रही हैं। आज जैसे भीतर से विकसित सुमनों (पुष्पों) का समूह चारों ओर दिख रहा है, वैसे ही अन्तरंग में सबका भला चाहने वाले सुमनसों (उत्तम मनवाले पुरुषों) का समुदाय भी सर्व ओर हे मित्र, क्या दिखाई नहीं दे रहा है ? अपितु दिखाई दे ही रहा है। आज शान्ति के देने वाले अहिंसामय धर्म का प्रचार करती हुई यह समस्त वसुधा आनन्दमयी हो रही है ॥१-४॥

स वसन्तः स्वीक्रियतां सन्तः सवसन्तः ॥स्थायी॥
सहजा स्फुरति यतः सुमनस्ता जड़तायाश्च भवत्यन्तः ॥१॥
वसनेभ्यश्च तिलाञ्जलिमुक्त्वाऽऽह्वयति तु दैगम्बर्यन्तत् ॥२॥
सहकारतरोः सहसा गन्धः प्रसरति किन्नहि जगदन्तः ॥३॥
परमारामे पिकरवश्रिया भूरानन्दस्य भवन्तः ॥४॥

हे सज्जनो, इस आये हुए वसन्त का स्वागत करो, जिसमें कि जाड़े के समान जड़ता (मूर्खता) का अन्त हो जाता है और सुमनों (पुष्पों) की सुमनस्ता (विकास-वृत्ति) के समान उत्तम हृदयवाले पुरुषों के सहृदयता सहज में ही प्रकट होती है। इस ऋतु में शीत न रहने से शरीर पर पहिने हुए वस्त्रों को तिलाञ्जलि देकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोग दिगम्बरता का आह्वानन करते हैं। इस समय जैसे सहकार (आम्र) वृक्ष की मञ्जलु मौलि-सुगन्धि सर्व ओर फैल रही है, उसी प्रकार सारे जगत के भीतर सहकारिता (सहयोग) की भावना भी क्या नहीं फैल रही है ? अर्थात् आज सब लोग परस्पर सहयोग करने का विचार करने लगे हैं। आज जैसे उत्तम उद्यानों में कोकिलों की कूक से समस्त भूमण्डल आनन्दमय हो रहा है, उसी प्रकार आप लोग भी इस वसन्त काल में परम आत्माराम की अनुभूति-द्वारा आनन्द के भाजन बनो ॥१-४॥

अहो विद्यालता सज्जनैः सम्मता ॥स्थायी॥
कौतुकपरिपूर्णतया याऽसौ षट्पदमतगुञ्जाभिमता ॥१॥
चतुर्दशात्मतया विस्तरिणी यस्यां मृदुतमपल्लवता ॥२॥
समुदित नेत्रवतीति प्रभवति गुरुपादपसद्भावधृता ॥३॥
भूराख्याता फलवत्ताया विलसति सद्विनयाभिसृता ॥४॥

अहो, यह परम हर्ष की बात है कि विद्वानों ने विद्या को लता के समान स्वीकार किया है। जैसे लता अनेक कौतुकों (पुष्पों) से परिपूर्ण रहती है, उसी प्रकार विद्या भी अनेक प्रकार के कौतूहलों से भरी होती है । जैसे लता षटपदों (भ्रमरों) से गुञ्जायमान रहती है, उसी प्रकार यह विद्या भी षड्दर्शनरूप मत-मतान्तरों से गुञ्जित रहती है। जैसे लता चारों दिशाओं में विस्तार को प्राप्त होती है अर्थात् सर्व ओर फैलती है, उसी प्रकार यह विद्या भी चौदह भेदरूप से विस्तार को प्राप्त है । जैसे लता अत्यन्त मृदुल पल्लवों को धारण करती है, उसी प्रकार यह विद्या भी अत्यन्त कोमल सरस पदों को धारण करती है । जैसे लता एक समूह को प्राप्त नेत्र (जड़) वाली होती है और किसी गुरु (विशाल) पादप (वृक्ष) की सद्भावना को पाकर उससे लिपटी रहती है, उसी प्रकार विद्या भी प्रमुदित नेत्र वाले पुरुषों से ही पढ़ी जाती है और गुरु-चरणों के प्रसाद से प्राप्त होती है । जैसे लता उत्तम फल वाली होती हैं, उसी प्रकार विद्या भी उत्तम मनोवांछित फलों को देती है। तथा जैसे लता उत्तम पक्षियों से सेवित रहती है, उसी प्रकार यह विद्या भी उत्तम विनयशाली शिष्यों से सेवित रहती है ॥१-४॥

श्रुतारामे तु तारा मेऽप्यतिंतरा मेतु सप्रीति ॥स्थायी॥
मृदुलपरिणामभृच्छायस्तरुस्तत्त्वार्थनामा यः।
समन्तादाप्तशाखाय प्रस्तुताऽस्मै सदा स्फीतिः ॥स्थायी॥१॥

ललिततमपल्लवप्राया विचाराधीनसत्काया ।
अतुलकौतुकवती वा या वृततिरकलङ्कसदधीतिः ॥स्थायी ॥२॥

सुमनसामाश्रयातिशयस्तम्बको जैनसेनन यः ।
दिगन्तव्याप्तकीर्तिमयः प्रथितषट्चरणसङ्गीतिः ॥स्थायी॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिवायन इत्यतः ख्याता चरणपानामहो माता ।
समन्ताद्भद्रविख्याता श्रियो भूराप्तपथरीतिः ।।स्थायी।।४।।

उस शास्त्र रुप उद्यान में सदा प्रेम-पूर्वक मेरी दृष्टि संलग्न रहे, जिस उद्यान में तत्त्वार्थ सूत्र जैसे नाम वाले उत्तम वृक्ष विद्यमान हैं, जिसकी मृदुल सुख-कारी छाया है और जिसकी अनेकों शाखाएं चारों ओर फैल रही हैं, उसके अधिगम के लिए मेरा मन सदा उत्सुक रहता है। जिस तत्वार्थ सूत्र पर अत्यन्त ललित पद-वाली श्रीपूज्यपादस्वामि-रचित सर्वार्थसिद्धि करी वृत्ति है और जिसे अत्यन्त मनन-विचार पूर्वक आत्मसात् करके अतुल कौतुक (चमत्कार) वाली महावृत्ति (राजवार्तिक) श्रीअकलङ्कदेव ने रची है जो कि निर्दोष बुद्धिवाले विद्वानों के द्वारा ही अध्ययन करने के योग्य है। जैसे एक महान् वृक्ष अनेकों पुष्पमयी लताओं और पक्षियों से व्याप्त रहता है, उसी प्रकार यह महाशास्त्र भी अनेकों टीकाओं और अध्ययनकर्त्ताओं से व्याप्त रहता है । जिस श्रुतउद्यान में श्रीजिनसेनाचार्य से रचित महापुराण रूप महापादप भी विद्यामान है, जोकि दिगन्त व्याप्त कीर्तिमय है । उत्तम सुमनों के गुच्छों का आश्रयभूत है, विद्वज्जनरूप भ्रमरों से सेवित है और असि, मषि आदि षट् कर्म करने वाले गृहस्थों का जिसमें आचार विचार विस्तार से वर्णित है. उस श्रुतस्कन्धरूप उद्यान में सर्वज्ञ-प्रतिपादित, सर्वकल्याणकारी शिव-मार्ग की समन्तभद्राचार्य प्रणीत सूक्तियां विद्यमान हैं और शिवायन-आचार्य- रचित संयम-धारियों के लिए भगवती माता के समान परम हितकारी भगवती आराधना शिव-मार्ग को दिखा रही है, उस शास्त्र रुप उद्यान में मेरी दृष्टि सदा संलग्न रहे ।।१-४।।

रामाजन इवाऽऽरामः सालसङ्गममादधत्।
प्रीतयेऽभूच्च लोकानां दीर्घनेत्रधृताञ्जनः ।।१।।

उस वसन्त ऋतु में उद्यान स्त्रीजनों के समान लोगों की प्रीति के लिए ही रहा था। जैसे स्त्रियां आलस-युक्त हो मन्द-गमन करती हैं, उसी प्रकार वह उद्यान भी सालजाति के वृक्षों के संगम को धारण कर रहा था। और जैसे स्त्रियां अपने विशाल नयनों में अंजन (काजल) लगाती हैं, उसी प्रकार लम्बी ज़ड़ों वाले अंजन जाति के वृक्षों को वह उद्यान धारण कर रहा था ।।१।।

स्वयं कौतुकितस्वान्तं कान्तमामेनिरेऽङ्गनाः ।
पुन्नागोचितसंस्थानं मदनोदारचेष्विटतम् ।।२।।

उस उद्यान को स्त्रियों ने भी अपने कान्त (पति) के समान समझा। जैसे पति स्वयं कौतुक-युक्त चित्तवाला होता है, वैसे ही वह उद्यान भी नाना प्रकार के कौतुकों (पुष्पों) से व्याप्त था । जैसे पति एक श्रेष्ठ पुरुष के संस्थान (आकार-प्रकार) को धारण करता है, वैसी ही वह उद्यान भी पुन्नाग (नागकेशर) जाति के उत्तम वृक्षों के संस्थान से युक्त था । तथा जैसे पति मदन (काम) की उदार चेष्टाओं को करता है, उसी प्रकार वह उद्यान भी मदन जाति के मैन फल आम आदि जातियों के वृक्षों की उदार चेष्टाओं से संयुक्त था ।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ - इस प्रकार वसन्त ऋतु में नगर के उद्यानों ने स्त्री और पुरुष दोनों को ही आकर्षित किया और सभी नगर-निवसी स्त्री-पुरुष वन-विहार करने के लिए उद्यान में पहुंचे ।

कान्तारसद्विहारेऽस्मिन् समुदीक्ष्य मनोरमाम् ।
स्तनन्धयान्वितामत्र कपिलाऽऽहावनीस्वरीम् ॥३॥

केयं केनान्विताऽनेन मौक्तिकेनेव शुक्तिका ।
जगद्विभूषणेनाऽस्ति स्वरूपात्पूततां गता ॥४॥ (युग्मम्)

उस वन विहार के समय पुत्र के साथ जाती हुई मनोरमा को देखकर कपिला ने राजा धरणी भूषण की रानी अभयमती से पूछा - हे महारानी, अपने सौन्दर्यशाली स्वरूप से पवित्रता को प्राप्त यह स्त्री कौन है और जगत् को विभूषित करने वाले मोती से जैसे सीप शोभित होती है, उसी प्रकार यह किसके जगद्विभूषण पुत्र से संयुक्त होकर शोभित हो रही है ॥३-४॥

अस्ति सुदर्शनतरुणाऽभ्यूढेयं सुखलताऽयमथ च पुनः ।
कौतुकभूमिरमुष्या नयनानन्दाय विलसतु नः ॥५॥

रानीने कहा - दर्शनीय उत्तम वृक्ष से आलिंगित सुन्दर लता के समान यह नवयुवक राज-सेठ सुदर्शन से विवाहित सुखदायिनी सौभायवती मनोरमा सेठानी है और यह कौतुक (हर्ष) का उत्पादक उसका पुत्र हैं जो कि हम लोगों के नयनों के लिए भी आनन्द-दायक हो रहा है ॥५॥

प्रत्युक्तया शनैरास्यं सनैराश्यमुदीरितम् ।
नपुंसकस्वभावस्य स्वभाऽवश्यमियं नु किम् ॥६॥

इस प्रकार रानी के द्वारा कहे जाने पर उस कपिला ने निराशा-पूर्वक धीमे स्वर से कहा - क्या नपुंसक स्वभाव वाले उस सुदर्शन का यह लड़का होना संभव है ॥६॥

निशम्येत्यगदद्राज्ञी सगदेव हि भाषसे ।
समुन्मत्ते किमेतावत् समुन्मान्तेद्दशीहि न ॥७॥

कपिला के ऐसे वचन सुनकर रानी बोली - हे समुन्मत्ते, (पगली) तू रोगिणी-सी यह क्या कह रही है? क्या तेरी द्दष्टि में वह सुदर्शन पुरुष (पुरुषार्थ-युक्त) नहीं हैं ॥७॥

श्रुतमश्रुतपूर्वमिदं तु कुतः कपिले त्वया स वैक्लैव्ययुतः ।
पुरुषोत्तमस्य हि न मानवता केनानुनीयतां मानवता ॥८॥

हे कपिले, वह सुदर्शन सेठ नपुँसक है, यह अश्रुतपूर्व बात तूने कहां से सुनी ? उन जैसे उत्तम पुरुष के पौरुषता कौन मनस्वी पूरुष नहीं मानेगा? अर्थात् कोई भी उन्हें नपूँसक नहीं मान सकता ॥८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यतः प्रत्युवाचापि विप्राणी प्राणितार्थिनी ।
भवत्यस्ति महाराज्ञी यत्किञ्चिद्वक्तुमर्हति ॥९॥

हेऽवनीश्वरि सम्वच्मि सम्वच्मीति न नेति सः ।
सम्प्रार्थितः स्वयं प्राह मयैकाकी किलैकदा ॥१०॥ (युग्मम्)

यह सुनकर वह कपिला ब्राह्मणी बोली – आप महारानी हैं, अतः आप जो कुछ भी कह सकती हैं। किन्तु मैं भी तो विचार-शीला हूँ। हे पृथ्वीश्वरि, मैं जो कह रही हूँ, वह एक दम सत्य है। मैंने एक बार एकान्त में उससे अकेले ही काम सेवन की प्रार्थना की थी, तब उसने स्वयं ही कहा था कि मैं 'पुरुष' नहीं हूं। अर्थात् नपुंसक हूं, अतः तेरी प्रार्थना स्वीकार करने में असमर्थ हूं ॥९-१०॥

राज्ञी प्राह किलाभागिन्यसि त्वं तु नगेष्वसौ ।
पुन्नाग एव भो मुग्धे दुग्धेषु भुवि गव्यवत् ॥११॥

कपिला की बात सुनकर रानी बोली, कपिले, तू तो अभागिनी है। अरे वह सुदर्शन तो सब पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुष है, जैसे कि सब वृक्षों में पुन्नाग का वृक्ष सर्व श्रेष्ठ होता है और दुग्धों में गाय का दूध सर्वोत्तम होता है ॥११॥

अहो सुशाखिना तेन कापि मञ्जुलताऽञ्चिता।
भुवि वर्णाधिकत्वेन कपिले त्वञ्च वञ्चिता ॥१२॥

अरी कपिले, उस उत्तम भुजाओं के धारक सुदर्शन ने उच्च वर्ण की होने से तुझे ठग लिया है, जैसे कि उत्तम शाखाओं वाला कोई सुन्दर वृक्ष किसी सुन्दर लता को ढ़क लेता है ॥१२॥

असा हसेन तत्रापि साहसेन तदाऽवदत् ।
विप्राणी प्राणितास्त्वा को न मुह्यति भूतले ॥१३॥

रानी की बात सुनकर लज्जित हुई भी वह ब्राह्मणी फिर भी साहस करके धृष्टतापूर्वक बोली – इसमें क्या बात है? संसार में ऐसा कौन है जो कि भूलता न हो ॥१३॥

आस्तां मद्विषये देवि श्रीमतीति भवत्यपि।
सुदर्शनभुजाश्लिष्टा यदा किल धरातले ॥१४॥

किन्तु देवी जी, मेरे विषय मैं तो रहने देंवे, आप तो श्रीमती हैं, आपका श्रीमतीपना भी मैं तभी सार्थक समझूँगी, जबकि आप भूतल पर अपने सौन्दर्य में प्रसिद्ध इस सुदर्शन की भुजाओं से आलिंगित हो सकें ॥१४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मधुरेण समं तेन सङ्गमात्कौतुकं न चेत् ।
युवत्या यौवनारामः फलवत्तां कुतो व्रजेत् ॥१५॥

वसन्त के समान मधुर उस महाभाग के साथ संगम से जिसे आनन्द प्राप्त न हो, उस युवती स्त्री का यौवनरुप उद्यान सफलता को कैसे प्राप्त कर सकता है? अर्थात् जैसे वसन्त के समागम बिना बाग बगीचे फल-फूल नहीं सकते, उसी प्रकार सुदर्शन के समागम के बिना नवयुवती का यौवन भी सफल नहीं समझना चाहिए ॥१५॥

एवं रसनया राज्याश्चित्ते रसनयात्तया ।
सुदर्शनान्वयायाङ्का स्थापिता कपिलाख्यया ॥१६॥

इस प्रकार की रस भरी वाणी से उस कपिला ब्राह्मणी ने रानी के चित्त में सुदर्शन के साथ समागम करने की इच्छा अच्छी तरह से अंकित कर दी ॥१६॥

विश्वं सुदर्शनमयं विबभूव तस्या
रुच्या न जातु तमृते सकला समस्या ।
सत्पुष्पतल्पमपि वह्निकणोपजल्पं
यन्मोदकञ्ज भुवि सोदकमुग्रकल्पम् ॥१७॥

इसके पश्चात् उस रानी को यह सारा विश्व ही सुदर्शन मय दिखाई देने लगा, उसके बिना अब कोई भी वस्तु उसे रूचिकर नहीं लगती थी, उत्तम उत्तम कोमल पुष्पों से सजी सेज भी उसे अग्निकणों से व्याप्त सी प्रतीत होती थी और मिष्ट मोदक तथा शीतल जल भी विष के समान लगने लगे ॥१७॥

निर्वारिमीनमितमिङ्गितमभ्युपेता प्रालेयकल्पधृतवीरुधिवाल्पचेताः ।
चन्द्रं विनेव भुवि कैरविणी तथेतः पृष्ठा समाह निजचेटिकयेत्थमेतत् ॥१८॥

जल के बिना तड़फड़ाती हुई मछली के समान व्याकुलित चित्तवाली, तुषार-पात से मुरझायी हुई लता के समान अवसन्न (शून्य) देहवाली और चन्द्रमा के बिना कमोदिनी के समान म्लान मुखवाली रानी को देखकर उसकी दासी ने रानी से पूछा -स्वामिनी जी, क्या कष्ट है? रानी बोली....॥१८॥

उद्यानयानजं वृत्तं किन्न स्मरसि पण्डिते ।
अहन्तु सस्मरा तस्मिन् विषये स्फीतिमण्डिते ॥१९॥

हे पण्डिते, वन-विहार को जाते समय कपिला के साथ जो बात चीत हुई थी, वह तुझे क्या याद नहीं है? मैं तो उसी आनन्द-मण्डित रोचक विषय को तभी से याद कर रही हूं, अर्थात् सुदर्शन के स्मरण से मैं कामार्त हो रही हूं ॥१९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पण्डिताऽऽह किलेनस्य प्रियाऽसि त्वं प्रतापिनः ।
कुतः श्वेतांशुकायाऽपि भूयाः देवि कुमुद्वती ॥२०॥

रानी की बात सुनकर वह चतुर दासी बोली–हे देवि, तुम सूर्य जैसे प्रतापशाली राजा की कमलिनी जैसी प्रिया होकर के भी श्वेत-किरण वाले चन्द्रमा के समान श्वेत वस्त्रधारी उस सुदर्शन की कमोदिनी बनना चाहती हो? अर्थात् यह कार्य तुम्हारे लिए उसी तरह अयोग्य है, जैसे कि कमलिनी का कमोदिनी बनना। तुम राजरानी होकर वणिक्-पत्नी बनना चाहती हो, यह बहुत अनुचित बात है ॥२०॥

मनोरमाधिपत्वेन ख्याताय तरुणाय ते।
मनोऽरमाधिपत्वेन ख्याताय तरुणायते ॥२१॥

रानी जी, मनोरमा के पति रूप से प्रसिद्ध उस तरुण सुदर्शन के लिए तुम्हारा मन इतना व्यग्र हो रहा है और उस अकिञ्चित्कर को लक्ष्मी का अधिपति बनाने के लिए तरुणाई (जवानी) धारण कर रहा है, सो यह सर्वथा अयोग्य है ॥२१॥

सोमे सुदर्शने काऽऽस्था समुदासीनतामये।
अमाभिधानेऽन्यत्राहो समुदासीनतामये ॥२२॥

यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि वह सौम्य है, सुदर्शन (देखने में सुन्दर) है, किन्तु जब अपनी स्त्री के सिवाय अन्य सब स्त्रियों में उदासीनतामय है, उन्हें देखना भी नहीं चाहता, जैसे कि चन्द्रमा अमावस्या की रात्रि को ओर तब ऐसे उदासीनतामयी व्यक्ति की ओर हे रानी जी, हमारा भी क्यों ध्यान जाना चाहिये ? ॥२२॥

विरम विरम भो स्वामिनि त्वं महितापि जनेन ।
किमिति गदसि लज्जाऽऽस्पदं किं ग्लपिताऽसि मदेन ॥२३॥

इसलिए हे स्वामिनि, ऐसे घृणित विचार को छोड़ो, छोड़ो। आप जैसी महामान्य महारानी के मुख द्वारा ऐसी लज्जास्पद बात कैसे कही जा रही है? क्या आप मदिरा पान से बेहोश हो रही हैं? ॥२३॥

निजपतिरस्तु तरां सति ! रम्यः कुलबालानां किन्तु परेण ।स्थायी॥
सकलङ्कः पृषदङ्कः स क्षयसहितः सहजेन ।
कुमुद्वती सा मुद्वती भो प्रभवति न बिना तेन ।स्था.१॥

स न दृश्यः सन्तापकृद् भो द्वादशात्मकत्वेन ।
कथितः पति विदुषां पुनः खलु विकसति नलिनी तेन ।स्था.२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वनविचरणतो दुःखिनी किल सीता सती नु तेन ।
किं पतिता व्रततो धृताऽपि तु लङ्कापतिना तेन ।।स्थायी ।।३।।

यातु सा तु सञ्जीविता भुवि सत्या अलमपरेण ।
भूरागस्य परेण सह सा स्वप्नेऽप्यस्तु न तेन ।।स्थायी ।।४।।

हे सति, कुलीन नारियों के तो निज पति ही सर्वस्व होता है, उन्हें पर पुरुष से क्या प्रयोजन है? देखो- यह चन्द्रमा कलङ्क सहित है, शशक को अपनी गोद में बैठाये हुए है और स्वभाव से ही क्षय रोग-युक्त है, तो भी यह कमोदिनी उसे ही देखकर प्रमोद पाती है और उसके बिना प्रमोद नहीं पाती, प्रत्युत म्लान-मुखी बनी रहती है । और देखो-यह सूर्य, जिसे कोई देख नहीं सकता, सबको संतापित करता है और जिसे विद्वानों ने द्वादशात्मक रुप से वर्णन किया है अर्थात् जो बारह प्रकार के रूपों को धारण करता है, कभी एक रूप नहीं रहता । फिर भी कमलिनी उससे ही विकसित होती है, अर्थात् सूर्य से ही प्रसन्न रहती है। और देखो- वह सीता सती वन में राम के साथ विचरने से दुःखिनी थी, फिर भी क्या लंकापति रावण के द्वारा हरी जाने और नाना प्रकार के प्रलोभन दिये जाने पर भी अपने पातिव्रत्य धर्म से पतित हुई ? सती शीलवती स्त्री का जीवन जाय तो जाय पर वह अपने पातिव्रत्य-धर्म से पतित नहीं होती है। इसलिए अधिक कहने से क्या, पतिव्रता स्त्री को तो स्वप्न में भी पर पुरुष के साथ अनुराग नहीं करना चाहिए ।।१-४।।

एवं प्रस्फुटमुक्ताऽपि गुणयुक्ता वचस्ततिः ।
हृदये न पदं लेभे राज्ञ्याः सेत्यवदत्पुनः ।।२४।।

इस प्रकार दासी के द्वारा स्पष्ट रूप से कही गई गुण युक्त वचनों की मुक्तामाला ने भी उस रानी के हृदय में स्थान नहीं पाया और कामान्ध हुई उसने पुनः कहना प्रारम्भ किया ।।२४।।

प्रभवति कथा परेण पथा रे युवते रते मयाऽधीतारे ।।स्थायी।।
पतिरिति परदेशं यदि याति, पतितत्वादियुतो वा भाति,
कुसुमं सम्प्रति महिला लाति साञ्चेत् कमपि स्मृतिकथना रे ।।१।।

बाला द्रुपदभूपतेर्यापि, गदिता पञ्चभर्तृका सापि,
पातिव्रत्यं किन्न तयापि, किल सत्यापि पुरातनकाले ।।२।।

जनकसुतादिकवृत्तवचस्तु जनरञ्जनकृत्केवलमस्तु;
न तु पुनरेकान्ततया वस्तुमेणाक्षीणां मनस्युदारे ।।३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूराज्ञः किमभूदेकस्य, यद्वा सा प्रवरस्य नरस्य ।
तद्वन्महिलामपि सम्पश्य, यत्नः कर्तव्योऽस्त्यधिकारे ॥४॥

अरी पण्डिते, तूने मनुस्मृति को नहीं पढ़ा है? उसमें कहा है - "यदि पति परदेश गया हो, अथवा जाति-पतित हो, या नपुंसकत्व आदि शारीरिक दोष से युक्त हो और स्त्री मासिक धर्म को धारण कर रही हो (ऋतुमती हो) और उसका पति समय पर उपस्थित न हो, तो वह अपनी इच्छानुसार किसी भी पुरुष को स्वीकार कर सकती है।" इस प्रकार स्मृति शास्त्र में युवती को रति के विषय में और ही मार्गवाली कथा मैंने पढ़ी है और सुन, पूर्वकाल में द्रुपद राजा की बाला द्रौपदी पंच भर्तारवाली (महाभारत में) कही गई है, फिर भी क्या वह सती नहीं थी और क्या उसने पातिव्रत्यपद नहीं पाया? हां जनक-सुता सीता आदि का वृतान्त तो आदर्श होते हुए भी केवल जन-मन-रंजन करने वाला है, किन्तु वह एकान्त रुप से मृगनयनी स्त्रियों के उदार मन में स्थान पाने के योग्य नहीं है। अरी पण्डिते, यह पृथ्वी भी तो एक स्त्री ही है, वह क्या कभी एक ही पुरुष की बनकर रही है? वह भी प्रबल शक्तिशाली पुरुष की ही भोग्या बनकर रहती है। इसी प्रकार स्त्री को भी देख, अर्थात् उसे भी किसी एक की ही बनकर नहीं रहना चाहिए, किन्तु सदा बलवान् पुरुष की भोग्या बनना चाहिए। इसलिए अब अधिक देर मत कर और अपने अधिकृत कार्य में प्रयत्न कर ॥१-४॥

कटु मत्वेत्युदवमत्सा रुग्णाऽतोऽमृतं च तत् ।
पथ्यं पुनरिदं दातुं प्रचक्रामाऽनुचारिणी ॥२५॥

काम-रोग से ग्रसित उस रानी ने दासी के द्वारा कहे गये वचन रूप अमृत को भी कटुक विष मानकर उगल दिया। फिर भी आज्ञाकारिणी उस दासी ने यह आगे कहा जाने वाला सुभाषितरूप पथ्य प्रदान करने के लिए प्रयत्न किया ॥२५॥

卐 दैशिकसौराष्ट्रीयो रागः 卐

न हि परतल्पमेति स ना तु ॥ स्थायी ॥
किन्नु भूरागस्य भूयाद् बुधो विपदे जातु,
क्षणिकनर्मणि निजयशोमणिमसुलभं च जहातु ।
न हि परतल्पमेति स ना तु ॥१॥

भोजने भुक्तोज्झिते भुवि भो जनेश्वरि,
भातु, रुक्करोऽपि स कुक्करो न हि परो ह्यशमपि यातु।
न हि परतल्पमेति स ना तु ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छन्नमित्यविपन्नसमया खलु कुकर्मकथा तु,
पायुवायुरिवायुरात्वा प्रसरमाशु च लातु । न हि परतल्पमेति स ना तु ॥३॥

मोदकं सगरोदकं सखि कोऽत्र निजमत्याऽत्तु,
दण्डभूराजादिकेभ्यो द्रुतमुत प्रतिभातु। न हि परतल्पमेति स ना तु ॥४॥

रानी का आदेश सुनकर वह दासी फिर भी बोली - महारानी जी, वह महापुरुष भूल करके भी पर स्त्री के पास नहीं जाता है । वह विद्वान ऐसा अनुचित राग करके विपत्ति में क्यों पड़ेगा और क्यों अति दुर्लभता से प्राप्त अपने यशरुप मणि को इस क्षणिक विनोद में खोएगा? हे जनेश्वरि, इस भूतल पर खाकर दूसरे के द्वारा छोड़े हुए जूठे भोजन को खाने के लिए कोई कुत्ता भले ही रुचि करे, किन्तु कोई भला मनुष्य तो उसकी ओर अपनी दृष्टि भी नहीं डालता है। वैसे ही पर-भुक्त कलत्र की ओर वह महापुरूष भी दृष्टि-पात नहीं करता है। कुकर्मी लोग विपत्ति के भय से कुकर्म को अति सावधानी के साथ गुप्त रुप से करते है, कि वह प्रकट न हो जाय। किन्तु वह कुकर्म तो समय पाकर अपानवायु के समान शीघ्र ही प्रसार को प्राप्त हो जाता है। इसलिए वह पुरुषोत्तम पर-नारी के पास भूल करके भी नहीं जाता है। हे सखि, इस संसार में विष सहित जल से बने मोदक को कौन ऐसा पुरुष है, जो जान-बूझकर खा लेवे । पर-दारा-सेवन से मनुष्य यहीं पर राजादि से शीघ्र दण्ड का पात्र होता है, फिर वह समझदार होकर कैसे राज-रानी के पास आयेगा ? अर्थात् कभी नहीं आयेगा। इसलिए महारानीजी, अपना यह दुर्विचार छोड़ो ॥१-४॥

उचितामुक्तिमप्याप्त्वा पण्डिताया नृपाङ्गना ।
तामाह पुनरप्येवं कामातुरतयार्थिनी ॥२६॥

उस विदुषी दासी की ऐसी उचित बात को सुनकर भी रानीं को प्रबोध प्राप्त नहीं हुआ और अत्यन्त कामान्ध होकर काम-प्रार्थना करती हुई वह राज-रानी फिर भी उससे बोली ॥२६॥

पण्डिते किं गदस्येवं गदस्येव समीक्षणात् ।
त्वदुक्तस्य भयोऽस्माकं प्रेत्युतोदेति चेतसि ॥२७॥

हे पण्डिते, तू ऐसी अनर्गल बात क्यों कहती है ? मैं तो पहले से ही काम-रोग से पीड़ित हो रही हूं और तेरे कहने से तो मेरे मन में और भी दुःख बढ़ता है, जैसे कि किसी रोग से पीड़ित मनुष्य का दुःख नये रोग के हो जाने से और भी अधिक बढ़ जाता है ॥२७॥

कौमुदं तु परं तस्मिन् कलावति कलावति ।
सति पश्यामि पश्यामी दुःखतो यान्ति मे क्षणाः ॥२८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाना कलाओं को धारण करने वाली हे कलावति, जैसे कलावान् चन्द्रमा को देखकर ही कुमुद प्रमोद को प्राप्त होता है, उसी प्रकार मैं भी उस कलावान् सुदर्शन को देखकर ही प्रमोद को प्राप्त कर सकती हूं, अन्यथा नहीं। तू देख तो सही, मेरे ये एक-एक क्षण कितने दुःख से व्यतीत हो रहे हैं ॥२८॥

सा सुतरां सखि पश्य सिद्धिरनेकान्तस्य ॥स्थायी॥
वेश्याया बालक बालिकयोस्तनुजो वेश्यावश्यः ।
तत्र भाति पितुरेव पुत्रता स्पष्टतया मनुजस्य ॥
तत्त्वतः कः किं कस्य, सिद्धिरनेकान्तस्य ॥१॥

यः क्रीणाति समर्घमितीदं विक्रीणीतेऽवश्यम् ।
विपणौ सोऽपि महर्घं पश्यन् कार्यमिदं निगमस्य ॥
सङ्गतिश्चेद ग्राहकस्य, सुतरां सखि पश्य सिद्धिरनेकान्तस्य ॥२॥

ज्वरिणः पयसि दधिनि अतिसरतो द्वयतोऽपि क्षुधितस्य ।
रुचिरुचिता प्रभवति न भवति सा क्वचिदपि उपोषितस्य ॥
कथञ्चित् सद्विषयस्य, सुतरां सखि पश्य सिद्धिरनेकान्तस्य ॥३॥

एवमनन्तधर्मता विलसति सर्वतोऽपि तत्त्वस्य ।
भूरास्तां खलतायास्तस्मादभिमतिरेकान्तस्य ॥
प्रसिद्धा न तु विबुधस्य सिद्धिरनेकान्तस्य ॥४॥

हे सखि, देख, अनेक धर्मात्मक वस्तु की सिद्धि स्वयं सिद्ध है। अर्थात् कोई भी कथन सर्वथा एकान्त रूप सत्य नहीं है। प्रत्येक उत्सर्ग मार्ग के साथ अपवाद मार्ग का भी विधान पाया जाता है। इसलिए दोनों मार्गों से ही अनेकान्त रूप तत्त्व की सिद्धि होती है। देख - एक वेश्या से उत्पन्न हुए पुत्र-पुत्री कालान्तर में स्त्री-पुरुष बन गये । पुनः उनसे उत्पन्न हुआ पुत्र उसी वेश्या के वश में हो गया अर्थात् अपने बाप की मांसे रमने लगा। इस अठारह नाते की कथा में पिता के ही पुत्रपना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। फिर किस मनुष्य का किसके साथ तत्त्व रूप से सच्चा सम्बन्ध माना जाय ! इसलिए मैं कहती हूं कि अनेकान्त की सिद्धि अपने आप प्रकट है। बाजार में जब वस्तु सस्ती मिलती है, व्यापारी उसे खरीद लेता है, और जब वह मंहगी हो जाती है, तब ग्राहक के मिलने पर उसे अवश्य बेच देता है, यही व्यापारी का कार्य है । इसलिए एक नियम पर बैठकर नहीं रहा जाता। सखि, अनेकान्त की सिद्धि तो सुतरां सिद्ध है। और देख - जीर्ण ज्वरवाले पुरुष की दूध में अतिसार वाले पुरुष की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दही में और रोग-रहित भूखे मनुष्य की दोनों में रुचि का होना उचित ही है। किन्तु उपवास करने वाले पुरुष की उन दोनों में से किसी पर भी रुचि उचित नहीं मानी जा सकती । इसलिए मैं कहती हूं कि सखि, एकान्त से वस्तुतत्त्व की सिद्धि नहीं होती, किन्तु अनेकान्त से ही होती है। इस प्रकार प्रत्येक तत्त्व की अनन्तधर्मता प्रमाण से भली भांति सिद्ध होकर विलसित हो रही है । इसलिए एकान्त को मानना तो मूर्खता का स्थान है। विद्वज्जन को ऐसी एकान्त वादिता स्वीकार करने के योग्य नहीं है। किन्तु अनेकान्तवादिता को ही स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि अनेकान्तवाद की सिद्धि प्रमाण से प्रसिद्ध है ॥१-४॥

स्वामिन आज्ञाऽभ्युद्धृतये तु सेवकस्य चेष्टा सुखहेतुः ।
फलवत्तां तु विधिर्विदधातु इत्यचिन्तयच्चोटी सा तु ॥२९॥

रानी की ऐसी तर्क-पूर्ण बातों को सुनकर उस दासी ने विचार किया कि स्वामी की आज्ञा को स्वीकार करना ही सेवक की भलाई के लिए होता है। उसका करना ही उसे सुख का कारण है। उसकी भली-बुरी आज्ञा का फल तो उसे दैव ही देगा । मुझे उसकी चिन्ता क्यों करनी चाहिए। इस प्रकार उस दासी ने अपने मन में विचार किया ॥२९॥

किन्नु परोपरोधकरणेन कर्त्तव्याऽध्वनि किमु न सरामि ।।स्थायी।।
शशकृतसिंहाकर्षणविषयेऽप्यत्र किलोपदेशकरणेन ।
गुरुतरकार्येऽहं विचरामि, कर्तव्याध्वनि किमु न सरामि ॥१॥

दासस्यास्ति सदाज्ञस्यासौ स्वामिजनान्वितिरिति चरणेन ।
तद्वाञ्छापूर्तिं वितरामि, कर्तव्याध्वनि किमु न सरामि॥२॥

पुत्तलमुत्तलमित्यथ कृत्वा द्वाःस्थजनस्याप्यपहरणेन ।
कृच्छ्रकार्यजलधेर्नु तरामि, कर्तव्याध्वनि किमु न सरामि ॥३॥

शवभूरात्मवता वितता स्यात् षर्वणि मूर्मियोगधरणेन ।
तमितिद्रुतमेवाऽऽनेष्यामि, कर्तव्याध्वनि किमु न सरामि ॥४॥

मुझे दूसरे को रोकने से क्या प्रयोजन है? मैं अपने कर्तव्य के मार्ग पर क्यों न चलूं, ये रानी हैं और मैं नौकरानी हूं, मेरा उनको उपदेश देना या समझाना ऐसा ही है, जैसे कि कोई शशक (खरगोश) किसी सिंह को खींचकर ले जाने का विचार करे। इसलिए मुझे तो अपने गुरुतर कार्य में ही विचरण करना चाहिए, अर्थात् स्वामी की आज्ञा का पालन करना चाहिए । स्वामी लोगों की आज्ञा के अनुसार चलना ही सेवक का कर्त्तव्य है, इसलिए अब मैं उनकी इच्छा पूरी करने का प्रयत्न करती हूं। यद्यपि यह कार्य समुद्र को पार करने के समान अति कठिन है, क्योंकि राज द्वार पर सशस्त्र द्वारपाल खडे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहते हैं । किन्तु मिट्टी का बना पुतला बताकर और द्वार पर स्थित जनों को ठगकर सुदर्शन के अपहरण से मैं इस कार्य को सिद्ध कर सकती हूं। इसलिए अब मुझे अपने कर्त्तव्य मार्ग में ही लग जाना चाहिए। अष्टमी-चतुर्दशी पर्व के दिन सुदर्शन सेठ नग्न होकर श्मसान भूमि में प्रतिमा योग धारण कर आत्मध्यान में निमग्न रहते हैं, वहां से मैं उन्हें सहज में ही शीघ्र ले आऊंगी। ऐसा विचार कर वह पण्डिता दासी अपने कर्त्तव्य को सिद्ध करने के लिए उद्यत हो गई ॥१-४॥

श्रीमान् श्रेष्टिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च य्र धीचयम् ।
तेन प्रोक्तसुदर्शनस्य चरितेऽसौ श्रीमतां सम्मतः ।
राज्ञीचेतसि मन्मथप्रकथकः षष्टोऽपि सर्गो गतः ॥

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुजजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए, वाणीभुषण, बालब्रह्मचारी पं. भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर-विरचित-इस सुदर्शनोदय काव्य में रानी अभयमती के चित्त में कामविकार जनित दशा का वर्णन करने वाला छठा सर्ग समाप्त हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ सप्तमः सर्गः

वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य निर्माप्य पुत्तलं निशि पण्डिता ।
अन्तःपुरप्रवेशायोद्यताऽभूत्स्वार्थसिद्धये ॥१॥

अब उस पण्डिता दासी ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए मिट्टी का एक मनुष्याकार वाला पुतला बनवाया और उसे वस्त्र से अच्छी तरह ढक कर रात में उसको अपनी पीठ पर लादकर अन्तःपुर में प्रवेश करने के लिए उद्यत हुई ॥१॥

प्रार्थयन्तीं प्रवेशाय प्रतीहारो जगाद ताम् ।
निषेधयन् स निम्नोक्तं स्वकर्तव्यपरायणः ॥२॥

अन्तःपुर में जाने की आज्ञा देने के लिए प्रार्थना करने वाली उस दासी से अपने कर्त्तव्य-पालन में तत्पर द्वारपाल ने निषेध करते हुए इस प्रकार कहा ॥२॥

किं प्रजल्पसि भो भद्रे द्वाःस्थोऽहं यत्र तत्र तु।
प्रवेष्टुं नैव शक्नोति चटिका त्वन्तु चेटिका ॥३॥

हे भद्रे, तू क्या कह रही है? जहां पर मैं द्वारपाल हूं, वहां पर भीतर जाने के लिए चिड़िया भी समर्थ नहीं है, फिर तू तो चेटी (दासी) है ॥३॥

उपतिष्ठामि द्वारि पश्य, अहो किमु नास्ति दया तव शस्य ।।स्था.।।
पुत्तलकेन ममात्मनो हा हतिर्विरूपपरस्य ।
अनुभूता शतशो मयाऽहो दशा परिभ्रमणस्य ।।अहो किमु.१।।

अभयमती सा श्रीमती हा सङ्कटमिता नमस्य ।
पारणमस्याः किं भवेत्तामाराधनामुदस्य ।।अहो किमु. ।।२।।

उपदेशविधानं यतोऽदः प्रतीक्षते गुणशस्य ।
राज्ञीहाऽहं द्वारि खलु तामीहे गामधिपस्य ।।अहो किमु. ।।३।।

भूरास्तामिह जातुचिदहो सुन्दल न विलम्बस्य ।
आदेशं कुरुतान्महन् भो सुखप्रवेशनकस्य ।।अहो किमु. ।।४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारपाल की बात सुनकर उस दासी ने फिर कहना प्रारम्भ किया- हे प्रंशसनीय द्वारपाल, मैं द्वार पर कबसे खड़ी हुई हूं । बहुत दूर से लाये हुए इस पुतले के भार से मेरी आत्मा का बुरा हाल हो रहा हैं, मैं बोझ से मरी जा रही हूं, तब भी हे भले मानुष, तुझे क्या दया नहीं आ रही है? अरे द्वारपाल, इस पुतले के पीछे घूमते-घूमते मैंने सैंकड़ों कष्टमयी दशाएं भोगी है, सो अब दया कर और मुझे भीतर जाने दे। हे आदरणीय द्वारपाल, देख-आज महारानी का उपवास है, वे इस पुतले की पूजा-आराधना किये बिना पारणा कैसे कर सकेंगी? और जब वे पारणा नहीं कर सकेंगी, तो फिर श्रीमती अभयमती रानी जी महान् संकट को प्राप्त होगी। इसका मुझे महा दुःख है, सो मुझे भीतर जाने दे। रानीजी व्रत-दाता के उपदेशानुसार इस पुतले की पूजा करने के लिए उधर प्रतीक्षा कर रही हैं और इधर मैं द्वार पर खड़ी हुई द्वार के स्वामी से आज्ञा मांग रही हूं। आप जाने नहीं देते। सो हे प्रशंसनीय गुणवाले द्वारपाल, तू ही बता, अब क्या किया जाय? हे सुन्दर द्वारपाल, अब अधिक विलम्ब मत कर, और हे महानुभाव, मुझे सुख से अन्त पुर में जाने के लिए आज्ञा दे ॥१-४॥

साहसेन सहसा प्रविशन्त्यास्तत्तनोर्नियमनान्निपतन्त्याः ।
पुत्तलं स्फुटितभावमवापाऽतो ददाविति तु सा बहुशापान् ॥४॥

इस प्रकार बहुत प्रार्थना करने पर भी जब द्वारपाल ने उसे भीतर नहीं जाने दिया, तब वह दासी साहसपूर्वक भीतर प्रवेश करने लगी। द्वारपाल ने उसे रोका। रोकने पर भी जब वह नहीं रुकी, तो उसने दासी को धक्का देकर बाहिर की ओर ज्यों ही किया, त्यों ही दासी की पीठ पर से पुतला पृथ्वी पर गिर कर फूट गया। दासी फूट-फूटकर रोने लगी और द्वारपाल को नाना प्रकार की शापें देने लगी ॥४॥

अरे राम रेऽहं हता निर्निमित्तं हता चापि राज्ञीह तावत्क्वचित्तम् ।
न्धियेयं मया किं विधेयं करोतूत सा साम्प्रतं चाखवे यद्वदौतुः ॥५॥

अरे राम रे, मैं तो बिना कारण मारी गई, और महारानी जी भी अब बिना पारणा के मरेंगी? अब मैं क्या करुं, मन में कैसे धीरज धरूं? अब तो महारानी जी मुझ पर ऐसे टूट कर गिरेंगी, जैसे भूखी बिल्ली चूहे पर टूट कर गिरती है ॥५॥

कुतः स्यात्पारणा तस्याः पुत्तलव्रतसंयुजः ।
शङ्कूयन्ते किलास्माकं चित्ते तावदमू रुजः ॥६॥

'पुत्तल व्रत को धारण करने वाली महारानी जी की पारणा पुतले के बिना कैसे होगी? यह बात मेरे चित्त में शूल की भांति चुभ रही है। मुझे जरा भी चैन नहीं है, हाय मैं क्या करुं ॥६॥

सोऽप्येवं वचनेन कम्पमुपयन् प्राहेति हे पण्डिते;
क्षन्तव्योऽस्मि तवोचितोचितविधौ सद्भावनामण्डिते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्यत्वाज्ञतयैव विघ्नकरणो जातोऽन्यदा सम्वदा
म्येताद्दक्करणैर्घृणैकविषयो नाहं भवेयं कदा ॥७॥

दासी के इस प्रकार विलापमय वचन सुनकर भय से कांपता हुआ द्वारापाल बोला - हे पण्डिते, हे सद्भावमण्डिते मैं दास क्षन्तव्य हूँ, मुझे क्षमा करो, तेरे उचित कर्तव्य करने में यथार्थ बात की अजानकारी से ही मैं विघ्न करने वाला बना । अब मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आगे कभी भी मैं ऐसा निन्द्य कार्य नहीं करुंगा, अबकी बार हे सहृदय दयालु बहिन, मुझे क्षमा कर ॥७॥

एवमुक्तप्रकारेणाऽऽयाता कृष्णाचतुर्दशी ।
यस्यां निशि समुत्थाता प्रतिमायोगतो वशी ॥८॥

इस प्रकार प्रतिदिन पुतला लाते हुए क्रमशः कृष्णपक्ष की चतुर्दशी आ गई, जिसकी रात्रि में वह जितेन्द्रिय सुदर्शन सेठ प्रतिमायोग से स्मशान में ध्यान लगाकर अवस्थित रहता था ॥८॥

चतुर्दश्यष्टमी चापि प्रतिपक्षमिति द्वयम् ।
उक्तं पर्वोपवासाय समस्तीहार्हता स्वयम् ॥९॥

प्रति मास प्रत्येक पक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी ये दो पर्व अनादि से उपवास के लिए माने गये है, अतएव इन दोनों पर्वो में योग्य मनुष्य को स्वयं ही उपवास करना चाहिए ॥९॥

स्यात् पर्वव्रतधारणा गृहिणां कर्मक्षयकारणात् ॥स्थायी॥
उपसंहृत्य च करणग्रामं कार्या स्वात्मविचारणा ॥१॥
गुरुपदयोर्मदयोगं त्यक्त्वा प्राङ् निशि यस्योद्धरणा ॥२॥
षोडशयाममितीदं यावच्छीजिननामोच्चारणात् ॥३॥
अतिथिसत्कृतिं कृत्वाऽग्रदिने भूरापादितपारणा ॥४॥

कर्मों का क्षय करने के निमित्त गृहस्थों को पर्व के दिन उपवास व्रत की गुरु-चरणों में जाकर धारणा करना चाहिए। तदनन्तर अपनी इन्द्रियों को विषयों से संकुचित कर अपने आत्मस्वरूप का विचार करे। सर्व प्रकार से आरम्भ, अहंकार आदि पाप-योग को और चतुर्विध आहार को त्यागकर पर्व की पूर्व रात्रि में, पर्व के दिन और रात में और अगले दिन से मध्याह्नकाल तक सोलह पहर श्री जिनदेव के नामोच्चारण से बिताकर पहले अतिथि का आहार दान से सत्कार कर स्वयं पारणा को स्वीकार करे ॥१-४॥

भावार्थ - इस श्लोक में सोलह पहरवाले उत्कृष्ट प्रोषधोपवास की विधि बतलाई गई है । अष्टमी और चतुर्दशी के पूर्व सप्तमी और त्रयोदशी को एकाशन करने पश्चात् गुरु के समीप जाकर उपवास की धारणा करनी चाहिए। उसके पश्चात् उस दिन के मध्याह्नकाल से लगाकर नवमी और पूर्णिमा के मध्याह्नकाल तक सोलह पहर धर्मध्यान पूर्वक बितावे । पीछे अतिथि को आहार करा करके स्वयं पारणा करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घनघोरसन्तमसगात्री–यमायाताऽरमहो कलिरात्रिः ॥स्थायी॥
अस्तं गता भास्वतः सत्ता केवलबोधनपात्री ।
वनवासिषु सङ्कोचदशा सा षट्चरणस्थितिहात्री–यमायाताऽरमहो कलिरात्रिः ॥१॥

द्विजवर्गे निष्क्रियतां दृष्ट्वा किं निगदानि भ्रातृन् ।
भीषणता श्रणतादिव खेदं जगतो दुरितख्यात्री–यमायाताऽरमहो कलिरात्रिः ॥२॥

दिग्भ्रममेति न वेत्ति सुमार्गं कथमपि तथा सुयात्री ।
किं कर्तव्यविमूढा जाता सकलापीयं धात्री–यमायाताऽरमहो कलिरात्रिः ॥३॥

भूरास्तां चन्द्रमसस्तमसो हन्त्री शान्तिविधात्री ।
सकलजनानां निजवित्तस्य च लुण्टाकेभ्यस्त्रात्री–यमायाताऽरमहो कलिरात्रिः ॥४॥

अहो बड़ा अश्चर्य है कि देखते ही देखते बहुत ही शीघ्रता से घन घोर अन्धकार को फैलाने वाली यह कलिकालरूप रात्रि आ गई, जहां पर कि आत्मा को बल-दायक विद्या का प्रचार करने वाले ज्ञानी महर्षी रूप सूर्य की सत्ता अस्तंगत हो गई है। तथा रात्रि में जैसे कमल मुद्रित हो जाते हैं और उन पर भौंरे नहीं रहते, वैसे ही आज श्रावक लोगों की संख्या भी बहुत कम हो गई है। जो थोड़ी बहुत है, वह भी देवपूजा आदि षट् कर्मों के परिपालन में उत्साह रहित हो रहे हैं । जैसे रात्रि में द्विजवर्ग (पक्षी-समूह) गमन-संचारादिसे रहित होकर निष्क्रिय बना वृक्षों पर बैठा रहता है, उसी प्रकार इस कलिरूप रात्रि में द्विजवर्ग (ब्राह्मण लोग) अपनी धार्मिक क्रियाओं का आचरण छोड़कर निष्क्रिय हो रहे हैं । रात्रि में जैसे चोरी-जारी आदि पापों की वृद्धि होती है और जगत के खेद, भय आदि बढ़ जाते हैं, वैसे ही आज इस कलिरूप रात्रि में नाना प्रकार के पापों की वृद्धि हो रही है और लोग जिन नाना प्रकार के दुःखों को उठा रहे हैं, उन्हें मैं आप भाइयों से क्या कहूँ ? रात्रि में पथिक जैसे दिग्भ्रम को प्राप्त हो जाता है और अपने गन्तव्य मार्ग को भूल जाता है, वैसे ही आज प्रत्येक प्राणी धर्म के विषय में दिग्मूढ़ हो रहा है, सुमार्ग पर किसी भी प्रकार से नहीं चल रहा है और यह सारी पृथ्वी ही किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रही है। जैसे रात्रि में अन्धकार का नाशक और शान्ति का विधायक चन्द्रमा का उदय होता है वैसे ही आज इस कलिकालरूपी रात्रि में भी क्वचित् कदाचित् लोगों के अज्ञान को हरने वाले और धर्म का प्रकाश करने वाले शान्ति के विधायक शान्तिसागर जैसे आचार्य का जन्म हो जाता है, तो वे ज्ञानरूप धन के लुटेरों से सकल जनों की रक्षा करते हैं ॥१-४॥

तदा गत्वा श्मशानं सा पश्यति स्मेति पण्डिता।
एकाकिनं यथाजातं किलाऽऽनन्देन मण्डिता ॥१०॥

उस कृष्ण पक्ष की ऐसी घन-घोर अंधेरी रात्रि में वह पण्डिता दासीस्मशान भूमि में गई और वहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर यथाजात (नग्न) रुपधारी अकेले सुदर्शन को ध्यानस्थ देखकर अत्यन्त आनन्दित हुई ॥१०॥

नासाद्दष्टिरथ प्रलम्बितकरो ध्यानैकतानत्वतः,
श्रीदेवाद्रिवदप्रकम्प इति योऽप्यक्षुब्धभावं गतः ।
पारावार इव स्थितः पुनरहो शून्ये श्मसाने तया,
दास्याऽदर्शि सुदर्शनो मुनिरिव श्रीमान् द्दशा सूत्कया ॥११॥

दासी ने देखा कि यह श्रीमान सुदर्शन नासा-द्दष्टि रखे, दोनों हाथों को नीचे की ओर लटकाये, सुमेरु पर्वत के समान अकम्प-भाव से अवस्थित, ध्यान में निमग्न, क्षोभ रहित समुद्र के समान गम्भीर होकर इस शून्य स्मशान में मुनि के समान नग्न रुप से विराजमान है, तो उसके आश्चर्य और आनन्द की सीमा न रही और वह अति उत्सुकता से उन्हें देखने लगी ॥११॥

द्दष्टवाऽवाचि महाशयासि किमिहाऽऽगत्य स्थितः किं तया,
वामाङ्गया परिभर्त्सितः स्ववपुषः सौन्दर्यगर्विष्ठया।
हन्ताज्ञा भुवि या भवद्विधनरं सन्त्यक्त्वत्यस्तुसा,
त्वय्याऽऽसक्तमना नरेशललना भाग्योदयेनेद्दशा ॥१२॥

सुदर्शन को इस प्रकार ध्यानस्थ देखकर वह दासी बोली - हे महाशय, यहां आकर इस प्रकार से नंग-धडंग क्यों खड़े हैं? अपने शरीर के सौन्दर्य से गर्व को प्राप्त आपकी उस अर्धांङ्गिनी ने क्या आपकी भर्त्सना करके घर से बाहिर निकाल दिया है? ओफ, वह स्त्री महामूर्खा है, जो कि संसार में अपूर्व सौन्दर्य के धारक जैसे सुन्दर पुरुष को भी छोड़ देती है। किन्तु इस समय अपूर्व भाग्योदय से यहां के राजा की रानी आप पर आसक्त चित्त होकर आपकी प्रतीक्षा कर रही है ॥१२॥

यस्या दर्शनमपि सुदुर्लभं लोकानामिति साम्प्रतं शुभम् ।
तव दर्शनमिति साऽभिवाञ्छति भाग्य तदथ पचेलिमे सति ॥१३॥

जिस रानी का दर्शन होना भी लोगों को अति दुर्लभ है, वही रानी आज तुम्हारे भाग्य के प्रबल परिपाक से तुम्हारे दर्शन करने की इच्छा कर रही है ॥१३॥

किमु शर्करिले वससि हतत्वाद् व्रज नृपसौध नयामि च त्वाम् ।
दुग्धाब्धिवदुज्जवले तथा कं शयानकेऽभयमत्या साकम् ॥१४॥

हे महानुभाव, हताश होकर इस कण्टकाकीर्ण कंकरीले स्थान पर क्यों अवस्थित हैं? चलो, मैं तुम्हें राज-भवन में ले चलती हूं । वहां पर आप क्षीर सागर के समान उज्ज्वल कोमल शय्या पर अभयमती रानी के साथ आनन्द का अनुभव करें ॥१४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यादिकामोदयकृन्नयगादि कृत्वा तथाऽऽलिङ्गनचुम्बनादि ।
मनाङ् न चित्तेऽस्यपुनर्विकारस्ततस्तयाऽकार्यसकौ विचारः ॥१५॥

इत्यादि प्रकार से काम-भाव को जागृत करने वाली अनेक बातें उस दासी ने कही और उनका आलिंगन-चुम्बनादिक भी किया । किन्तु उस सुदर्शन के चित्त में जरासा भी विकार भाव उदित नहीं हुआ । तब हारकर अन्त में उसने उन्हें राज-भवन में ले जाने का विचार किया ॥१५॥

श्मशानतो नग्नतया लसन्तं ध्यानैकतानेन तथा वसन्तम् ।
सोपाहरत्तं शयने तु राज्ञ्या यथा तदीया परिवारिताऽऽज्ञा ॥१६॥

ध्यान में एकाग्रता से निमग्न, नग्नरूप से अवस्थित उस सुदर्शन को अपनी पीठ पर लादकर वह दासी स्मशान से उन्हें उठा लाई और जैसी कि रानी की आज्ञा थी, उसने तदनुसार सुदर्शन को रानी के पलंग पर लाकर लिटा दिया ॥१६॥

सुदर्शनं समालोक्यैवाऽऽसीत्सा हर्षमेदुरा ।
महिषी नरपालस्य चातकीवोदिताम्बुदम् ॥१७॥

जैसे चिरकाल से प्यासी चातकी आकाश में प्रकट हुए नव सजल मेघ को देखकर अत्यन्त आनन्दित होती है, उसी प्रकार वह नरपाल की पट्टरानी अभयमती भी सुदर्शन को आया हुआ देखकर अत्यन्त हर्षित हुई ॥१७॥

चन्द्रप्रभ विस्मरामि न त्वाम् ॥ स्थायी॥
कौमुदमपि यामि तु ते कृपया कान्तां रजनीं गत्वा ॥१॥
पूर्णाऽऽशास्तु किलाऽपरिघूर्णाऽस्माकमहो तव सत्त्वात् ॥२॥
सदा सुदर्शन, दर्शनन्तु ते सम्भवतान्मम सत्त्वात् ॥३॥
क्षणभूरास्तां न स्वप्नेऽप्युत यत्र न यानि वत त्वाम् ॥४॥

चन्द्रमा जैसी कान्ति के धारक हे सुदर्शन, मैं आपकोकभी नहीं भूलती हूं, क्योंकि आपकी कृपा से ही मैं इस सुहावनी रात्रि को प्राप्त कर संसार में अपूर्व आनन्द को पाती हूं । आप के प्रभाव से ही मुझे कुमुद (रात्रि में खिलने वाले कमल) प्राप्त होते है । आपके ही प्रसाद से मेरी चिर- अभिलषित आशाएं परिपूर्ण होती हैं । अतएव हे सुदर्शन, आपके सुन्दर दर्शन मुझे सदा होते रहें । मेरा एक क्षण भी स्वप्न में भी ऐसा न जावे, जब कि मैं आपको न देखूं ॥१-४॥

सुमनो मनसि भवानिति धरतु ॥स्थायी॥
समुदारहृदां कः परलोकः कश्चिदपि न भवतीत्युच्चरतु ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परोपकरणं पुण्याय पुनर्न किमिति यथाशक्ति सञ्चरतु ॥२॥
भूतात्मकमङ्गं भूतलके वारिणि बुद्‌बुदतामनुसरतु ॥३॥
भूराकुलतायाः सम्भूयात्कोऽपि नेति सम्वदतु ॥४॥

हे सौमनस्य, मैं जो कुछ कहती हूँ, उसे अपने मन में स्थान देवें।उदार हृदयवाले लोगों की दृष्टि में परलोक क्या है? कुछ भी नहीं है। फिर इसके लिए क्यों व्यर्थ कष्ट उठाया जाय? दूसरे का उपकार करना पुण्य के लिए माना गया है, फिर यथा शक्ति क्यों न पुण्य के कार्यों का आचरण किया जाय? यह शरीर तो पृथ्वी, जल आदि पंच भूतों से बना हुआ है, सो वह जलमें उठे-हुए बवूले के समान विलीनताको प्राप्त होगा. फिर ऐसे क्षण विनश्वर लोक में कौन सदा आकुलता को प्राप्त होवे, सो कहो। इसलिए हे प्रियंदर्शन, महापुरुषों को तो सारा संसार ही अपना मानकर सबको सुखी करने का प्रयत्न करना चाहिए ॥१-४॥

संगच्छाभयमतिमिति मुनिराट् ॥स्थायी॥
केशपूरकं कोमलकुटिलं चन्द्रमसः प्रततं व्रज रुचिरात् ॥१॥
सुदृढं हृदि कुम्भकमञ्चवरं किन्न यतस्त्वं प्रभवेः शुचिराट् ॥२॥
तावदनुरुसादितः सुभगाद् रेचय रेतः सुखिताऽस्तु चिरात् ॥३॥
भूरायामस्य प्राणानामित्येवं त्वं भवतादचिरात् ॥४॥

हे मौन धारण करने वाले मुनिराज, यदि आपको प्राणायाम करना ही अभीष्ट है, तो इस प्रकार से करो - पहले निर्भय बुद्धि होकर चन्द्र स्वर से पूरक योग किया जाता है अर्थात् बाहिर से शुद्ध वायु को भीतर खींचा जाता है। पुनः कुम्भकयोग-द्वारा उस वायु को हृदय में प्रयत्न पूर्वक रोका जाता है, जिससे कि हृदय निर्मल और दृढ बने। तत्पश्चात् अनुरुसारथी वाले सूर्य नामक स्वर से धीरे-धीरे उस वायु को बाहिर निकाला जाता है अर्थात वायु का रेचन किया जाता है। यह प्राणायाम की विधि है । सो हे पवित्रता को धारण करने वाले शुद्ध मुनिराज, आप अब निर्भय होकर इस अभयमती के साथ प्रेम करो, जिसके चन्द्रसमान प्रकाशमान मुख मण्डल के पास में मस्तक पर कोमल और कुटिलरूप केश-पूरक (वेणीबन्ध) बना हुआ है, उसे पहले ग्रहण करो । तत्पश्चात् कुम्भ का अनुकरण करने वाले, वक्षः स्थल पर अवस्थित सुदृढ़ उन्नत कुच-मण्डल का आलिंगन करो । पुनः जघनस्थल के सुभग मदन-मन्दिर में चिरकाल तक सुखमयी सुषुप्ति का अनुभव करते हुए अपने वीर्य का रेचन करो । यही सच्चे प्राणायाम की विधि है, सो हे मौन-धारक सुदर्शन, तुम निर्भय होकर इस अभयमती के साथ चिरकाल तक प्राणों को आनन्द देने वाला प्राणायाम करो ॥१-४॥

कुचौ स्वकीयौ विवृतौ तयाऽतः रतेरिवाक्रीडधरौ स्म भातः ।
निधानकुम्भाविव यौवनस्य परिप्लवौ कामसुधारसस्य ॥१८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार कहकर उस रानी ने अपने दोनों स्तन वस्त्र रहित कर दिये, जो कि रति देवी के क्रीड़ा करने के दो पर्वत के समान प्रतीत होते थे, अथवा यौवनरूप धन-सम्पदा से भरे हुए दो कुम्भ सरीखे शोभित होते थे, अथवा कामरूप अमृत रस के दो पिण्ड से दिखाई देते थे ॥१८॥

बापीं तदा पीनपुनीतजानुर्गभीरगतैंकरसां तथा नुः ।
यूनो दृगाप्लावन हेतवे तु विकासयामास रतीशकेतुः ॥१९॥

यौवन-अवस्था के कारण जिसकी दोनों जंघाएं हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर थीं, ऐसी कामदेव की पताका के समान प्रतीत होने वाली उस रानी ने गम्भीरता रूप रस से परिपूर्ण अपनी नाभि को प्रगट करके दिखाया, जो कि कामी युवक जनों के नेत्रों को मंगल स्नान कराने के लिए रस-भरी वापिकासी दिख रही थी ॥१९॥

अभीष्टसिद्धेः सुतरामुपायस्तथाऽस्य कामोदयकारणाय ।
अकारि निर्लज्जतया तया तु नाहो कुलीनत्वमधारि जातु ॥२०॥

तत्पश्चात् अपने अभीष्ट को सिद्ध करने के लिए, तथा सुदर्शन के मन में काम-भाव को जागृत करने के लिए जो भी उपाय उसके ध्यान में आया, उसने निर्लज्ज होकर उसे किया, सुदर्शन को उत्तेजित करने के लिए कोई कोर-कसर न उठा रक्खी । अपनी कुलीनता को तो वह कामान्ध रानी एक दम भूल गई ॥२०॥

प्राकाशि यावत्तु तयाऽथवाऽऽगः प्रयुक्तये साम्प्रतमङ्गभागः ।
तथा तथा प्रत्युत सम्विरागमालब्धवानेव समर्त्यनागः ॥२१॥

इस प्रकार पाप का संचय करने के लिए वह रानी जैसे-जैसे अपने स्तन आदि अंगों को प्रकट करती जा रही थी, वैसे-वैसे ही वह पुरुष शिरोमणि सुदर्शन राग के स्थान पर विराग भाव को प्राप्त हो रहा था ॥२१॥

मदीयं मांसलं देहं दृष्टवेयं मोहमागता।
दुरन्तदुरितेनाहो चेतनाऽस्याः समावृता ॥२२॥

रानी की यह खोटी प्रवृत्ति देखकर सुदर्शन विचारने लगे मेरे हृष्ट-पुष्ट मांसल शरीर को देखकर यह रानी मोहित हो रही है? अहो, घोर पाप के उदय से इसकी चेतना शक्ति बिल्कुल आवृत्त होगई है- विचारशक्ति लुप्त हो गई है ॥२२॥

शरीरमेतन्मलमूत्रकुण्डं यत्पूतिमांसास्थिवसादिझुण्डम् ।
उपर्युपात्तं ननु चर्मणा तु विचारहीनाय परं विभातु ॥२३॥

यह मानव-शरीर तो मल मूत्र का कुण्ड है और दुर्गन्धित मांस, हड्डी, चर्बी आदि घृणित पदार्थों का पिण्ड है । केवल ऊपर से इस चमकीले चमड़े के द्वारा लिपटा है, इसलिए विचार-शून्य मूर्ख लोगों को सुन्दर प्रतीत होता है ॥२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रिया मुखं पद्मरुखं ब्रुवाणा भवन्ति किन्नाथ विदेकशाणा।
लालाविलं शोणितकोणितत्वान्न जातु रुच्यर्थमिहैमि तत्त्वात् ॥२४॥

हे नाथ, जो लोग स्त्री के मुख को कमल सदृश वर्णन करते है, वे क्या विवेक की कसौटी वाले हैं? नहीं। यह मुख तो लार से भरा हुआ है, केवल रक्त के संचार से ऊपर चमकीला दिखाई देता है। मैं तो तत्त्वतः इसमें ऐसी कोई उत्तमता नहीं देखता हूं कि जिससे इसमें रमने की इच्छा करुं ॥२४॥

कालोपयोगेन हि मांसवृद्धी कुचच्छलात्तत्र समात्तगृद्धिः ।
पीयूषकुम्भाविति हन्त कामी वदत्यहो सम्प्रति किम्वदामि ॥२५॥

स्त्री के शरीर में काल के संयोग से वक्षःस्थल पर जो मांस की वृद्धि हो जाती है, उन्हें ही लोग कुच या स्तन कहने लगते है। अत्यन्त दुःख की बात है कि उनमें आसक्ति को प्राप्त हुआ कामी पुरुष उन्हें अमृत कुम्भ कहता है। मैं उनकी इस कामान्धता परिपूर्ण मूर्खता पर अब क्या कहूँ.॥२५॥

स्त्रिया यदङ्गं समवेत्य गूढमानन्दितः सम्भवतीह मूढः ।
विलोपमं तत्कलिलोक्ततन्तु दौर्गन्ध्ययुक्तं कृमिभिर्भृतन्तु ॥२६॥

इस संसार में स्त्री के जिस गूढ़ (गुप्त) अंग को देखकर मूढ़ मनुष्य आनन्दित हो उठता है, वह तो वास्तव में सर्प के बिल के समान है, जो सदा ही सड़े हुए क्लेद से व्याप्त, दुर्गन्ध-युक्त और कृमियों से भरा हुआ रहता है ॥२६॥

शश्वन्मलस्त्रावि नवप्रवाहं शरीरमेतत्समुपैम्यथाऽहम ।
पित्रोश्च मूत्रेन्द्रियपूतिमूलं घृणास्पदं केवलमस्य तूलम् ॥२७॥

यह शरीर निरन्तर अपने नौ द्वारों से मल को बहाता रहता है, माता पिता के रज और वीर्य के संयोग से उत्पन्न हुआ है घृणा का स्थान है और इसके गुप्त अंग वस्तुतः दुर्गन्ध-मूलक मूत्रेन्द्रिय रुप है। लोगों ने कामान्ध होकर इसे केवल सौन्दर्य का तूल दे रक्खा है. यथार्थ में शरीर के भीतर सौन्दर्य और आकर्षण की कोई वस्तु नहीं है ॥२७॥

दृष्ट्या याऽपहरेन्मनोऽपि तु धनोद्गीतिं समायोजने,
बाचां रोतिमिति प्रसङ्गकरणे स्फीतिं पुनर्मोचने।
सर्वाङ्गीणमथापकृष्टु मुदिता मर्त्यस्य सारं यतो,
मायामूर्तिरनङ्गजूर्तिरिति चेत्सौख्यस्य पूर्तिः कुतः ॥२८॥

जो स्त्री अपनी दृष्ठि से तो मनुष्य मन को हर लेती है, समायोग होने पर धन का अपहरण करती है, शरीर प्रसंग करने पर वचनों की रीति को हरती है और शुक्र-विमोचन के समय शारीरिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्फूर्ति को समाप्त कर देती है। इस प्रकार यह स्त्री मनुष्य के सर्वस्व मन, वचन, धन और तनरूप सार का सर्वाङ्ग से अपकर्षण करने वाली है, तथा जो माया की मूर्ति है और काम की जूर्त्ति है - काम-ज्वर उत्पन्न करने वाली है, ऐसी स्त्री सें मनुष्य के सुख की पूर्ति कैसे हो सकती है, अर्थात कभी नहीं हो सकती ॥२८॥

हावे च भावे धृतिकक्षदावे राज्ञी क्षमा ब्रह्मगुणैकनावे ।
दुरिङ्गितं भूरि चकार तावन्न तस्य किञ्चिद्विचकार भावम् ॥२९॥

इस प्रकार विचार युक्त ब्रह्मचर्य रूप अद्वितीय गुणवाली नाव में बैठे हुए सुदर्शन को डिगाने वाले तथा उसके धैर्यरूप सघन वन के जलाने के लिए दावाग्निका काम करने वाले अनेक प्रकार के हाव-भाव करने में समर्थ उस रानी ने बहुत बुरी-बुरी चेष्टाएं की, किन्तु सुदर्शन के मन को जरा भी विकार रूप नहीं कर सकी ॥२९॥

यद्दच्छयाऽनुयुक्तापि न जातु फलिता नरि ।
तदा विलक्षभावेन जगादेतीश्वरीत्वरी ॥३०॥

अपनी इच्छानुसार निरंकुश रुप से काम-भाव जागृत करने वाले सभी उपायों के कर लेने पर भी जब सुदर्शन के साथसंगम करने में उसकी कोई भी इच्छा सफल नहीं हुई, तब वह दुराचारिणी रानी निराश भाव से इस प्रकार बोली ॥३०॥

उत्खातांघ्रिपवद्धि निष्फलमितः सञ्जायते चुम्बितं,
पिष्टोपात्तशरीरवच्चा लुलितोऽप्येवं न याति स्मितम् ।
सम्भृष्टामरवद्विसर्जनमतः स्याद्दासि अस्योचितं,
भिन्नं जातु न मे दृगन्तशरकैश्चेतोऽस्य सम्वर्मितम् ॥३१॥

हे दासी, मेरा चुम्बन उखड़े हुए वृक्ष के समान इस पर निष्फल हो रहा है, बार-बार गुद-गुदाये जाने पर भी आटे की पिट्ठी से बने हुए शरीर के समान यह हास्य को नहीं प्राप्त हो रहा है वैराग्यरूप कवच से सुरक्षित इसका चित्त मेरे तीक्ष्ण कटाक्ष-रूप वाणों से जरा भी नहीं भेदा जा सका है, इसलिए हे सखि, खण्डित हुए देव-बिम्ब के समान अब इसका विसर्जन करना ही उचित है ॥३१॥

सन्निशम्य वचो राज्ञ्याः पण्डिता खण्डिता हृदि ।
सम्भवित्री समाहाहो विपदाप्ताऽपि सम्पदि ॥३२॥

इस प्रकार कहे गये रानी के वचन सुनकर वह पण्डिता दासी अपने हृदय में बहुत ही दुखी हुई और विचारने लगी कि मैने रानी के सुख के लिए जो कार्य किया था, अहो, वह अब दोनों की विपत्ति का कारण हो गया है, ऐसा विचार करती हुई रानी से बोली ॥३२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुभगे शुभगेहिनीतिसत्समयः शेषमयः स्वयं निशः ।
किमु यावकलां कलामये परमस्यापरमस्य हानये ॥३३॥

हे सौभाग्यवती रानीजी, आप उत्तम गृहिणी हैं, स्वयं जरा विचार तो करें, इस समय रात्रि व्यतीत हो रही है और प्रभात-काल हो रहा है, इस समय कौन सी कलामयी बात (करामात) की जाय कि इस विपत्ति से छुटकारा मिल सके ॥३३॥

सन्निधान मिवाऽऽभान्तं यत्नेनैवं निगोपय ।
येन केन प्रकारेण वामारुपेण सञ्जय ॥३४॥

इसलिए अब तो उत्तम निधान (भण्डार) के समान प्रतिभासित होने वाले इसे यहीं कहीं पर सावधानी के साथ सुरक्षित रखो, या फिर जिस किसी प्रकार से वामारूप के द्वारा (त्रिया-चरित फैलाकार) इस आई आपत्ति को जीतने का प्रयत्न करो ॥३४॥

आव्रजताऽऽव्रजत त्वरितमितः भो द्वाःस्थजनाः कोऽयमघमितः ॥
मुक्तकञ्चुको दंशनशीलः स्वयमसरलचलनेनाश्लीलः।
भुजगोऽयं सहसाऽभ्यन्तरितः, आव्रजताऽऽव्रजत त्वरितमितः ॥१॥

अरिरुपोऽस्मांक योऽप्यमनाक्कुसुमन्धयतामभिसर्तुमनाः ।
कामलतामिति गच्छत्यभितः, आव्रजताऽऽव्रजत त्वरितमितः ॥२॥

खररुचिरिन्दुबिन्दुमश्नाति कण्टकेन विद्धेयं जातिः ।
विषयोगोऽस्ति सुधायाः सरितः आव्रजताऽऽव्रजतत्वरितमितः ॥३॥

निष्कासयताऽविलम्बमेनमिदमस्माकं चित्तमनेन ।
भूराकुलताया भवति हि तदाऽऽव्रजताऽऽव्रजत त्वरितमितः ॥४॥

तब रानी ने त्रिया-चरित फैलाना प्रारम्भ किया और जोर-जोर से चिल्लाने लगी - हे द्वारपाल लोगो ! इधर शीघ्र आओ, शीघ्र आओ, देखो - यहां यह कौन सर्परूप भुजंग (जार लुच्चा) पापी आ गया है, जो मुक्त-कञ्चुक[१] है, दंशनशील है[२] और कुटिल चाल चलने वाला है। यह महाभुजंग सहसा भीतर आ गया है। द्वारपालो, जल्दी इधर आओ और इस बदमाश लुच्चे रूप सर्प को बाहिर निकालो। यह मेरा शत्रु बनकर आया है, जो फूलों के रस को अभिसरण करने वाले भौंरे के समान मुझ कामलता

१ सांप के पक्ष में कांचली रहित, सुदर्शन के पक्ष में वस्त्ररहित
२ काटने को उद्यत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के चारों ओर मंडरा रहा है। द्वारपालों, शीघ्र इधर आओ और इसे बाहिर निकालो। जैसे तीक्ष्ण किरणों वाला सूर्य चन्द्रमा की कान्ति-बिन्दु को खा डालता है, उसी प्रकार यह मेरी चन्द्र-तुल्य मुख-आभा को खाने के लिए उद्यत है, जैसे चमेली कांटो से विधकर दुर्दशा को प्राप्त होती है, वैसे ही मैं भी इसके नख रूप कांटों से वेधी जा रही हूँ और अमृत की सरिता में विष के संयोग के समान इसका मेरे साथ यह कुसंयोग होने जा रहा है, सो हे द्वारपालो, शीघ्र इधर आओ और इसे अविलम्ब यहाँ से निकालो। इसके द्वारा हमारा चित्त अत्यन्त आकुल-व्याकुल हो रहा है ॥१-४॥

राज्या इदं पूत्करणं निशम्य भटैरिहाऽऽगत्य धृतो द्रुतंयः ।
राज्ञोऽग्रतः प्रापित एवमेतैः किलाऽऽलपद्भिर्बहुशः समेतैः ॥३५॥

रानी की इस प्रकार करुण पुकार को सुनकर बहुत से सुभट लोग दौड़े हुए आये और सुदर्शन को पकड़ कर नाना प्रकार के अपशब्द कहते हुए वे लोग उसे राजा के आगे ले गये ॥३५॥

अहो धूर्तस्य धौर्त्यं निभालयताम् ॥स्थायी॥
हस्ते जपमाला हृदि हाला स्वार्थकृतोऽसौ वञ्चकता ॥१॥
अन्तो भोगभुगुपरि तु योगो बकवृत्तिर्व्रतिनो नियता ॥२॥
दर्पवतः सर्पस्येवास्य तु वक्रगतिः सहसाऽवगता ॥३॥
अघभूराष्ट्रकण्टकोऽयं खलु विपदे स्थितिरस्याभिमता ॥४॥

सुदर्शन को राजा के आगे खड़ाकर सुभट बोले - अहो, इस धूर्त्त की धूर्त्तता तो देखो - जो यह हाथ में तो जपमाला लिए है और हृदय में भारी हालाहल विष भरे हुए है। अपने स्थार्थ पूर्ति के लिए इसने कैसा वंचक पना (ठगपना) धारण कर रक्खा है? यह ऊपर से बगुले के समान योगी व्रती बन रहा है और अन्तरंग में इसके भोग भोगने की प्रबल लालसा उमड़ रही है। विष के दर्प से फुँकार करने वाले सर्प के समान इसकी कुटिल गति का आज सहसा पता चल गया है । यह पापी सारे राष्ट्र का कण्टक है। इसका जीवित रहना जगत् की विपत्ति के लिए है ॥१-४॥

राजा जगाद न हि दर्शनमस्य मे स्या-देताद्दृशीह परिणामवतोऽस्ति लेश्या।
चाण्डाल एव स इमं लभतामिदानीं, राज्ये ममेद्दृगपि धिग्दुरितैकधानी ॥३६॥

सुभटों की बात सुनकर राजा बोला - मैं ऐसे पापी का मुख नहीं देखना चाहता । ओफ़्, उपर से सभ्य दिखने वाले इस दुष्ट के परिणामों में ऐसी खोटी लेश्या है - दुर्भावना है ? अभी तुरन्त इसे चाण्डाल को सौंपो, वही इसकी खबर लेगा । मेरे राज्य में भी ऐसे पापी लोग बसते हैं ? मुझे आज ही ज्ञात हुआ है। ऐसे नीच पुरुष को धिक्कार है ॥३६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।।
प्रोक्ते तेनसुदर्शनस्य चरिते व्यत्येत्सौ सत्तमः
राज्ञः श्रेष्ठिवराय कोपविधिवाक् सर्गः स्वयं सप्तमः ।।

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुजजी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीभूषण, बालब्रह्मचारी पं. भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर-विरचित इस सुदर्शनोदय काव्य में राजा द्वारा सुदर्शन सेठ को मारने की आज्ञा दी जाने का वर्णन करने वाला सातवां सर्ग समाप्त हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ अष्टमः सर्गः

अन्तःपुरं द्वाःस्थनिरन्तरायि सुदर्शनः प्रोषधसम्विधायी।
विज्ञैरवाचीत्यवटः प्रयोगः स्यादत्र कश्चित्त्वपरो हि रोग : ॥१॥

जब उपर्युक्त घटना नगर-निवासियों ने सुनी तो कितने ही जानकार लोगों ने कहा - अन्तःपुर पर तो निरन्तराय द्वारपालों का पहरा रहता है, और सुदर्शन सेठ पर्वी के दिन प्रोषधोपवास धारण कर स्मशान में रहता है, फिर यह अघटनीय घटना कैसे घट सकती है? इसमें तो कोई दूसरा ही रोग (रहस्य) प्रतीत होता है ॥१॥

श्मसानमासाद्य कुतोऽपि सिद्धिरुपार्जिताऽनेन सुमित्र विद्धि ।
कः कामबाणादतिवर्तितः स्यादित्थं परेण प्रकृता समस्या ॥२॥

विज्ञजनों का उक्त वक्तव्य सुनकर कोई मनचला व्यक्ति बोला - मित्र, ऐसा प्रतीत होता है कि स्मशान में रहकर सुदर्शन ने किसी तपस्या विशेष से कोई सिद्धि प्राप्त कर ली है और उसके द्वारा अन्तःपुर में पहुंच गया है. यह तुम सत्य समझो क्योंकि इस संसार में काम के वाणों से कौन अछूता रह सकता है। इस प्रकार किसी पुरुष ने प्रकृत समस्या का समाधान किया ॥२॥

मनाङ् न भूपेन कृतो विचारः कच्चिन्महिष्याश्च भवेद्विकारः ।
चेष्टा स्त्रियां काचिदचिन्तनीयाऽवनाविहान्यो निजगौ महीयान् ॥३॥

उस पुरुष की बात को सुनकर तीसरा समझदार व्यक्ति बोला - राजा ने इस घटना पर जरा सा भी विचार नहीं किया कि कहीं यह रानी का ही कोई षडयंत्र न हो (और बिना विचारे ही सुदर्शन को मारने की आज्ञा दे दी) । इस संसार में स्त्रियों की कितनी ही चेष्टाएं अचिन्तनीय होती हैं ॥३॥

विचारजाते स्विदनेकरुपे जनेषु वा रोषमितेऽपि भूपे।
सुदर्शनोऽकारि विकारि हस्ते जानन्ति सम्यग्विभवो रहस्ते ॥४॥

इस प्रकार लोगों में इधर अनेकरूप से विचार हो रहे थे और उधर राजा ने रोष में आकर सुदर्शन को मारने का आदेश दे दिया। लोग कह रहे थे कि इसका यथार्थ रहस्य तो सर्वज्ञ प्रभु ही भली-भांति जानते हैं ॥४॥

कृतान प्रहारान् समुदीक्ष्य हारायितप्रकारांस्तु विचारधारा ।
चाण्डालचेतस्युदिता किलेतः सविस्मये दर्शकसञ्चयेऽतः ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा की आज्ञानुसार सुदर्शन को मारने के लिए चाण्डाल द्वारा किये गये तलवार के प्रहार सुदर्शन के गले में हार रूप में परिणत हुए देखकर दर्शक लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, और उस चाण्डाल के चित्त में इस प्रकार की वक्ष्यमाण विचार धारा प्रवाहित हुई ॥५॥

अहो ममासिः प्रतिपक्षनाशी किलाहिराशीविष आः किमासीत् ।
मृणालकल्पः सुतरामनल्प तूलोक्ततल्पं प्रति कोऽत्र कल्पः ॥६॥

अहो, आशीविष सर्प के समान प्रतिपक्ष का नाश करने वाली मेरी इस तलवार को आज क्या हो गया? जो रुई के विशाल गद्दे पर कमल- नाल के समान कोमल हार बनकर परिणत हो रही है ? क्या बात है, कुछ समझ नहीं पड़ता ॥६॥

एवं समागत्य निवेदितोऽभूदेकेन भूपः सुतरां रुषोभूः ।
पाषण्डिनस्तस्य विलोकयामि तन्त्रायितत्वं विलयं नयामि ॥७॥

यह सब दृश्य देखने वाले दर्शकों में से किसी एक सेवक ने जाकर यह सब वृत्तान्त राजा से निवेदन किया, जिसे सुनकर राजा और भी अधिक रोष को प्राप्त हुआ। और बोला - मैं अभी जाकर उस पाखण्डी के तंत्र पाण्डित्य (टोटा-जादू) को देखता हूँ और उसे समाप्त करता हूँ ॥७॥

राज्ञ्याः किल स्वार्थपरायणत्वं विलोक्य भूपस्य च मौढ्यसत्वम् ।
धर्मस्य तत्त्वं च समीक्ष्य तावत्सुदर्शनोऽभूदितिक्लृप्तभावः ॥८॥

इधर सुदर्शन रानी की स्वार्थ परायणता और राजा की मूढ़ता का अन- [illegible] कर एवं धर्म का माहात्म्य देखकर मन में वस्तु तत्त्व का चिन्तवन करने लगा ॥८॥

स्वयमिति यावदुपेत्य महीशः मारणार्थमस्यात्तनयी सः ।
सम्बभूव वचनं नभसोऽपि निम्नरूपतस्तत्स्मयलोपि ॥९॥

इतने में आकर और सुदर्शन को मारने के लिए हाथ में तलवार लेकर राजा ज्यों ही स्वयं उद्यत हुआ कि तभी उसके अभिमान का नाश करने वाली आकाशवाणी इस प्रकार प्रकट हुई ॥९॥

जितेन्द्रियो महानेषस्वदारेष्वस्ति तोषवान् ।
राजन्निरीक्ष्यतामित्थं गृहच्छिद्रं परीक्ष्यताम् ॥१०॥

हे राजन्, यह सुदर्शन अपनी ही स्त्री में सन्तुष्ट रहने वाला महान् जितेन्द्रिय पुरुष है, अर्थात् यह निर्दोष है। अपने ही घर के छिद्रको देखो और यथार्थ रहस्य का निरीक्षण करो ॥१०॥

निशम्येदं महीशस्य तमो विलयमभ्यगात्।
हृदये कोऽप्यपूर्वो हि प्रकाशः समभूत्तदा ॥११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस आकाश वाणी को सुनकर राजा का तुरन्त सब अज्ञान-अन्धकार नष्ट हो गया और उसके हृदय में तभी कोई अपूर्व प्रकाश प्रकट हुआ और वह विचारने लगा ॥११॥

कवालीयो राग :-

समस्ति यताऽऽत्मनो नूनं कोऽपि महिमूर्ध्न्यहो महिमा ।।स्थायी।।
न स विलापी न मुद्वापी दृश्यवस्तुनि किल कदापि।
समन्तात्तत्र विधिशापिन्यदृश्ये स्वात्मनीव हि मा ।।समस्ति.।।१।।

नरोत्तमवीनता यस्मान्न भोगाधीनता स्वस्मात् ।
सुभगतमपक्षिणस्तस्मात् किं करोत्येव साप्यहिमा ।।समस्ति.२।।

न दृक् खलु दोषमायाता सदानन्दा समा याता ।
क्वापि बाऽधा समायाता द्रुमालीवेष्यते सहिमा ।।समस्ति.।।३।।

इयं भूराश्रितास्त्यभितः कण्टकैर्यत्पदो रुदितः।
स चर्मसमाश्रयो यदितः कुतः स्यात्तस्य वा न हिमा ।।समस्ति. ४।।

अहो, निश्चय से इस मही-मण्डल पर जितेन्द्रिय महापुरुषों की कोई अपूर्व ही महिमा है, जो इन बाहिरी दृश्य वस्तुओं पर प्रतिकूलता के समय न कभी विलाप करते हैं और न अनुकूलता के समय हर्षित ही होते हैं। वे तो इस सम्पत्ति-विपत्ति को अदृश्य विधि (देव या कर्म) का शाप समझकर सर्व ओर से अपने मन का निग्रह कर अपने आत्म-चिन्तन में निमग्न रहते हैं । ऐसे पुरुषोत्तम तो भगवद् भक्ति में यतः तत्पर रहते हैं, अतः उनके भोगों की अधीनता नहीं होती । जैसे पुरुषोत्तम कृष्ण के वाहन वैनतेय (गरुड़) के आश्रित रहने वाले जीव भोगों (सर्पों) से अस्पृष्ट रहते हैं । जो अति उत्तम गरुड़रूप धर्म का पक्ष अंगीकार करता है, उसका दुर्जन रूप सर्प क्या कर सकता है? ऐसे धार्मिक पुरुष की दृष्टि किसी के दोष देखने की ओर नहीं जाती, उसका सारा समय सदा आनन्दमय बीतता है। यदि कदाचित् पूर्व पाप के उदय से कोई बाधा आ भी जाय, तो वह वृक्ष पंक्ति पर पड़े हुए पाले के समान सहज में निकल जाती है। यद्यपि यह सर्व पृथ्वी कण्टकों से व्याप्त है, तथापि जिसके चरण चमड़े की जूतियों से युक्त हैं, उसको उन कांटों से क्या बाधा हो सकती है ॥१-४॥

इत्येवं बहुशः स्तुत्वा निपपात स पादयोः ।
आग संशुद्धये राजा सुदर्शनमहात्मनः ।।१२।।

इस प्रकार बहुत भक्ति-पूर्वक सुदर्शन की स्तुति करके वह राजा अपने अपराध को क्षमा कराने के लिए महात्मा सुदर्शन के चरणों में पड़ गया और बोला ॥१२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे सुदर्शन मया यदुत्कृतं क्षम्यतामिति विमत्युपार्जितम् ।
हृत्तु मोहतमसा समावृतं त्वं हि गच्छ कुरु राज्यमप्यतः ॥१३॥

हे सुदर्शन, मैंने कुबुद्धि के वश होकर जो तुम्हारा अपराध किया है, उसे क्षमा करो। मैं उस समय मोहान्धकार से समावृत (घिरा हुआ) था । (अब मुझे यथार्थ प्रकाश प्राप्त हुआ है।) जाओ और आज से तुम्हीं राज्य करो ॥१३॥

इत्यस्योपरि सञ्जगाद स महान् भो भूप किं भाषसे,
को दोषस्तव कर्मणो मम स वै सर्वे जना यद्वशे।
श्रीभाजा भवतोचितं च कृतमस्त्येतज्जगद्धे तवे,
दण्डं चेदपराधिने न नृपतिर्दद्यात्स्थितिः का भवेत् ॥१४॥

राजा की बात सुनकर उस सुदर्शन महापुरुष ने कहा - हे राजन् यह आप क्या कह रहे हैं? आपका इसमें क्या दोष हैं? यह तो निश्चय से मेरे ही पूर्वोपार्जित कर्म का फल है, जिसके कि वश में पड़कर सभी प्राणी कष्ट भोग रहे हैं । आप श्रीमान् ने जो कुछ भी किया, वह तो उचित ही किया है और ऐसा करना जगत के हित के लिए योग्य ही है। यदि राजा अपराधी मनुष्य को दण्ड न दे, तो लोक की स्थिति (मर्यादा) कैसे रहेगी ॥१४॥

हे नाथ मे नाथ मनाग्विकारस्श्चेतस्युतैकान्ततया विचारः।
शत्रुश्च मित्रं च न कोऽपि लोके हृष्यज्जनोऽज्ञो निपतेच्च शोके ॥१५॥

हे स्वामिन् इस घटना से मेरे मन में जरा सा भी विकार नहीं है (कि आपने ऐसा क्यों किया?) मैं तो सदा ही एकान्त रूप से यह विचार करता रहता हूं कि इस लोक में न कोई किसी का स्थायी शत्रु है और न मित्र ही । अज्ञानी मनुष्य व्यर्थ ही किसी को मित्र मानकर कभी हर्षित होता है और कभी किसी को शत्रु मानकर शोक में गिरता है ॥१५॥

लोके लोकः स्वार्थभावेन मित्रं नोचेच्छत्रुः सम्भवेन्नात्र चित्रम् ।
राज्ञी माता मह्यमस्तूक्तकेतू रुष्टः श्रीमान् प्रातिकूल्यं हि हेतुः ॥१६॥

इस संसार में लोग स्वार्थ-साधन के भाव से मित्र बन जाते हैं और यदि स्वार्थ-सिद्धि संभव नहीं हुई, तो शत्रु बन जाते हैं, सो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । (यह तो संसार का नियम ही है) श्रीमती महारानी जी मेरी माता हैं और श्रीमान् महाराज मेरे पिता हैं । यदि आप लोग मेरे ऊपर रुष्ट हों, तो इसमें मेरे पूर्वोपार्जित पापकर्म का उदय ही प्रतिकूलता का कारण है ॥१६॥

वस्तुतस्तु मदमात्सर्याद्याः शत्रवोऽङ्गिन इति प्रतिपाद्याः ।
तज्जयाय मतिमान् धृतयुक्तिरिस्तु सैव खलु सम्प्रति मुक्तिः ॥१७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिए वास्तव में मद, मात्सर्य आदि दुर्भाव ही जीवों के यथार्थ शत्रु हैं, ऐसा समझना चाहिए और उन दुर्भावों को जीतने के लिए बुद्धिमान् मनुष्य को धैर्य-युक्त होकर प्रयत्न करना चाहिए। यह उपाय ही जीव की वास्तविक मुक्तिका आज सर्वोत्तम मार्ग है ॥१७॥

सुखं च दुःखं जगतीह जन्तोः स्वकर्मयोगाद् दुरितार्थमन्तो।
मिष्टं सितास्वादन आस्यमस्तु तिक्तायते यन्मरिचाशिनस्तु ॥१८॥

हे दुरित - (पाप) विनाशेच्छुक महाराज, इस जगत् में जीवों के सुख और दुःख अपने ही द्वारा किये कर्म के योग से प्राप्त होते हैं । देखो मिश्री का आस्वादन करने पर मुख मीठा होता है और मिर्च खाने वाले का मुख जलता है ॥१८॥

विज्ञो न सम्पत्तिषु हर्षमेति विपत्सु शोकं च मनागथेति।
दिनानि अत्येति तटस्थ एव स्वशक्तितोऽसौ कृततीर्थसेवः ॥१९॥

संसार का ऐसा स्वभाव जानकर ज्ञानी जन सम्पत्तियों के आने पर न हर्ष को प्राप्त होता है और न विपत्तियों के आने पर रंचमात्र भी शोक को प्राप्त होता है । किन्तु वह दोनों ही अवस्थाओं में मध्यस्थ रहकर अपने जीवन के दिन व्यतीत करता है और अपनी शक्ति के अनुसार धर्मरूप तीर्थ की सेवा करता रहता है ॥१९॥

यद्वा निशाऽहःस्थितिवद्विपत्ति सम्पत्तियुग्मं च समानमत्ति।
सतां प्रवृत्तिः प्रकृतानुरागा सन्ध्येव बन्ध्येव विभूतिभागात् ॥२०॥

अथवा जैसे रात्रि और दिन के बीच में रहने वाली सन्ध्या सदा एक सी लालिमा को धारण किये रहती है, उसी प्रकार सज्जनों की प्रवृत्ति भी सम्पत्ति और विपत्ती इन दोनों के मध्य समान भाव को धारण किये रहती है ।वह एक में अनुराग और दूसरे में विराग भाव को प्राप्त नहीं होती ॥२०॥

मोहादहो पश्यति बाह्यवस्तुन्यङ्गीति सौख्यं गुणमात्मनस्तु।
भ्रमाद्यथाऽऽकाशगतेन्दुबिम्बमङ्गीकरोति प्रतिवारिडिम्बः ॥२१॥

अहो आश्चर्य है कि सुख जो अपनी आत्मा का गुण है, उसे यह संसारी प्राणी मोह के वश होकर बाहिरी वस्तुओं में देखता है? अर्थात् बाहिरी पदार्थों में सुख की कल्पना करके यह अज्ञ प्राणी उनके पीछे दौड़ता रहता है । जैसे कोई भोला बालक आकाश गत चन्द्रबिम्ब को भ्रम से जल में अवस्थित समझकर उसे पकड़ने के लिए छटपटाता रहता है ॥२१॥

धरा पुरान्यैरुररीकृता वाऽसकाविदानीं भवता धृता वा।
स्वदारसन्तोषवतो न भोग्या ममाधुना निर्वृतिरेव योग्या ॥२२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और महाराज, आपने जो मुझे इस राज्य को ग्रहण करने के लिए कहा है, सो इस पृथ्वी को पूर्वकाल में अन्य अनेकों राजाओं ने अंगीकार कियाहै, अर्थात भोगा है और इस समय आप इसको भोग रहे हैं, इसलिए स्वदार सन्तोष व्रत के धारण करने वाले मेरे यह भोगने-योग्य नहीं है । अब तो निर्वृति (मुक्ति) ही मेरे योग्य है ॥२२॥

इत्युपेक्षितसंसारो विनिवेद्य महीपतिम् ।
जगाम धाम किञ्चासौ निवेदयितुमङ्गनाम् ॥२३॥

इस प्रकार राजा से अपना अभिप्राय निवेदन कर संसार से उदासीन हुआ वह सुदर्शन अपना अभिप्राय अपनी जीवन-संगिनी मनोरमा से कहने के लिए अपने घर गया ॥२३॥

माया महतीयं मोहिनी भवभाजोऽहो माया ॥स्थायी॥
भवति प्रकृति समीक्षणीया यद्वशगस्य सदाया।
निष्फललतेव विचाररहिता स्वल्पपल्लवच्छाया॥
दुरितसमारम्भप्राया॥ माया महतीयं०॥१॥

यामवाप्य पुरुषोत्तमः स्म संशेतेऽप्यहिशय्याम्।
कृतकं सभयं सततमिङ्गितं यस्य बभूव धरायाम् ॥
इह सत्याशंसा पायात् ॥ माया महतीयं० ॥२॥

उमामवाप्य महादेवोऽपि च गत्वाऽपत्रपतायाम् ।
किमिह पुनर्न बभूव विषादी स्थानं पशुपतितायाः॥
प्रकृतविभूतित्वोपायात् ॥ माया महतीयं ॥३॥

अपवर्गस्य विरोधकारिणी जनिभूराकुलतायाः ।
जड्धीश्वरनन्दिनी प्रसिद्धा कमलवासिनी वा या॥
प्रतिनिषेधिनी सत्तायाः ॥ माया महतीयं ॥४॥

मार्ग में जाते हुए सुदर्शन विचारने लगा - अहो यह जगत् की मोहिनी माया संसारी जीवों को बहुत बड़ी निधि सी प्रतीत होती है? जो पुरुष इस मोहिनी माया के वश को प्राप्त हो जाता है, उसी की प्रकृति बड़ी विचारणीय बन जाती है। जैसे पाला-पड़ी हुई लता फल रहित, पक्षी संचार- विहीन और अल्प पत्र वा अल्प छायावाली हो जाती है, उसी प्रकार मोहिनी माया के जाल में पड़े हुए प्राणी की प्रवृत्ति भी निष्फल, विचार-शून्य, स्वल्प सुकृतवाली एवं पाप बहुल समारम्भ वाली हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखो - इस मोहिनी मायारूप लक्ष्मी को पाकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भी नागशय्या पर सोये, जो कि कंस के संहारक थे, जिनके कि एक इशारे मात्र से इस धरातल पर बड़े से बड़े योद्धा भी भयभीत हो जाते थे और सत्यभामा जैसी सती पट्टरानी को दुःख भोगना पड़ा। जब इस माया के योग से श्रीकृष्ण की ऐसी दशा हुई, तो फिर अन्य लोग यदि इसके संयोग से बनावटी चेष्टा वाले, भयभीत और सत्य के पक्ष से रहित हो ज़ावे, तो इसमे क्या आश्चर्य है । जिस माया में फंसकर महादेव जी अपने शरीर में भस्म लगाकर पशुपतिपने को प्राप्त हो गये, विष को खाया और निर्लज्जता अंगीकार कर पार्वती से रमण करने लगे, तो फिर अन्य जनों की तो बात ही क्या है। यह माया अपवर्ग (मोक्ष) का विरोध करने वाली है, आकुलता को उत्पन्न करने वाली है, जड़बुद्धि जलधीश्वर (समुद्र) की पुत्री है और कमल-निवासिनी है अर्थात् क (आत्मा) के मल जो राग-द्वेषादि विकारी भाव हैं, उनमें रहने वाली हैं, एवं सज्जनता का विनाश करने वाली है। ऐसी यह संसार की माया है (मुझे अब इसका परित्याग करना ही चाहिए) ॥१-४॥

एवं विचिन्तयन् गत्वा पुनरात्मरमां प्रति।
सूक्तं समुक्तवानेवं तत्र निम्नोदितं कृती ॥२४॥

इस प्रकार चिन्तवन करता हुआ वह कृती सुदर्शन घर पहुँच कर अपनी प्राणप्रिया मनोरमा के प्रति ये निम्नलिखित सुन्दर वचन बोला ॥२४॥

अर्धाङ्गिन्या त्वया सार्धं हे प्रिये रमितं बहु ।
अधुना मन्मनःस्थाया ऋतुकालोऽस्ति निर्वृत्ते॥२५॥

हे प्राणप्रिये, आज तक मैंने तेरी जैसी मनोहारिणी अर्धाङ्गिनी के साथ बहुत सुख भोगा। किन्तु अब मेरे मन में निवास करने वाली निर्वृत्ति (मुक्तिलक्ष्मी) रूप जीवन-सहचरी का ऋतुकाल आया है ॥२५॥

निशम्येदं भद्रभावात् स्वप्राणेश्वरभाषितम् ॥
मनोरमापि चतुरा समाह समयोचितम् ॥२६॥

अपने प्राणेश्वर के उपर्युक्त वचन सुनकर वह चतुर मनोरमा भी अत्यन्त भद्रता के साथ इस प्रकार समयोचित वचन बोली ॥२६॥

प्राणाधार भवांस्तु मां परिहरेत्सम्वाञ्छया निर्वृतेः,
किन्त्वानन्दनिबन्धनस्तवदपरः को मे कुलीनस्थितेः।
नाहं त्वत्सहयोगमुज्झितुमलं ते या गतिः सैव मेऽ-
स्त्वार्याभूयतया चरानि भवतः सान्निध्यमस्मिन् क्रमे ॥२७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे प्राणाधार, आप तो मुक्तिलक्ष्मी की वांछा से मेरा परित्याग करने को तैयार हो गये, किन्तु मुझ कुलीन-वंशजा नारी के लिए तो तुम्हारे सिवाय आनन्द का कारण और कौन पुरुष हो सकता है? इसलिए मैं तुम्हारे सहयोग को छोड़ने के लिए समर्थ नहीं हूं। तुम्हारी जो गति, सो ही हमारी गति होगी, ऐसा मेरा निश्चय है । यदि आप साधु बनने जा रहे हैं तो मैं भी आपके चरणों के समीप ही आर्यिका बनकर विचरण करुंगी ॥२७॥

सम्फुल्लतामितोऽनेन वदने करयोरपि।
सुदर्शनः पुनः प्रीत्या जगाम जिनमन्दिरम् ॥२८॥

मनोरमा के ऐसे प्रेम-परिपूर्ण दृढ़ निश्चय वाले वचन सुनकर अत्यन्त प्रफुल्लित मुंख होकर वह सदुर्शन अपने दोनों हाथों में पुष्प लेकर प्रसन्नता-पूर्वक भगवान् की पूजन करने के लिए जिनमन्दिर गया ॥२८॥

जिनयज्ञमहिमा ख्यातः ॥स्थायी॥
मनोवचनकायैर्जिनपूजां प्रकुरु ज्ञानि भ्रातः ॥१॥
मुदाऽऽदाय मेकोऽम्बुजकलिकां पूजनार्थमायातः ॥२॥
गजपादेनाध्वनि मृत्वाऽसौ स्वर्गसम्पदां यातः ॥३॥
भूरानन्दस्य यथाविधि तत्कर्ता स्यात्किमु नातः ॥४॥

अहो ज्ञानी भाई, जिन-पूजन की महिमा संसार में प्रसिद्ध है, अतएव मन, वचन,काय से जिन पूजन करनी चाहिए। देखो - (राजगृह नगर में जब महावीर भगवान का समवसरण आया और राजा श्रेणिक हाथी पर सवार होकर नगर-निवासियों के साथ भगवान् की पूजन के लिए जा रहे थे, तब) प्रमोद से एक मेंढक कमल की कली को मुख में दाबकर भगवान् की पूजन के लिए चला किन्तु मार्ग में हाथी के पैर के नीचे दबकर मर गया और स्वर्ग-सम्पदा को प्राप्त हुआ । जब मेंढ़क जैसा एक क्षुद्र प्राणी भी पूजन के फल से स्वर्ग-लक्ष्मी का भोक्ता बना, तब जो भव्यजन विधिपूर्वक जिन-पूजन को करेगा, वह परम आनन्द का पात्र क्यों नहीं होगा? अतएव हे ज्ञानी जनो, मन, वचन, काय से जिन-पूजन को करो ॥१-४॥

जिनेश्वरस्याभिषवं सुदर्शनः प्रसाध्य पूजां स्तवनं दयाधनः ।
अथात्र नाम्ना विमलस्य वाहनं ददर्श योगीश्वरमात्मसाधनम् ॥२९॥

दयारूप धन के धारण करने वाले उस सुदर्शन ने जिन मंदिर में जाकर जिनेश्वर देव का अभिषेक किया, भक्तिभाव से पूजन और स्तवन किया।तदनन्तर उसने जिन-मन्दिर में ही विराजमान, आत्म-साधन करने वाले विमल वाहन नाम के योगीश्वर को देखा ॥२९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चातकस्य तनयो घनाघनमपि निधानमथवा निःस्वजनः ।
मुनिमुदीक्ष्य मुमुदे सुदर्शन इन्दुबिम्बमिव तत्र खञ्जनः ।।३०।।

उन मुनिराज के दर्शन कर वह सुदर्शन इस प्रकार अति हर्षित हुआ, जिस प्रकार कि चातक-शिशु महामेघ को देखकर, अथवा दरिद्र जन अकस्मात प्राप्त निधान (धन से भरे घड़े) को देककर और चकोर पक्षी चन्द्र बिम्ब को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होता है ।।३०।।

शिरसा सार्धं च स्वयमेनः समर्पितं मुनिपदयोस्तेन ।
दृग्भ्यां समं निबद्धौ हस्तौ कृत्वा हृद् गिरमपि प्रशस्तौ ।।३१।।

उस सुदर्शन मुनिराज के चरणों में भक्ति पूर्वक मस्तक को रखकर नमस्कार किया। उसने उनके चरणों में अपना मस्तक ही नहीं रखा, बल्कि उसके साथ अपने हृदय का समस्त पाप भी स्वयं समर्पित कर दिया। पुनः अपने दोनों हाथ जोड़कर दोनों नयनों के साथ उन्हें भी मुनिराज के दोनों चरणों में संलग्न कर दिया और शुद्ध हृदय से प्रशस्त वाणी - द्वारा उनकी स्तुति की ।।३१।।

समाशास्य यतीशानं न चाशाऽस्य यतः क्वचित् ।
पुनः स चेलालङ्कारं निश्चेलाचारमभ्यगात् ।।३२।।

यतः इस सुदर्शन के हृदय में किसी भी सांसारिक वस्तु के प्रति आशा (अभिलाषा) नहीं रह गई थी, अतः उसने इला - (पृथ्वी) के अलंकार स्वरूप उन यतीश्वर की भली-भांति से स्तुति कर स्वयं निश्चेल आचार को धारण किया, अर्थात् वह दिगम्बर मुनि बन गया ।।३२।।

छायेव तं साऽप्यनुवर्तमाना तथैव सम्पादितसम्विधाना ।
तस्यैव साधोर्वचसः प्रमाणाज्जनी जनुःसार्थमिति ब्रुवाणा ।।३३।।

सुदर्शन के साथ वह मनोरमा भी छाया के समान उसका अनुकरण करती रही और उसके समान ही उसने भी उसी के साथ अभिषेक, पूजन, स्तवन आदि के सर्व विधान सम्पादित किये। पुनः सुदर्शन के मुनि बन जाने पर उन्हीं योगिराज के वचनों को प्रमाण मानकर उसने भी अपने नारी जन्म को इस प्रकार (आर्यिका) बनकर सार्थक किया ।।३३।।

शुक्लैकवस्त्रं प्रतिपद्यमाना परं समस्तोपधिमुज्झिहाना ।
मनोरमाऽभूदधुनेयमार्या न नग्नभावोऽयमवाचि नार्याः ।।३४।।

मनोरमा ने आर्यिका के व्रत अंगीकार करतेहुए समस्त परिग्रह का त्यागकर एक मात्र श्वेत वस्त्र धारण किया और वह भी सुदर्शन के मुनि बनने के साथ ही आर्यिका बन गई। ग्रन्थकार कहते हैं कि यतः स्त्री के दिगम्बर दीक्षा का सर्वज्ञ देव ने विधान नहीं किया है, अतः मनोरमा ने एक श्वेत वस्त्र शरीर ढकने के लिए रक्खा और सर्व परिग्रह का त्याग कर दिया ।।३४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महिषी श्रुत्वा रहस्यस्फुटिं सम्विधाय निजजीवनत्रुटिम् ।
पाटलिपुत्रेऽभवद् व्यन्तरी प्राक् कदापि शुभभावनाकरी ।।३५।।

इधर अभयमती रानी रहस्य-भेद की बात सुनकर अपने जीवन का अपघात करके मरी और पहले कभी शुभ भावना करने के फल से पाटलि- पुत्र (पटना) नगर में व्यन्तरी देवी हुई ।।३५।।

दासी समासाद्य च देवदत्तां वेश्यामसौ तन्नगरेऽभजत्ताम् ।
वृत्तोक्तितोऽनूद्य तदीयचेतः सुदर्शनोच्चालनहेतवेऽतः ।।३६।।

रानी के अपघात कर लेने पर वह पण्डिता दासी भी चम्पानगर से भागी और उसी पाटलिपुत्र नगर में जाकर वहां की प्रसिद्ध देवदत्ता वेश्या को प्राप्त हो उसकी सेवा करने लगी। उसने अपने ऊपर बीते हुए सर्व वृतान्त को सुनाकर उस वेश्या का चित्त सुदर्शन को डिगाने के लिए तैयार कर दिया ।।३६।।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्याह्वयं,
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
तत्सम्प्रोक्तसुदर्शनेष्य चरिते सर्गोऽसकावुत्तमो,
दम्पत्योरुभयोर्व्यतीतिमुदगाद् दीक्षाविधानोऽष्टमः ।।

इस प्रकार श्रीमान् सेठ चतुर्भुज जी और घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीभूषण, बाल ब्रह्मचारी पं. भूरामल वर्तमान मुनि ज्ञानसागर-विरचित इस सुदर्शनोदय काव्य में सुदर्शन और मनोरमा की दीक्षा का वर्णन करने वाला आठवां सर्ग समाप्त हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ नवमः सर्गः

धरैव शय्या गगनं वितानं स्वबाहुमूलं तदिहोपधानम् ।
रविप्रतीपश्च निशासु दीपः शमी स जीयाद् गुणगह्वरीपः ॥१॥

पृथ्वी ही जिनकी शय्या है, आकाश ही जिनका चादर है, अपनी भुजाएँ ही जिनका तकिया है और रात्रि में चन्द्रमा ही जिनके लिए दीपक है, ऐसे परम प्रशम भाव के धारक, गुण गरिष्ठ साधुजन चिरकाल तक जीवें ॥१॥

भिक्षैव वृत्तिः करमेव पात्रं नोद्दिष्टमन्नं कुलमात्मगात्रम् ।
यत्रैव तिष्ठेत् स निजस्य देशः नैराश्यमाशा मम सम्मुदे सः ॥२॥

अयाचित भिक्षा ही जिनके उदर-भरण का साधन है अपना हस्ततल ही जिनके भोजन का पात्र है, जो अनुदिष्ट-भोजी हैं, अपना शरीर ही जिनका कुल-परिवार है, जहाँ पर बैठ जायें वही जिनका देश है, निराशता ही जिनकी आशा या सफलता है, ऐसे साधुजन मेरे हर्ष के लिए होवें ॥२॥

अहो गिरेर्गह्वरमेव सौधमरण्यदेशेऽस्य पुरप्रबोधः।
मृगादयो वा सहचारिणस्तु धन्यः स एवात्मसुखैकवस्तु ॥३॥

अहो, अरण्य-प्रदेश में ही जिन्हें नगर का बोध हो रहा है, गिरि की गुफा को ही जो भवन मान रहे हैं, मृगादिक वन-चारी जीव ही जिनके सहचारी (मित्र) हैं, ऐसे सहज आत्म-सुख का उपभोग करने वाले वे साधु पुरुष धन्य हैं ॥३॥

हारे प्रहारेऽपि समानबुद्धिमुपैति सम्पद्विपदोः समुद्धिः।
मृत्युं पुनर्जीवनमीक्षमाणः पृथ्वीतलेऽसौ जयतादकाणः ॥४॥

जो गले में पहिराये गयेहार में और गले पर किये गये तलवार के प्रहार में समान बुद्धि को रखते हैं, जो सम्पत्ति और विपत्ति दोनों में ही हर्षित रहते हैं, जो मृत्यु को नवजीवन मानते हैं, ऐसे सुदृष्ठि वाले साधुजन इस पृथ्वी तल पर सदा जयवन्त रहें ॥४॥

ज्ञानामृतं भोजनमेकवस्तु सदैव कर्मक्षपणे मनस्तु।
दिशैव वासःस्थितिरस्ति येषां नमामि पादावहमाशु तेषाम् ॥५॥

जिनका ज्ञानामृत ही एकमात्र भोजन है, जिसका मन सदा ही कर्म के क्षपण करने में उद्यत रहता है, दशों दिशाएं ही जिनके लिए वस्त्र स्वरूप हैं, ऐसे उन साधु महात्माओं के चरणों को मैं शीघ्र ही नमस्कार करता हूं ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रैणं तृणं तुल्यमुपाश्रयन्तः शत्रुं तथा मित्रतयाऽऽह्वयन्तः ।
न काञ्चने काञ्चनचित्तवृत्तिं प्रयान्ति येषामवृथा प्रवृत्तिः ॥६॥

हृषीकसन्निग्रहणैकवित्ताः स्वभावसम्भावनमात्रचित्ताः ।
दिवानिशं विश्वहिते प्रवृत्ता निःस्वार्थतः संयमिनो नुमस्तान् ॥७॥

जो नवयुवती स्त्रियों के परम अनुराग को तृण के समान निःसार समझते हैं, जोशत्रु को भी मित्ररूप से आह्वानन करते हैं, जो कांचन (सुवर्ण) पर भी अपनी चित्तवृत्ति को कभी नहीं जाने देते हैं, जिनकी प्रत्येक प्रवृत्ति प्राणिमात्र के लिए कल्याण रूप है, अपनी इन्द्रियों का भली-भांति निग्रह करना ही जिनका परम धन है, अपने आत्म-स्वभाव के निर्मल बनाने में ही जिनका चित्त लगा रहता है, जो दिन-रात विश्व के कल्याण करने में ही निःस्वार्थभाव से संलग्न है, ऐसे उन परम संयमी साधुजनों को हमारा नमस्कार है ॥६-७॥

इत्युक्तमाचारवरं दधानः भवन् गिरां सम्विषयः सदा नः ।
वनाद्वनं सम्व्यचरत्सुवेशः स्वयोगभूत्या पवमान एषः ॥८॥

इस प्रकार उपर कहे गये उत्कृष्ट आचार के धारण करने वाले वे सुवेष-धारी सुदर्शन महामुनि अपने योग-वैभव से जगत् को पवित्र करते हुए वन से वनान्तर में विचरण करने लगे। वे सदा काल ही हमारी वाणी के विषय बने रहें, अर्थात् हम सदा ही ऐसे सुदर्शन मुनिराज की स्तुति करते हैं ॥८॥

नाऽऽमासमापक्षमुताश्नुवानस्त्रिकालयोगं स्वयमादधानः ।
गिरौ मरौ वृक्षतलेऽयवा नः पूज्यो महात्माऽतपदेकतानः ॥९॥

वे सुदर्शन मुनिराज कभी एक मास और कभी एक पक्ष के उपवास के पश्चात पारणा करते, ग्रीष्म-काल में गिरि- शिखर पर, शीत-काल में मरुस्थल में और वर्षा-काल में वृक्ष-तल में प्रतिमा योग को धारण कर त्रिकाल योग की साधना करते हुए एकाग्रता से तपश्चरण करने लगे। इसी कारण वे महात्मा सुदर्शन हमारे लिए सदाकाल पूज्य हैं ॥९॥

विपत्रमेतस्य यथा करीरं निश्छायमासीत्सहसा शरीरम् ।
तपोऽनुभावं दधता तथापि तेनाधुना सत्फलताऽभ्यवापि ॥१०॥

अनेक प्रकार के घोर परीषह और उपसर्गों को सहन करता हुआ सुदर्शन मुनिराज का शरीर सहसा थोड़े ही दिनों में पत्र-रहित कैर वृक्ष के समान छाया-विहीन हो गया। अर्तात् शरीर में हड्डी और चाम ही अविशिष्ट रह गया। तथापि तप्के प्रभाव को धारण करने से उन्होंने अनेक प्रकार की ऋद्धि सिद्धियों की सफलता इस समय प्राप्त कर ली थी ॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्येवमत्युग्रतपस्तपस्यन् पुराकृतं स्वस्य पुनः समस्यन्।
प्रसञ्चरन् वात इवाप्यपापः क्रमादसौ पाटलिपुत्रमाप ॥११॥

इस प्रकार उग्र तप को तपते हुए और अपने पूर्वोपार्जित कर्म को निर्जीर्ण करते हुए वे निष्पाप सुदर्शन मुनिराज पवन के समान विचरते हुए क्रम से पाटलिपुत्र पहुंचे ॥११॥

चर्यानिमित्तं पुरि सञ्चरन्तं विलोक्य दासी तमुदारसन्तम् ।
सहामुना सङ्गमनाय रूपाजीवां समाहाद्भुतनाभिकूपाम् ॥१२॥

चर्या के निमित्त नगर में विचरते हुए उस उदार सन्त सुदर्शन को देखकर उस पण्डिता दासी ने अद्भुत गम्भीर नाभि वाली उस देवदत्ता वेश्या को इस (सुदर्शन) के साथ संगम करने के लिए कहा ॥१२॥

प्रत्यग्रहीत्सापि तमात्मनीनं चैनः क्षपन्तं सुतरामदीनम् ।
निभालयन्तं समरुपतोऽन्यं किं निर्धनं किं पुनरत्र धन्यम् ॥१३॥

आत्म-हित में संलग्न, पाप के क्षय करने में उद्यत, स्वयं अदीन भाव के धारक और क्या निर्धन और क्या भाग्यशाली धनी, सबको समान भाव से देखने वाले उन सुदर्शन मुनिराज को उस देवदत्ता वेश्या ने पडिगाह लिया ॥१३॥

अन्तः समासाद्य पुनर्जगाद कामानुरूपोक्तिविचक्षणाऽदः ।
किमर्थ माचार इयान् विचार्य बाल्येऽपि लब्धस्त्वकया वदाऽऽर्य॥१४॥

पुनः घर के भीतर ले जाकर काम-चेष्टा के अनुरुप वचन बोलने में विचक्षण उस वेश्या ने कहा- हे आर्य, इस अति सुकुमार बाल वय में ही यह इतना कठिन आचार क्या विचार कर आपने अंगीकार किया हैं, सो बतलाइये ॥१४॥

भूतैः समुद्भूतमिदं शरीरं विपद्य तावद् भवतात् सुधीर ।
प्राणात्यये का धिषणाऽस्य तेन जीवोऽस्तु यावन्मरणं सुखेन ॥१५॥

हे सुधीर-वीर, यह शरीर तो पृथ्वी आदि पंच भूतों से उत्पन्न हुआ है, जो कि प्राणों के वियोग होने पर बिखर कर उन्हीं पंच भूतों से मिल जायेगा। प्राण वियोग के पश्चात् भी जीव नामक कोई पदार्थ बना रहता है, इस विषय में क्या प्रमाण है ? इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह मरण पर्यन्त सुख से जीवन यापन करे ॥१५॥

प्रमन्यतां चेत्परलोकसत्ता यतस्तपस्याऽततु सम्भवत्ताम् ।
तथापि सा स्याज्जरसि क्व माद्यत्तारुण्यपूर्णस्य तवोचिताऽद्या ॥१६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थोड़ी देर के लिए यदि परलोक की सत्ता मान भी ली जाय, और उसके सुखद बनाने के लिए तपस्या करना भी आवश्यक समझा जावे, तो भी वह तपस्या वृद्धावस्था में ही करना उचित है, इस मदमाती तारुण्य-पूर्ण अवस्था में आज यह शरीर को सुखाने वाली तपस्या करना क्या तुम्हारा उचित कार्य है ॥१६॥

एकान्ततोऽसावुपभोगकालस्त्वयैतदारब्ध इहापि बाल।
भुक्त्यन्तरं तज्जरणार्थमम्भोऽनुयोग आस्तामध एव किम्भो ॥१७॥

हे भोले बालक, एकान्त से विषयों के भोगने का यह समय है, उसमें तुमने यह दुष्कर तप धारण कर लिया है, सो क्या यह तुम्हारे योग्य है? भोजन करने के पश्चात् उसके परिपाक के लिए जल का उपयोग करना अर्थात् पीना उचित है, पर भोजन को किये बिना ही उसका पीना क्या उचित कहा जा सकता है ॥१७॥

अहो मयाऽज्ञायि मनोज्ञमेतदङ्गं मदीयं भुवि किन्तु नेतः।
भवत्कमत्युत्तममित्यतोऽहं भवत्यदो यामि मनः समोहम् ॥१८॥

हे महाशय, मैं तो अभी तक यही समझती थी कि इस भूमण्डल पर मेरा यह शरीर ही सबसे अधिक सुन्दर है। किन्तु आज ज्ञात हुआ कि मेरा शरीर सुन्दर नहीं, बल्कि आपका शरीर अति उत्तम है - सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य युक्त है, अतएव मेरा मन सम्मोहित हो रहा है और मैं आपसे प्रार्थना कर रही हूँ ॥१८॥

अस्या भवान्नादरमेव कुर्यात्तनुः शुभेयं तव रूपधुर्या।
क्षिप्तोऽपि पङ्के न रुचिं जहाति मणिस्तथेयं सहजेन भाति ॥१९॥

आपका यह शुभ शरीर अति रूपवाला है और आप इसका आदर नहीं कर रहे हैं, प्रत्युत तपस्या के द्वारा इसे श्री-विहीन कर रहे हैं। जैसे कीचड़ में फेंका गया मणि अपनी सहज कान्ति को नहीं छोड़ता है, उसी प्रकार इस अवस्था में भी आपका शरीर सहज सौन्दर्य से शोभित हो रहा है ॥१९॥

अकाल एतद् घनघोररूपमात्तं समालोक्य यतीन्द्रभूपः।
निम्नोदितेनोरुसमीरणेन समुद्यतो वारयितुं क्षणेन ॥२०॥

असमय में आये हुये इस घनघोर संकटरूप मेघ-समूह को देखकर उसे वह यतीन्द्रराज सुदर्शन वक्ष्यमाण उपदेश रुप प्रबल पवन के द्वारा क्षण मात्र में निवारण करने के लिए उद्यत हुए ॥२०॥

सौन्दर्यमङ्गे किमुपैसि भद्रे घृणास्पंद तावदिदं महद्रे।
चर्मावृतं वस्तुतयोपरिष्टादन्तः पुनः केवलमस्ति विष्टा ॥२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे भद्रे, इस शरीर में तू क्या सौन्दर्य देखती है? यह तो महा घृणा का स्थान है। ऊपर से यह चर्म से आवृत्त होने के कारण सुन्दर दिख रहा है, पर वस्तुतः इसके भीतर तो केवल विष्टा ही भरी हुई है ॥२१॥

विनाशि देहं मलमूत्रगेहं वदामि नात्मानमतो मुदेऽहम् ।
स्वकर्मसत्तावशवर्तिनन्तु सन्तश्चिदानन्दममुं श्रयन्तु ॥२२॥

हे भोली, यह शरीर क्षण-विनश्वर है, मल-मूत्र का घर है, अतएव मैं कहता हूं कि यह कभी भी आत्मा के आनन्द का कारण नहीं हो सकता। और यही कारण है कि सन्तजन इसे चिदानन्दमयी आत्मा के लिए कारागार (जेलखाना) के समान मानते हैं, जिसमें कि अपने कर्म की सत्ता के वश-वर्ती होकर यह जीव बन्धन-बद्ध हुआ दुःख पाता रहता है ॥२२॥

एकोऽस्ति चारुस्तु परस्य सा रुग्दारिद्रयमन्यत्र धनं यथारुक् ।
इत्येवमालोक्य भवेदभिज्ञः कर्मानुगत्वाय दृढप्रतिज्ञः ॥२३॥

इस संसार में एक नीरोग दीखता है, तो दूसरा रोगी दिखाई देता है । एक के दरिद्रता दृष्टिगोचर होती है, तो दूसरे के अपार धन देखने में आता है। संसार की ऐसी परस्पर विरोधी अवस्थाओं को देखकर ज्ञानी जन कर्म की परवशता मानने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ होते हैं।

भावार्थ - संसार की उक्त विषम दशाएं ही जीव, कर्म और परलोक के अस्तित्व को सिद्ध करती हैं ॥२३॥

बालोऽस्तु कश्चित्स्थविरोऽथवा तु न पक्षपातः शमनस्य जातु।
ततः सदा चारुतरं विधातुं विवेकिनो हृत्सततं प्रयातु ॥२४॥

कोई बालक हो, अथवा कोई वृद्ध हो, यमराज के इसका कभी कोई पक्षापात (भेद-भाव) नहीं है, अर्थात् जब जिसकी आयु पूर्ण हो जातीहै, तभी वह मृत्यु के मुख में चला जाता है । इसलिये विवेकी जनों का हृदय सदा आत्म कल्याण करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है ॥२४॥

भद्रे त्वमद्रेरिव मार्गरीतिं प्राप्ता किलास्य प्रगुणप्रणीतिम् ।
कठोरतामभ्युपगम्य याऽसौ कष्टाय नित्यं ननु देहिराशौ ॥२५॥

हे भद्रे, तू अद्रि (पर्वत) के समान विषम मार्ग वाली अवस्था को प्राप्त हो रही है, जिसकी टेढ़ी-मेढ़ी कुटलिता और कठोरता को प्राप्त होकर नाना प्राणी नित्य ही कष्ट पाया करते हैं ॥२५॥

अवेहि नित्यं विषयेषु कष्टं सुखं तदात्मीयगुणं सुदृष्टम् ।
शुष्कास्थियुक् श्वाऽऽस्यभवं च रक्तमस्थ्युत्थमेतीति तदेकभक्तः ॥२६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रियों के विषयों में नित्य ही कष्ट है, (उनके सेवन में रंच मात्र भी सुख नहीं है) क्योंकि सुख तो आत्मा का गुण माना गया है। (वह बाह्य विषयों में कहाँ प्राप्त हो सकता है।) देखो-सूखी हड्डी को चबाने वाला कुत्ता अपने मुख में निकले हुए रक्त का स्वाद लेकर उसे हड्डी से निकला हुआ मानता है। यही दशा उन संसारी जीवों की है जो सुख को विषयों से उत्पन्न हुआ मानकर रात-दिन उनके सेवन में अनुरक्त रहते हैं ॥२६॥

इत्येवं प्रत्युत विरागिणं समनुभवन्तं स्वात्मनः किणम् ।
न्यपातयत्तमिदानीं तल्पे पुनरपि भावयितुं स्मरकल्पे ॥२७॥

इस प्रकार अनुराग के स्थान पर विराग का उपदेश देने वाले और अपने आत्मा के गुण का चिन्तवन करने वाले उन सुदर्शन मुनिराज को फिर भी कामवासना युक्त बनाने के लिए उस वेश्या ने अपनी काम तुल्य शय्या पर हठात् पटक लिया (और इस प्रकार कहने लगी) ॥२७॥

देवदत्तां सुवाणीं सुवित् सेवय ॥स्थायी॥
चतुराख्यानेष्वभ्यनुयोक्त्रीं भास्वदङ्गतामिह भावय ॥देवदत्तां. १॥
अनेकान्तरङ्गस्थल भोक्त्रीं किञ्चिद्वृत्तमुखामाश्रय ॥देवदत्तां.२॥
बलिरत्नत्रयमृदुलोदरिणीं नाभिभवार्थां सुगुणाश्रय ॥देवदत्तां. ३॥
भूरानन्दस्येयमितीदं मत्वा मनः सदैनां नय ॥देवदत्तां. ॥४॥

हे सुविज्ञ, इस मधुर-भाषिणी देवदत्ता को जिनवामी के समान सेवन करो। जिनवाणी जैसे चार प्रकार के अनुयोगों में विभक्त है और सुन्दर द्वादश अंगो कों धारण करती है, उसी प्रकार यह देवदत्ता भी लोगों को चतुर आख्यानकों में निपुण बना देने वाली और सुन्दर अंगों को धारण करने वाली है। जिनवाणी जैसे अनेकान्त सिद्धान्त की किञ्चिद् कथञ्त् पद की प्रमुखता का आश्रय लेकर प्रतिपादन करती है, उसी प्रकार यह देवदत्ता भी अनेक द्वार वाले रङ्गस्थल का उपभोग करती है और कुछ गोल मुख को धारण करती है। जिनवाणी जैसे प्रबल एवं मृदुल रत्नत्रय को धारण करती है, उसी प्रकार यह देवदत्ता भी अपने उदर भाग में मृदुल तीन बलियों को धारण करती है और हे सुगुणों के आश्रयभूत सुदर्शन, जिनवाणी जैसे कभी भी अभिभव (पराभव) को नहीं प्राप्त होने वाले अकाट्य अर्थ का प्रति पादन करती है, उसी प्रकार यह देवदत्ता भी अपनी नाभि में अगाध गाम्भीर्य रुप अर्थ को धारण करती है। इस प्रकार जैसे जिनवाणी तुम्हें आनन्द की देने वाली है, उसी के समान इस दैवदत्ता को भी आनन्द की देने वाली मानकर अपने मन को सदा इसमें लाओ और जिनवाणी के समान इसका (मेरा) सेवन करो ॥१-४॥

इह पश्याङ्ग सिद्धशिला भाति ॥स्थायी॥
उच्चैस्तनपरिणामवतीयं मृदुमुक्तात्मकताख्याति ॥इह पश्याङ्ग १॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सङ्गच्छन् यत्र महापुरुषः को नाऽनङ्गदशां याति ।इह पश्याङ्ग२॥
भूरानन्दस्येयमतोऽन्या काऽस्ति जगति खलु शिवतातिः ॥३॥

हे प्रिय, यदि तुम सिद्धशिला पर पहुँचने के इच्छुक हो, तो यहां देखो - मेरे शरीर में यह सिद्धशिला शोभायमान हो रही है। जैसे सिद्धशिला लोक के अग्र भाग में सबसे ऊपर अवस्थित मानी गई है और जहां पर मुक्त जीव निवास करते हैं, उसी प्रकार मेरे इस शरीर में ये अति उच्च स्तन मण्डल मृदु मुक्ताफलों (मोतियो) वाले हार से सुशोभित हो रहे हैं। जैसे उस सिद्धशिला पर पहुँचने वाला महापुरुष अनङ्ग (शरीर-रहित) दशा को प्राप्त होता है, वैसे ही मेरे स्तन-मण्डल पर पहुँचने वाला भाग्यशाली पुरुष भी अनङ्ग दशा (काम भाव) को प्राप्त हो जाता है। अतः इस जगत् में यह देवदत्ता रुप सिद्धशिला ही अद्वितीय आनन्द का स्थान है। इसके सिवाय दूसरी और कोई कल्याण-परम्परा वाली सिद्धशिला नहीं है ॥२-३॥

इत्यादिसङ्गीतिपरायणा च सा नानाकुचेष्टा दधती नरङ्क्षा ।
कामित्वमापादयितुं रसादित ऐच्छत्समालिङ्गन चुम्बनादितः ॥२८॥

इस प्रकार श्रृङ्गार-रस से भरे हुए सुन्दर संगीत-गान में परायण उस देवदत्ता वेश्या ने मनुष्य को अपने वश में करने वाली नाना कुचेष्टाएं की और आलिंगन, चुम्बनादिक सरस क्रियाओं से सुदर्शन मुनिराज में काम-भाव जागृत करने के लिए प्रयत्न करने लगी ॥२८॥

दारूदितप्रतिकृतीङ्गशरीरदेशः पाषाणतुल्यहृदयः समभूत्स एषः ।
यस्मिन्निपत्य विफलत्वमगान्नरे सा तस्या अपाङ्गशरसंहतिरप्यशेषा ॥२९॥

किन्तु देवदत्ता के प्रबल कामोत्पादक प्रयत्नों के करने पर भी वे सुदर्शन मुनिराज काष्ठ निर्मित मानव-पुतले के समान स्तब्धता धारण कर पाषाण-तुल्य कठोर हृदयवाले बन गये, जिससे कि उस देवदत्ता के समस्त कटाक्ष-वाणों का समूह भी उनके शरीर पर गिरकर विफलता को प्राप्त हो रहा था।

भावार्थ - सुदर्शन मुनिराज ने अपने शरीर और मन का ऐसा नियमन किया कि उस वेश्या की सभी चेष्टाएं निष्फल रहीं और वे काठ के पुतले के समान निर्विकार ध्यानस्थ रहे ॥२९॥

यावद्दिनत्रयमकारि च मर्त्यरत्नमुच्चालितुं समरसात्तकया प्रयत्नः।
किन्त्वेष न व्यचलदित्यनुविस्मयं सा गीतिं जगाविति पुनः कलितप्रशंसा ॥३०॥

इस प्रकार तीन दिन तक उस देवदत्ता वेश्या ने पुरुष-शिरोमणि उन सुदर्शन मुनिराज को साम्यभाव से विचलित करने के लिए बहुत प्रयत्न किये, किन्तु वे विचलित नहीं हुए। तब वह अति आश्चर्य को प्राप्त होकर उनकी प्रशंसा करती हुई इस प्रकार उनके गुण गाने लगी ॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवालीयो रागः

जिताक्षाणामहो धैर्यं महो दृष्टवा भवेदारात् ।।स्थायी।।
जगन्मित्रेऽब्जवत्तेषां मनो विकसति नियतिरेषा ।
भवति दोषाकरे येषां मुद्रणैवाप्तविस्तारा ।।जिताक्षाणा०।।१।।

सम्पदि तु मृदुलतां गत्वा पत्रतामेत्यहो तत्वात् ।
विपदि वज्रायते सत्वाद वृत्तिरेषाऽस्ति समुदारा ।।जिताक्षाणा० २।।

जगत्यमृतायमानेभ्यः सदङ्कुरमीक्षमाणेभ्यः ।
स्वयंभूराजते तेभ्यः सुरभिवत्सत्क्रियांधारा ।।जिताक्षाणा० ।।३।।

अहो, जितेन्द्रिय पुरुषों के धैर्य को देखकर मुझे इस समय बहुत आनन्द हो रहा है, जिसका कि मन जगत्-हितकारी मित्र रुप सूर्य के देखने पर तो कमल के समान विकसित हो जाता है और दोषाकर-चन्द्र के समान दोषों के भण्डार पुरुष को देखकर जिनका मन मुद्रित हो जाता है, ऐसी जिनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, ये जितेन्द्रिय पुरुष धन्य हैं। ऐसे महापुरुष सम्पत्ति प्राप्त होने पर तो कोमल पत्रों को धारण करने वाली मृदु लता के समान तत्त्वतः दूसरों के साथ नम्रता और परोपकार करने रुप पात्रता को धारण करते हैं और विपत्ती आने पर धैर्य धारण कर वज्र के समान कठोरता को प्राप्त हो जाते हैं, ऐसी जिनकी अति उदार सात्विक प्रवृत्ति होती हैं, वे जितेन्द्रिय पुरुष धन्य हैं। जो जगत में दुःख सन्तप्त जनों के लिए अमृत के समान आचरण करने वाले हैं और सदाचार पर सदा दृष्टि रखने वाले हैं, ऐसे उन महापुरुषों का आदर सत्कार करने के लिए यह समस्त भूमंडल भी वसन्त ऋतु समान सदा स्वयं उद्यत रहता है ।।१३।।

इत्येवं पदयोर्दयोदयवतो नूनं पतित्वाऽथ सा,
सम्प्राहाऽऽदरिणी गुणेषु शमिनस्त्वात्मीयनिन्दादृशा ।
स्वामिंस्त्वय्यपराद्धमेवमिह यन्मौढ्यान्मया साम्प्रतं,
क्षन्तव्यं तदहो पुनीत भवता देयं च सूक्तामृतम् ।।३१।।

इस प्रकार स्तुति कर और उन परम दयालु एवं प्रशान्त मूर्ति सुदर्शन मुनिराज के चरणों में गिरकर उनके गुणों में आदर प्रकट करती हुई, तथा अपने दोषों की निन्दा करती हुई वह देवदत्ता बोली - हे स्वामिन मैंने मोह के वश होकर अज्ञान से जो इस समय आपका अपराध किया है, उसे आप क्षमा कीजिए और हे पतित पावन, उपदेश रुप वचनामृत देकर आप मेरा उद्धार कीजिए ।।३१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सानुकूलमिति श्रुत्वा वचनं पण्ययोषितः.
इति सोऽपि पुनः प्राह परिणामसुखावहम् ॥३२॥

उस देवदत्ता वेश्या के इस प्रकार अनुकूल वचन सुनकर सुदर्शन मुनिराज ने परिणाम (आगामी काल) में सुख देने वाले वचन कहे ॥३२॥

फलं सम्पद्यते जन्तोर्निजोपार्जितकर्मणः।
दातुंसुखं च दुःखं च कस्मै शक्नोति कः पुमान् ॥३३॥

मुनिराज ने कहा – हे देवदत्ते, अपने पूर्वोपार्जित कर्म का फल जीव को प्राप्त होता है । अन्यथा किसी को सुख या दुःख देने के लिए कौन पुरुष समर्थ हो सकता है ? ॥३३॥

जन आत्ममुखं दृष्टवा स्पष्टमस्पष्टमेव वा।
तुष्यति द्वेष्टि चाभ्यन्तो निमित्तं प्राप्य दर्पणम् ॥३४॥

देखो – मनुष्य दर्पण में अपने स्वच्छ मुख को देखकर प्रसन्न होता है और मलिन मुख को देखकर दुखी होता है, तो इसमें दर्पण का क्या दोष है? इसी प्रकार दर्पण के समान वाह्य निमित्त कारण को पाकर पुण्यकर्म के उदय से सुख प्राप्त होने पर यह संसारी जीव सुखी होता है और पाप कर्म के उदय से दुःख प्राप्त होने पर दुखी होताहै, तो इसमें निमित्त कारण का क्या दोष है? यह तो अपने पुण्य और पाप कर्म का ही फल है ॥३४॥

कर्तव्यमिति शिष्टस्य निमित्तं नानुतिष्ठतात् ।
न चान्यस्मै भवेज्जातु दुर्निमित्तं स्वचेष्टया ॥३५॥

इसलिए शिष्ट पुरुष का कर्तव्य है कि वह निमित्त कारण को बुरा भला न कहे। हां, अपनी बुरी चेष्टा से वह दूसरे के लिए कदाचित भी स्वयं दुर्निमित्त न बने ॥३५॥

आत्मनेऽपरोचमानमन्यस्मै नाऽऽचरेत् पुमान् ।
सम्पतति शिरस्येव सूर्यायोच्चालितं रजः ॥३६॥

अतएव मनुष्य को चाहिए कि अपने लिए जो कार्य अरुचिकर हो, उसे वह दूसरे के लिए भी आचरण न करे । देखो – सूर्य के लिए उछाली गई धूलि अपने ही शिर पर आकर पड़ती है, उस तक तो वह पहुँचती भी नहीं है ॥३६॥

मनो वचः शरीरं स्वं सर्वस्मै सरलं भजेत् ।
निरीहत्वमनुध्यायेद्यथाशक्त्यर्तिहानये ॥३७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने मन, वचन और काय को सबके लिए सरल रखे, अर्थात् सबके साथ निश्छल सरल व्यवहार करे। तथा आकुलता को दूर करने के लिए निरीहता (सन्तोषपना) को धारण करे ॥३७॥

बाह्यवस्तुनि या वाञ्छा सैषा पीडाऽस्ति वस्तुतः ।
सम्पद्यते स्वयं जन्तोस्तन्निवृत्तो सुखस्थितिः ॥३८॥

जीव की बाहिरी वस्तु में जो इच्छा होती है, वस्तुतः वही पीड़ा है, उसे पाने की इच्छा का नाम दुःख है। उस इच्छा के दूर होने पर जीव को सुखमयी स्थिति स्वयं प्राप्त हो जाती है, उसे पाने के लिए किसी प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती ॥३८॥

तस्योपयोगतो वाञ्छा मोदकस्योपशाम्यति।
किञ्चित्कालमतिक्रम्य द्विगुणत्वमथाञ्चति ॥३९॥

अज्ञानी जीव इच्छित वस्तु का उपभोग करके इच्छा को शान्त करना चाहता है, किन्तु कुछ काल के पश्चात् वह इच्छा दुगुनी हो करके आ खड़ी होती है। जैसे मिठाई खाने की इच्छा मोदक के उपभोग से कुछ देर के लिए उपशान्त हो जाती है, परन्तु थोड़ी देर के बाद ही पुनः अन्य पदार्थों के खाने की इच्छा उत्पन्न होकर दुःख देने लगती है। अतः इच्छा की पूर्ति करना सुख प्राप्ति का उपाय नहीं है, किन्तु इच्छा को उत्पन्न नहीं होने देना ही सुख का साधन है ॥३९॥

भोगोपभोग तो वाञ्छा भवेत् प्रत्युत दारुणा।
वह्निः किं शान्तिमायाति क्षिप्यमाणेन दारुणा ॥४०॥

भोग और उपभोग रुप विषयों के सेवन करने से तो इच्छा रुप ज्वाला और भी अधिक दारुण रुपसे प्रज्वलित होती है। अग्नि में क्षेपण की गई लकड़ियों से क्या कभी अग्नि शान्ति को प्राप्त होती है? ॥४०॥

ततः कुर्यान्महाभाग इच्छाया विनिवृत्तये।
सदाऽऽनन्दोपसम्पत्त्यै त्यागस्यैवावलम्बनम् ॥४१॥

अतएव सदा आनन्द की प्राप्ति के लिए महाभागी पुरुष इच्छा की निवृत्ति करे और त्याग भाव का ही आश्रय लेवें ॥४१॥

इच्छानिरोधमेवातः कुर्वन्ति यतिनायकाः ।
पादौ येषां प्रणमन्ति देवाश्चतुर्णिकायकाः ॥४२॥

इच्छा के निरोध से ही सच्चे सुख की प्राप्ति होती है, इसीलिए बड़े- बड़े योगीश्वर लोग अपनी इच्छाओं का निरोध ही करते हैं। यही कारण है कि चतुर्निकाय के देव आकर उनके चरणों को नमस्कार करते हैं ॥४२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मारयित्वा मनो नित्यं निगृह्णन्तीन्द्रियाणि च।
बाह्याडम्बरतोऽतीतास्ते नरा योगिनो मताः ॥४३॥

जो पुरुष अपने चंचल मन का नियंत्रण कर इन्द्रियों का निग्रह करते हैं और बाहिरी आडम्बर से रहित रहते हैं, वे ही पुरुष योगी कहलाते हैं ॥४३॥

ये बाह्यवस्तुषु सुखं प्रतिपादयन्ति,
तेऽक्षैर्हता वपुषि चात्मधियं श्रयन्ति । हिंसामृषाऽन्यधनदारपरिग्रहेषु,
सक्ताः सुरापलपरा निपतन्त्यकेषु ॥४४॥

जो लोग बाहिरी वस्तुओं में सुख बतलाते हैं और इन्द्रिय-विषयों से आहत होकर शरीर में ही आत्मबुद्धि करते हैं, तथा जो हिंसा, असत्य-संभाषण, पर धन हरण, पर स्त्री सेवन और परिग्रह में आसक्त हो रहे हैं, मदिरा और मांस के सेवन में संलग्न हैं, वे लोग सुख के स्थान पर दुःखों को ही प्राप्त होते हैं ॥४४॥

अस्वास्थ्यमेतदापन्न नरकाख्यतया नराः ।
भूगर्भे रोगिणो भूत्वा सन्तापमुपयान्त्यमी ॥४५॥

उपर्युक्त पापों का सेवन करने वाले लोग इस भूतल पर ही अस्वस्थ होकर और रोगी बनकर नरक जैसे तीव्र सन्ताप को प्राप्त होते हैं ॥४५॥

हस्ती स्पर्शनसम्वशो भुवि वशामासाद्य सम्बद्ध्यते,
मीनोऽसौ वडिशस्य मांसमुपयन्मृत्युं समापद्यते।
अम्भोजान्तरितोऽलिरेवमधुना दीपे पतङ्गः पतन्।
सङ्गीतैकवशङ्गतोऽहिरपि भो तिष्ठेत्करण्डं गतः ॥४६॥

और भी देखो - संसार में हाथी स्पर्शनेन्द्रिय के वश से नकली हथिनी के मोह पाश को प्राप्त होकर सांकलों से बांधा जाता हैं, मछली वंशी में लगे हुए मांस को खाने की इच्छा से कांटे में फंसकर मौत को प्राप्त होती है, गन्ध का लोलुपी भौंरा कमल के भीतर ही बन्द होकर मरण को प्राप्त होता है, रुप के आकर्षण से प्रेरित हुआ पंतगा दीप-शिखा में गिरकर जलता है और संगीत सुनने के वशंगत हुआ सर्प पकड़ा जाकर पिटारे में पड़ा रहता है ॥४६॥

एकैकाक्षवशेनामी विपत्तिं प्राप्तुवन्ति चेत् ।
पञ्चेन्द्रियपराधीनः पुमाँस्तत्र किमुच्यताम् ॥४७॥

जब ये हाथी आदि जीव एक-एक इन्द्रिय के वश होकर उक्त प्रकार की विपत्तियों को प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते हैं, तब उन पाँचों ही इन्द्रियों के पराधीन हुआ पुरुष कौन-कौन सी विपत्तियों को नहीं प्राप्त होगा, यह क्या कहा जाय ॥४७॥

ततो जितेन्द्रियत्वेन पापवृत्तिपरान्मुखः।
सुखमालभतां चित्तधारकः परमात्मनि ॥४८॥

इसलिए पाप रूप प्रवृत्तियों से परान्मुख रहने वाला मनुष्य जितेन्द्रिय बनकर और परमात्मा में चित्त लगाकर सुख को प्राप्त करता हैं ॥४८॥

अहो मोहस्य माहात्म्यं जनोऽयं यद्वशङ्गतः ।
पश्यन्नपि न भूभागे तत्त्वार्थं प्रतिपद्यते ॥४९॥

अहो, यह मोह का ही माहात्म्य है कि जिसके वश हुआ यह जीव संसार में सत्यार्थ मार्ग को देखता हुआ भी उसे स्वीकार नहीं करता है और विपरीत मार्ग को स्वीकार कर दुःखों को भोगता है ॥४९॥

अङ्गेऽङ्गिभावमासाद्य मुहुरत्र विपद्यते।
शैलूष इव रङ्गेऽसौ न विश्रामं प्रपद्यते ॥५०॥

इस संसार में अज्ञ प्राणी शरीर में ही जीवपने की कल्पना करके बार-बार विपत्तियों को प्राप्त होता है। जैसे रगंभूमि पर अभिनय करने वाला अभिनेता नये-नये स्वांग धारण कर विश्राम को नहीं पाता है ॥५०॥

अनेकजन्मबहुत मर्त्यभावोऽतिदुर्लभः ।
खदिरादिसमाकीर्णे चन्दनद्रु मवद्वने ॥५१॥

अनेक प्रकार के जन्म और योनियों वाले इस संसार में मनुष्यपना अति दुर्लभ है, जैसे कि खैर, बबूल आदि अनेक वृक्षों से व्याप्त वन में चन्दन वृक्ष का मिलना अति कठिन है ॥५१॥

भाग्यतस्तमधीयानो विषयाननुयाति यः ।
चिन्तामणिं क्षिपत्येष काकोड्डायनहेतवे ॥५२॥

भाग्य से ऐसे अति दुर्लभ मनुष्य भव को पा कर जो मनुष्य विषयों के पीछे दौड़ता है, वह ठीक उस पुरुष के सदृश है, जो अति दुर्लभ चिन्तामणि रत्न को पाकर उसे काक उड़ाने के लिए फेंक देता है ॥५२॥

स्वार्थस्येयं पराकाष्ठा जिह्वालाम्पटच्यपुष्टये।
अन्यस्य जीवनमसौ संहरेन्मानवो भवन् ॥५३॥

स्वार्थ की यह चरम सीमा है कि अपने जिह्वा की लम्पटता को पुष्ट करने के लिए यह मानव हो करके भी अन्य प्राणी के जीवन का संहार करे और दानव बने।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ – जो अपनी जीभ के स्वाद के लिए दूसरे जीव को मारकर उसका मांस खाते हैं, वे मनुष्य होकर के भी राक्षस हैं ॥५३॥

जीवो मृतिं न हि कदाप्युपयाति तत्त्वात्,
प्राणाः प्रणाशमुपयान्ति यथेति कृत्वा।
कर्ता प्रमाद्यति यतः प्रतिभाति हिंसा,
पापं पुनर्विदधती जगते न किं सा ॥५४॥

यद्यपि तात्त्विक दृष्टि से जीव कभी भी मरण को नहीं प्राप्त होता है, तथापि मारने वाले पुरुष के द्वारा शरीर–संहार के साथ उसके द्रव्य प्राण विनाश को प्राप्त होते हैं और दूसरे के प्राणों का वियोग करते समय यतः हिंसक मनुष्य कषाय के आवेश होने के कारण प्रमाद–युक्त होता है, अतः उस समय हिंसा स्पष्ट प्रतिभासित होती है, फिर यह हिंसा जगत् के लिए क्या पाप को नहीं उत्पन्न करती है ॥५४॥

भावार्थ – यद्यपि चेतन आत्मा अमर है, तथापि शरीर के घात के साथ प्राणों का विनाश होता है। मरने वाले के शस्त्र घात जनित पीड़ा होती है और मारने वाले के परिणाम संक्लेश युक्त होते हैं, अतः द्रव्य और भाव दोनों प्रकार की हिंसा जहां पर हो, वहां पर पाप का बन्ध नियम से होगा।

अशनं तु भवेद् दूरे न नाम श्रोतुमर्हति।
पिशितस्य दयाधीनमानसो ज्ञानवानसौ ॥५५॥

मांस के खाने की बात तो बहुत दूर है, ज्ञानवान् दयालु चित्तवाला मनुष्य तो मांस का नाम भी नहीं सुनना चाहता ॥५५॥

सन्धानं च नवनीतमगालितजलं सदा।
पत्रशाकं च वर्षासु नाऽऽहर्तव्यं दयावता ॥५६॥

इसी प्रकार दयालु पुरुष को सर्व प्रकार के अचार, मुरब्बे, मक्खन, अगालित, जल और वर्षा ऋतु में पत्र वाले शाक भी नहीं खाना चाहिए क्योंकि इन सबके खाने में अपरिमित त्रस जीवों की हिंसा होती है ॥५६॥

फलं वटादेर्बहुजन्तुकन्तु दयालवो निश्यशनं त्यजन्तु।
चर्मोपसृष्टं च रसोदकादि विचारभाजा विभुना न्यगादि ॥५७॥

दयालु जनों को बड़, पीपल, गूलर, अंजीर, पिलखन आदि अनेक जन्तु वाले फल नहीं खाना चाहिए। तथा उन्हें रात्रि में भोजन करने का त्याग भी करना चाहिए। चमड़े में रखे हुए तैल, घृत आदि रस वाले पदार्थ और जल आदि भी नहीं खाना-पीना चाहिए, ऐसा सर्व प्राणियों के कल्याण का विचार करने वाले सर्वज्ञ देव ने कहा है ॥५७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्नेन नाद्युर्द्विदलेन साकमामं पयो दध्यपि चाविपाकम् ।
थूत्कानुयोगेन यतोऽत्र जन्तूत्पत्तिं सुधीनां धिषणाः श्रयन्तु ॥५८॥

चना, मूँग, उडद आदि द्विदल वाले अन्न के साथ अग्नि पर बिना पका कच्चा दूध, दही और छांछ भी नहीं खाना चाहिए, क्योंकि इन वस्तुओं को खाने पर थूक के संयोग से तुरन्त त्रस जीवों की उत्पत्ति हो जाती है, यह बात बुद्धिमानों को बुद्धि-पूर्वक स्वीकार करना चाहिए ॥५८॥

क्षौद्रं किलाक्षुद्रमना मनुष्यः किमु सञ्चरेत् ।
भङ्गा-तमाखु सुलफादिषु व्यसनितां हरेत् ॥५९॥

विचार-शील मनुष्य क्या मद्य मांस की कोटि वाले मधु को खायेगा? कभी नहीं। तथा उसे भांग, तमाखू, सुलफा, गांजा आदि नशीली वस्तुओं के सेवन करने के व्यसन का भी त्याग करना चाहिए ॥५९॥

भावार्थ - विचारशील मनुष्य को उपर्युक्त सभी अभक्ष्य, अनुपसेव्य, अनिष्ट, त्रस-बहुल एवं अनन्त स्थावर काय वाले पदार्थों के खाने का त्याग करना चाहिए, यह जितेन्द्रियता की पहिली सीढ़ी या शर्त है ।

गुणप्रसक्त्याऽतिथये विभज्य सदन्नमातृप्ति तथोपभुज्य।
हितं हृदा स्वेतरयोर्विचार्य तिष्ठेत्सदाचारपरः सदाऽऽर्यः ॥६०॥

गुणों में अनुराग पूर्वक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अतिथि को शुद्ध भोजन कराकर स्वयं भोजन करे तथा सदा ही अपने और दूसरे का हृदय से हित विचार कर आर्य पुरुष को सदाचार में तत्पर रहना चाहिए। ॥६०॥

भावार्थ - अन्तदीपकरूपसे ग्रन्थ कार ने इस श्लोक में अतिथि संविभाग व्रत का उल्लेख किया है, जिससे उनका अभिप्राय यह है कि इसी प्रकार विचारशील श्रावक को इसके पूर्ववर्ती ग्यारह व्रतों को विधिवत् सदा पालन करना चाहिए। यह जितेन्द्रिय श्रावक की दूसरी सीढ़ी या प्रतिमा है।

मध्ये दिनं प्रातरिवाथ सांय यावच्छरीरं तनुमानमायम् ।
स्मरेदिदानीं परमात्मनस्तु सदैव यन्मङ्गलकारि वस्तु ॥६१॥

प्रातःकाल के समान दिन के मध्य भाग में और सांयकाल सदा ही परमात्म का स्मरण करे। यह परमात्म गुण स्मरण ही जीव का वास्तविक मंगल करने वाला है। इस प्रकार तीनो सन्ध्याओं में भगवान् का स्मरण जब तक शरीर जीवित रहे तब तक करते रहना चाहिए ॥६१॥

भावार्थ - जीवन-पर्यन्त त्रिकाल सामायिक करना यह श्रावक की तीसरी सीढ़ी है।

कुर्यात्पुनः पर्वणि तूपवासं निजेन्द्रियाणां विजयी सदा सन् ।
कृतोऽपि कुर्यान्न मनःप्रवृत्तिमयोग्यदेशे प्रशमैकवृत्तिः ॥६२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टमी और चतुर्दशी पर्व के दिन अपनी इन्द्रियों को जीतते हुए सदा ही उपवास करना चाहिए और उस दिन परम प्रशम भाव को धारण कर अपने मन की प्रवृत्ति को किसी भी अयोग्य देश में कभी नहीं जाने देना चाहिए॥ ६२॥

भावार्थ - प्रत्येक पर्व के दिन यथाविधि उपवास करे। यह श्रावक की चौथी सीढ़ी है।

या खलु लोके फलदलजातिर्जीवननिर्वहणाय विभाति।
यावन्नाग्निपक्वतां यातितावन्नहि संयमि अश्नाति ॥६३॥

जीवन-निर्वाह के लिए लोक में जो भी फल और पत्र जाति की वनस्पति आवश्यक प्रतीत होती है, वह जब तक अग्नि से नहीं पकाई जाती है, तब तक संयमी मनुष्य उसे नहीं खाता है॥६३६॥

भावार्थ - सचित्त वस्तु को अग्नि पर पकाकर अचित्त करके खाना और सचित्त वस्तु के सेवन का त्याग करना, यह जितेन्द्रियता की पांचवीं सीढ़ी है।

एकाशनत्वमभ्यस्येद् द्व्यशनोऽह्नि सदा भवन् ।
मानवत्वमुपादाय न निशाचरतां व्रजेत ॥६४॥

छठी सीढ़ी वाला जितेन्द्रिय पुरुष दिन में दो बार से अधिक खान-पान न करे और एक बार खाने का अभ्यास करे। तथा मानवता को धारण कर निशाचरता को न प्राप्त हो, अर्थात् रात्रि-भोजन का त्याग करे, रात्रि में खाकर निशाचर (राक्षस और नक्तचर) न बने ॥६४॥

समस्तमप्युज्झतु सम्व्यवायं वाञ्छेन्मनागात्मनि चेदवायम् ।
अक्षेषु सर्वेष्वपि दर्पकारीदमेव येनापि मनो विकारि ॥६५॥

यदि विवेकशील मनुष्य आत्मा में मन को कुछ काल के लिए भी लगाना चाहता है, तो वह सर्व प्रकार के काम-सेवन का त्याग कर देवे।क्योंकि इस काम-सेवन से विकार को प्राप्त हुआ मन सर्व ही इन्द्रियों के विषयों में स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने वाला हो जाता है। यह जितेन्द्रियता की सातवीं सीढ़ी है ॥६५॥

चेदिन्द्रियाणां च हृदो न दृप्तिः कुतो बहिर्वस्तुषु संप्रक्लृप्तिः।
यतो भवेदात्मगुणात्परत्र प्रयोगिता संयमिनेयमत्र ॥६६॥

यदि हृदय में इन्द्रियों के विषय सेवन का दर्प न रहा, अर्थात् ब्रह्मचर्य को धारण कर लेने से इन्द्रिय-विषयों पर नियंत्रण पा लिया, तो फिर बाहिरी धन, धान्यादि वस्तुओं में संकल्प या मूर्च्छा रहना कैसे संभव है? और जब बाहिरी वस्तुओं के संचय में मूर्च्छा न रहेगी, तब वह उन्हें और भी संचय करने के लिए खेती-व्यापार आदि के आरम्भ-समारम्भ क्यों करेगा । इस प्रकार ब्रह्मचारी मनुष्य आगे बढ़ कर आरम्भ-उद्योग का त्याग कर अपने आत्मिक गुणों की प्राप्ति के उद्योग में तत्पर होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयमी मनुष्य का आत्म- गुण प्राप्ति की ओर उपयुक्त एवं उद्यत होना ही जितेन्द्रियता की आठवीं सीढ़ी है ॥६६॥

मदीयत्वं न चाङ्गेऽपि किं पुनर्बाह्यवस्तुषु।
इत्येवमनुसन्धानो धनादिषु विरज्यताम् ॥६७॥

जब मेरे इस शरीर में भी मेरी आत्मा का कुछ तत्त्व नहीं है, तब फिर बाहिरी धनादि पदार्थों में तो मेरा हो ही क्या सकता है? इस प्रकार से विचार करने वाले जितेन्द्रिय पुरुष को पूर्वोपार्जित धनादिक में भी विरक्ति भाव धारण करना चाहिए अर्थात् उनका त्याग करे। यह श्रावक की नवीं सीढ़ी है ॥६७॥

मनोऽपि यस्य नो जातु संसारोचितवर्त्मनि।
समयं सोऽभिसन्दध्यात्परमं परमात्मनि ॥६८॥

जिस जितेन्द्रिय मनुष्य का मन संसार के मार्ग में कदाचित भी नहीं लग रहा है, वह दूसरों को भी संसारिक कार्यों के करने में अपनी अनुमति नहीं देता है और अपना सारा समय वह परमात्मा में लगाकर परम तत्त्व का चिन्तन करता है। यह जितेन्द्रियता की दशवीं सीढ़ी है ॥६८॥

अनुद्दिष्टां चरेद् भुक्तिं यावन्मुक्तिं न सम्भजेत् ।
स्वाचारसिद्धये यस्य न चित्तं लोकवर्त्मनि ॥६९॥

उपर्युक्त प्रकार से दश सीढ़ियों पर चढ़ा हुआ जितेन्द्रिय पुरुष जब यावज्जीवन के लिए अनुद्दिष्ट भोजन को ग्रहण करता है। अर्थात् अपने लिए बनाये गये भोजन को लेने का त्यागी बन जाता है और अपने आचारकी सिद्धि के लिए अपने चित्त को लोक-मार्ग में नहीं लगाता है, तब वह उद्दिष्ट त्यागरूप ग्यारहवीं सीढ़ी पर अवस्थित जानना चाहिए ॥६९॥

अहिंसनं मूलमहो वृषस्य साम्यं पुनः स्कन्धमवैमि तस्य ।
सदुक्तिमस्तेयममैथुनञ्चापरिग्रहत्वं विटपप्रपञ्चाः ॥७०॥

सदा षडावश्यककौतुकस्य शीलानि पत्रत्वमुशन्ति यस्य ।
धर्माख्यकल्पद्रु वरोऽभ्युदारः श्रीमान् स जीयात्समितिप्रसारः ॥७१॥

हे भद्रे, धर्मरूप वृक्ष की अहिंसा जड़ है, साम्य भाव उसका स्कन्ध (पेड़ी या तना) है । तथा सत्य-संभाषण, स्तेय-वर्जन, मैथुन-परिहार और अपरिग्रहपना ये उस धर्मरूपी वृक्ष की चार शाखाएँ हैं, छह आवश्यक जिसके फल हैं, शीलव्रत जिसके पत्र हैं और ईर्या, भाषा समितियां जिसकी छायारूप है । ऐसा यह श्रीमान् परम उदार धर्मरूप कल्पवृक्ष सदा जयवन्त रहे ॥७०-७१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहं वदेत्स्वं बहिरात्मनामाऽन्तरात्मतामेति विवेकधामा ।
विभिद्य देहात्परमात्मतत्त्वं प्राप्नोति सद्योऽस्तकलङ्कसत्वम् ।।७२।।

आत्मा तीन प्रकार की होती हैं - बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा । इनमें से बहिरात्मा तो देह को ही अपनी आत्मा कहता है । विवेकवान् पुरुष शरीर से भिन्न चैतन्यधाम को अपनी आत्मा मानता है । जो अन्तरात्मा बनकर देह से भिन्न निष्कलंक सत्, चिद् और आनन्दरूप परमात्मा का ध्यान करता है, वह स्वयं शुद्ध बनकर परमात्मतत्त्व को प्राप्त होता है, अर्थात् परमात्मा बन जाता है ।।७२।।

आत्माऽनात्मपरिज्ञानसहितस्य समुत्सवः ।
धर्मरत्नस्य सम्भूयादुपलम्भः समुत् स वः ।।७३।।

इस प्रकार आत्मा और अनात्मा (पुद्गल) के यथार्थ परिज्ञान से सहित धर्मरूप रत्न का प्रकाश लाभ आप लोगों को प्रमोद-वर्धक होवे, यह मेरा शुभाशीर्वाद है ।।७३।।

इत्येवं वचनेन मार्दववता मोहोऽस्तभावं गतः,
यद्वद्गारुडिनः सुमन्त्रवशतः सर्पस्य दर्पो हतः ।
आर्यात्वं स्म समेति पण्यललना दासीसमेतान्वितः
स्वर्णत्वं रसयोगतोऽत्र लभते लोहस्य लेखा यतः ।।७४।।

इस प्रकार सुदर्शन मुनिराज के सुकोमल वचनों से उस देवदत्ता वेश्या का मोह नष्ट हो गया, जैसे कि गारुडी (सर्प-विद्या जानने वाले) के सुमंत्र के वश से सर्प का दर्प नष्ट हो जाता है। पुनः दासी-समेत उस वाराङ्गना देवदत्ता ने उन्हीं सुदर्शन मुनिराज से आर्यिका के व्रत धारण किये। सो ठीक ही है, क्योंकि इस जगत् में लोहे की शलाका भी रसायन के योग से सुवर्ण पने को प्राप्त हो जाती है ।।७४।।

प्रेतावासे पुनर्गत्वा सुदर्शनमहामुनिः ।
कायोत्सर्गं दधाराऽसावात्मध्यानपरायणः ।।७५।।

तत्पष्चात उन सुदर्शन महामुनि ने स्मशान में जाकर कायोत्सर्ग को धारण किया और आत्म-ध्यान में निमग्न हो गये ।।७५।।

ध्यानारूढममुं दृष्टवा व्यन्तरी महिषीचरी ।
उपसर्गमुपारब्धवती कुर्तमिहासती ।।७६।।

आगता दैवसंयोगाद्विहरन्ती निजेच्छया।
गतिरोधवशेनासावेतस्योपरि रोषणा ।।७७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रानी अभयमती मर कर व्यन्तरी देवी हुई थी। वह दैव-संयोग से अपनी इच्छानुसार विहार करती हुई इसी स्मशान के ऊपर से जा रही थी । अकस्मात् विमान के गति-रोध हो जाने से उसने नीचे की ओर देखा और ध्यानारूढ़ सुदर्शन को देखकर अत्यन्त कुपित हो उस दुराचारिणी ने उनके ऊपर उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया ॥७६-७७॥

रे दुष्टाऽभयमत्याख्यां विद्धि मां नृपयोषितम् ।
यस्याः साधारणी वाञ्छा पूरिता न त्वया स्मयात् ॥७८॥

वह व्यन्तरी रोष से बोली-रे दुष्ट, जिसकी साधारण सी इच्छा तूने अभिमान-से पूर्ण नहीं की थी, मैं वही अभयमती नाम की राजरानी हूँ, इस बात को अच्छी तरह समझ ले ॥७८॥

पश्य मां देवताभूय रूपान्तूपासकाधिप
त्वमिमां शोचनीयास्थामाप्तो नैष्ठुर्ययोगतः ॥७९॥

हे श्रावक-शिरोमणि, मुझे देख, मैं देवता बनकर आनन्द कर रही हूँ और तू निष्ठुर व्यवहार के कारण इस शोचनीय अवस्था को प्राप्त हुआ है ॥७९॥

कस्यापि प्रार्थनां कश्चिदित्येवमवहेलयेत्।
मनुष्यतामवाप्तश्चेद्यथा त्वं जगतीतले ॥८०॥

इस भूतल पर कोई भी जीव किसी भी जीव की प्रार्थना का इस प्रकार तिरस्कार नहीं करता, जैसा कि तूने मनुष्यपना पाकर मेरी प्रार्थना का तिरस्कार किया है ॥८०॥

हे तान्त्रिक तदा तु त्वं कृतावान् भूपमात्मसात् ।
वदाद्य का दशा ते स्यान्मदीयकरयोगतः ॥८१॥

हे तांत्रिक, उस समय तो तूने अपरनी तंत्र-विद्या से राजा को अपने अनुकूल बना लिया (सो बच गया)। अब बोल, आज मेरे हाथ से तेरी क्या दशा होती है ॥८१॥

इत्यादिनिष्ठुरवचाः कृतवत्यनेक-
रूपं प्रविघ्नमिति तस्य च वर्णने कः ।
दक्षः समस्तु परिचिन्तनमात्रतस्तु-
यज्जायते हृदयकम्पनकारि वस्तु ॥८२॥

इत्यादि प्रकार से निष्ठुर वचनों को कहने वाली उस यक्षिणी ने जो अनेक घोर विघ्न, उपद्रव सुदर्शन मुनिराज के ऊपर किये, उन्हें वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है। उनके तो चिन्तवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्र से ही अच्छे धीर वीरों का भी हृदय कम्पन करने लगता है ॥८२॥

आत्मन्येवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं चिन्तयतोऽस्य धीमतः ।
न जातुचिदभूल्लक्ष्यंस्तत्कृतोपद्रवे पुनः ॥८३॥

किन्तु अपनी आत्मा में अपनी आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा का ही चिन्तवन करने वाले इन महाबुद्धिमान सुदर्शन मुनिराज का उपयोग उस यक्षिणी के द्वारा किये जाने वाले उपद्रव की ओर रंच मात्र भी नहीं गया ॥८३।

त्यक्त्वा देहगतस्नेहमात्मन्येकान्ततो रतः।
वभूवास्य ततो नाशमगू रागादयः क्रमात् ॥८४॥

उस देवी-कृत उपसर्ग के समय वे सुदर्शन मुनिराज देह सम्बन्धी स्नेह को छोड़कर एकाग्र हो अपनी आत्मा में निरत हो गये, जिससे कि अवशिष्ट रहे हुए सूक्ष्म रागादिक भाव भी क्रम से नाश को प्राप्त हो गये ॥८४॥

भावार्थ – सुदर्शन मुनिराज ने उस उपसर्ग-दशा में ही क्षपक श्रेणी पर चढ़कर मोह आदिक घातिया कर्मों का नाश कर दिया।

निःशेषतो मले नष्टे नैर्मल्यमधिगच्छति।
आदर्श इव तस्यात्मन्यखिलं बिम्बितं जगत् ॥८५॥

इस प्रकार भाव-मल के निःशेषरूप से नष्ट हो जाने पर वे परम निर्मलता को प्राप्त हुए, अर्थात् केवलज्ञान को प्राप्त कर अरहन्त परमेष्ठी बन गये। उस समय उनकी आत्मा में दर्पण के समान समस्त जगत् प्रतिबिम्बित होने लगा ॥८५॥

नदीपो गुणरत्नानां जगतामेकदीपकः ।
स्तुताञ्जनतयाऽधीतः स निरञ्जनतामधात् ॥८६॥

पुनः गुणरुप रत्नों के सागर, तीनों जगत् के एक मात्र दीपक, और सर्व लोगों के द्वारा आराधना करने योग्य वे सुदर्शन जिनेन्द्र निरंजन दशा को प्राप्त हुए, अर्थात पुनः शेष चारों अघातिया कर्मों का भी क्षयकर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया ॥८६॥

मानवः प्रपठेदेनं सुदर्शनसमुद्गमम् ।
येनाऽऽत्मनि स्वयं यायात्सुदर्शनसमुद्गमम् ॥८७॥

जो मानव सुदर्शन के सिद्धि-सौभाग्यरूप उदय को प्रकट करने वाले इस सुदर्शनोदय को पढ़ेगा, वह अपनी आत्मा में सम्यग्दर्शन के उदय को स्वयं ही प्राप्त होगा ॥८७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशमधर गणशरण जय मदनमदहरण ।
परमपदपथकथन मम च परमघमथन ॥८८॥

हे प्रशमभाव के धारक, हे मुनिगण के शरण देने वाले, हे काम- मद के हरने वाले, हे परम पद के उपदेशक, और मेरे पापों के मथन करने वाले । हे सुदर्शन भगवन्, आप सदा जयवन्त रहें ॥८८॥

परमागमलम्बेन नवेन सन्नयं लप।
यन्न सन्नर मङ्गं मां नयेदिति न मे मतिः ॥८९॥

हे नरोत्तम सुदर्शन भगवन परमागम के अवलम्बन से नव्य-भव्य उपदेश के द्वारा मुझे सन्मार्ग दिखाओ, आपका वह सदुपदेश ही मुझे सुख-सम्पादन न करेगा, ऐसी मेरी मति नहीं है, प्रत्युत मुझे अवश्य ही सुख प्राप्त करावेगा, ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है ॥८९॥

वन्दे तमेव सततं विलसत्तमाल-
रङ्गं शरीरगतरङ्गधरं चकार।
लब्ध्वा हि मङ्कमकनाशक एषकश्च,
चक्रे भुवः स वशिनां पणमाप मे सः ॥९०॥

जिनके शरीर का रंग तमालपत्र के समान श्याम है और अंग के रंग समान काला सर्प ही जिनका चरण-चिह्न है, जो जितेन्द्रिय पुरुषों में मुख्य माने गये हैं ऐसे श्री पार्श्वनाथ भगवान् हमारे पापों के नाश करने वाले हों ॥९०॥

भूतमात्रहितः पातु राजीमतिपतिः स वः ।
महिमा यस्य भो भव्या ललामा मारदूरगः ॥९१॥

कृपालतातः आरब्धं तस्येदं मम कौतुकम् ।
मञ्जुले भवतां कण्ठेऽस्तु तमा श्रीकरं परम् ॥९२॥

हे भव्य जीवो, प्राणिमात्र के हित करने वाले वे राजुल-पति श्रीनेमिनाथ भगवान् तुम सब लोगों की रक्षा करें, जिनकी ललाम (सुन्दर) यशोमहिमा भी काम की बाधा से हमें दूर रखती है। उनकी कृपारूप लता से रचित यह मेरा पुष्परूप निबन्ध आप लोगों के सुन्दर कण्ठ में परम शोभा को बढ़ाता हुआ विराजमान रहे ॥९१-९२॥

विशेष - इन दोनों श्लोकों के आठों चरणों के प्राम्भिक एक-एक अक्षर के मिलाने पर भूरामल-कृतमस्तु वाक्य बनता है जिसका अर्थ यह है कि यह 'सुदर्शनोदय भूरामल - रचित' है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीरोक्तशुभतत्त्वार्थलोचनेनाद्य वत्सरे ।
पुण्यादहं समाप्नोमि सुदर्शनमहोदयम् ॥९३॥

श्रीवीरभगवान् द्वारा प्रतिपादित शुभ सप्त तत्वार्थरूप नेत्र से आज इस वीर निर्वाण २४७० संवत्सर में मैं बड़े पुण्योदय से इस सुदर्शन के महोदय को प्रकट करने वाले सुदर्शनोदय को समाप्त कर रहा हूँ ॥९३॥

भावार्थ – 'अंकानां वामतो गतिः' इस नियम के अनुसार शुभपद से शून्य (०) तत्वपद से सात (७) अर्थपद (पुरुषार्थ) से चार (४) और लोचन पद से दो (२) का अंक ग्रहण करने पर वीर निर्वाण संवत् २४७० में इस ग्रन्थ की रचना हुई।

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलेत्यहाह्वयं ,
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम् ।
तेनेदं रचितं सुदर्शनधनीशनादोयं राजतां,
यावद्भानुविधूदयो भवभृतां भद्रं दिशच्छ्रीमताम् ॥९४॥

राणोली (राजस्थान) में श्रीमान् सेठ चतुर्भुजजी हुए । उनकी धर्मपत्नी श्रीमती घृतवरी देवी थीं। उनसे श्रीमान वाणीभूषण, बालब्रह्मचारी पं. भूरामलजी हुए – जो वर्तमान में मुनि ज्ञानसागर के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके द्वारा रचित यह सुदर्शनोदय काव्य जब तक संसार में सूर्य और चन्द्र का उदय होता रहे तब तक आप सब श्रीमानों का कल्याण करता हुआ पठन-पाठन केरूप से विराजमान रहे ।

इस प्रकार सुदर्शन मुनिराज के मोक्ष-गमन का वर्णन करने वाला यह नवां सर्ग समाप्त हुआ।

५५३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगल कामना

संसृतिरसकौ निस्सारा कदलीव किल दुरा धारा ।।स्थायी।।
स्वार्थत एव समस्तो लोकः परिणमिति च परमनुकूलौकः ।
सोऽन्यथा तु विमुख इहाऽऽरात्संसृतिरसकौ निस्सारा ।।१।।

जलबुद्‌बुदवज्जीवनमेतत्सन्ध्येव तनोरपि मृदुलेतः ।
तडिदिव तरला धनदारा संसृतिरसकौ निस्सारा ।।२।।

यत्र गीयते गीतं प्रातः मध्याह्ने रोदनमेवातः ।
परिणमनधियो ह्यविकारात्संसृतिरसकौ निस्सारा ।।३।।

दृष्ट्‌वा सदैतादृशीमेतां भूरागरुषो- किमुत सचेताः ।
परमात्मनि तत्वविचारात्संसृतिरसकौ निस्सारा ।।४।।

यह संसार केले के स्तम्भ के समान निःसार है, इसका कोई मूल आधार नहीं है । संसार के सब लोग अपने स्वार्थ से ही दूसरों के साथ अनुकूल परिणमन करते हैं और स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर वे विमुख हो जाते हैं, अतः यह संसार असार ही है। यह मनुष्य का जीवन जल के बबूले के समान क्षण-भंगुर है, शरीर की सुन्दरता भी सन्ध्याकालीन लालिमा के समान क्षण-स्थायी है और ये स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि के सम्बन्ध तो बिजली के समान क्षणिक हैं, अतएव यह संसार वास्तव में असार ही है। जहां पर प्रातःकाल गीत गाते हुए देखते हैं, वहीं मध्याह्न में रोना पीटना दिखाई देता है। यह संसार ही परिवर्तनशील है, अतः निस्सार है. संसार के ऐसे विनश्वर स्वरूप को देखकर सचेत मनुष्य किसी में राग और किसी में द्वेष क्यों करें ? अर्थात् उन्हें किसी पर भी राग या द्वेष नहीं करना चाहिए। किन्तु तत्व का विचार करते हुए परमात्मा में उनके स्वरूप-चिन्तवन में लगना चाहिए, क्योंकि इस असार संसार में परमात्मा का भजन-चिन्तवन ही सार रूप है ।।१-४।।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट

सुदर्शनोदय के पंचम सर्ग में ग्रन्थकार ने प्रभाती, पूजन, स्तवन आदि के रूप में भगवद्-भक्ति का बहुत ही भाव-पूर्ण वर्णन अनेक प्रकार के राग रागिणी वाले छन्दों में किया है, जिसका असली रसास्वादन तो संस्कृतज्ञ पाठक ही करेंगे। परन्तु जो संस्कृतज्ञ नहीं हैं, उन लोगों को लक्ष्य में रखकर इस प्रकरण का हिन्दी पद्यानुवाद भी भक्ति-वश मैंने किया, जो यहां पर दिया जा रहा है।

(१)

पंचम सर्ग के प्रारम्भ में पृष्ठ ६९ पर आई हुई 'संस्कृत प्रभाती' का हिन्दी पद्यानुवाद -

अहो प्रभात हुआ हे भाई, भव-भय-हर जिन-भास्कर से,
पापप्राया भगी निशा अब, इस शुभ भारत-भूतल से ।
तारे भी अब दृष्टि न आते, सित द्युति चन्द्र पलायन से,
कायरता त्यों दृष्टि न आती, ज्यों श्वेताङ्गी जाने से ।।अहो.।।
नभचर का संचार हुआ अब, ज्यों नभ-यान चले नभ से,
विप्र समादर करें नीच का, पूजन कर हरकी जल से ।।अहो.।।
आमेरिक मन अब भी मैले, दिखें सुमन अलिसे जैसे
'भूरा' भूकी शान्ति-हेतु अब, लगन लगा ले जिन-पद से ।।अहो.।।

(२)

पृष्ठ ६९ पर आये 'आगच्छता' इत्यादि संस्कृत गीत का हिन्दी पद्यानुवाद-

आओ भाई चलो चलें अब, श्रीजिनवर की पूजन को ।
आत्म-स्फूर्ति कराने वाली, देखें दृगसे जिन छवि को ।।टेक,१।।
जल चन्दन तन्दुल पुष्पादिक, ले करमें सब द्रव्यनिको।
श्रीजिनवर की कर पूजा हम, सफल करें निज जीवनको ।।टेक,२।।
कलि-मल-धावन, अतिशय पावन, लेकर गन्धोदकको ।
शिर पर धारण करें, हरें सब पाप, कहें क्या फिर तुमको ।।टेक,३।।
यह मस्तक जिन-पद में रखकर, पावन करें अरे, इसको ।
उत्तम-पद-सम्प्राप्ति हेतु यह, निश्चय ही कहते तुमको ।।टेक, ४।।
थोड़ा बहुत बने जो कुछ भी, सद गुण-गान करो, मनको।
'भूरा' सद्-गुणमयी बना लो, देव-भजन कर जीवनको ।।टेक,५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३)

पृष्ठ ७० पर आये 'भो सखि जिनवर मुद्रां' इत्यादि संस्कृत गीत का हिन्दी पद्यानुवाद

हे सखि, जिनवर मुद्रा देखो, जातें सफल नयन हो जांय,
राग-रोष से रहित दिगम्बर, शान्त मूर्ति मम मनको भाय ।
तुलना भूतल पर नहिं जिसकी, दर्शन होवें भाग्य-वशाय ।।टेक,१।।

पहिले किया राज्य-शासन है, जग को जग-सुख-मार्ग दिखाय।
नासा-दृष्टि रखे अब शिवका, भोग-योग-अन्तर बतलाय ।।टेक,२।।

पद्मासन-संस्थित वह मुद्रा, सोहै कर पर कर हि धराय।
निज बल-सम्मुख सब बल निष्फल, सबको यह सन्देश सुनाय ।।३।।

यदि तुम शान्ति चाहते भाई, भजो इसे अब सन्निधि आय।
'भूरा' जग को देय जलाञ्जलि, भजो इसे अब मन वचन काय ।।टेक,४।।

(४)

पृष्ठ ७१-७२ पर आये 'कदा समयः स' इत्यादि संस्कृत गीत का हिन्दी पद्यानुवाद -

कब वह समय आय भगवन्, तुव पद-पूजन का ।।टेक।।
कनक कलश में भर गंगा-जल, अति उमंगसों ल्याय,
धार देत जिन-मुद्रा आगे, कर्म-कलंक बहाय ।।टेक, १।।

मलयागिर चन्दन को घिस, केशर कर्पूर मिलाय ।
जिन-मुद्रा-पद-अर्चन करतहिं, सब अपाय नश जाय ।।टेक, २।।

मुक्ताफल-सम उज्ज्वल तन्दुल, लाकर पुञ्ज चढ़ाय ।
जिन-मुद्रा के आगे, यातें स्वर्ग-रमा-का पति बन जाय ।।टेक, ३।।

कमल केतकी पारिजातके, बहुविध कुसुम चढ़ाय ।
जिन-मुद्रा के सम्मुख, यातें अति सौभाग्य लहाय ।।टेक, ४।।

षट्रसमयी दिव्य व्यञ्जनसे स्वर्ण-थाल भर लाय ।
जिन-मुद्रा सम्मुख मैं अरपूं, जातें क्षुधा रोग नश जाय ।।टेक, ५।।

घृत कर्पूर और मणिमय यह, दीपक ज्योति जलाय ।
करूं आरती जिन-मुद्राकी, प्रगटै ज्ञान ज्योति अधिकाय ।।टेक,६।।

कृष्णागुरु चन्दन कपूर-मय, धूप सुगन्ध जलाय।
करूं सुगन्धित दशों दिशाएं, कर्म-प्रभाव-हराय ।।टेक,७।।

आम नरंगी केला आदिक, बहुविध फल मंगवाय ।
करू समर्पित उच्च भावसे, हरूं विफलता, शिव-फल पाय ।।टेक,८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जल चन्दन तन्दुल पुष्पादिक, आठों द्रव्य मिलाय।
पूजा करके श्रीजिन-पद-की, पाऊं मुक्ति महासुख दाय ।।टेक,९।।
इस विधि पूजन कर जिनवरकी, कर्म-कलंक नशाय।
'भूरा' सुखी होंय सब जगके, शान्ति अनूपम पाय ।।टेक,१०।।

(५)

पृष्ठ ७३-७४ पर आये 'तप देवांघ्रिसेवां' इत्यादि संस्कृत गीत का हिन्दी प्रद्यानुवाद -

तेरे चरणों की सेवा में आया जी, जिन कर्त्तव्य मैंने निभाया जी ।।टेक।।
अघ-हरणी, सुख-कारिणी, चेष्टा तुव सज्ज्ञान।
दुखिया की विनती सुनो, हे जिन कृपा-निधान।
करो तृप्ति संक्लेश-हर स्वामिन् तेरे चरणों की ।।१।।
जगने क्या पाया नहीं, इच्छित वर भगवान्,
मुझ अभागि की वारि है, हे सद्-गुण सन्धान।
क्या अब भी पाऊँ नहीं, मैं अभीष्ट वर-दान ।।तेरे चरणों की.२।।
सेये जगमें देव बहु, हे सज्ज्योतिर्धाम,
तुम तारों में सूर्य ज्यों, हे निष्काम ललाम।
अन्तस्तम नहिं हर सकें, और देव वेकाम ।। तेरे चरणों की. ३।।
वे सब निज यश गावते दीखें सदा जिनेश,
स्वावलम्ब उपदेश कर, तुम हो शान्त सुवेश
तुव शिक्षा ईक्षा-परा, साँचे तुम्हीं महेश ।।तेरे चरणों की. ४।।
अब भगवन्, तुम ही शरण, तारण तरण महान्,
वीतराग सर्वज्ञ हो, धारक केवल ज्ञान।
'भूरा' आयो शरणमें, लाज राख भगवान् ।।तेरे चरणों की.५।।

(६)

पृष्ठ ७४ पर आये 'जिनप परियामो मोदं' इत्यादि संस्कृत गीत का हिन्दी पद्यानुवाद -

जिनवर, पायें प्रमोद देख तुव मुख आभाको ।।टेक।।
ज्यों निर्धन वनिता लख निधान को अति प्रमुदित होती।
ज्यों चिर-क्षुधित मनुज को खुशियां सरस असन लख के होती ।।टेक।।
ज्यों घन-गर्जन सुनत मोर गण, नचें मधुर बोली बोलें।
शान्तिमयी लख चन्द्रकला ज्यों, मत्त चकोर-नयन डोलें ।।टेक२।।
त्यों जिन, तुव मुख आभा लख मम, अहो हर्ष का छोर नहीं।
'भूरा' निशि-दिन यही चाहता, दृष्टि न जावे और कहीं ।।टेक, ३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७)

पृष्ठ ७४ पर आये 'अयि जिनप.' इत्यादि संस्कृत गीत का हिन्दी पद्यानुवाद -

हे जिनवर, छवि तेरी सुन्दर अतिनिर्मल भावोंवाली ।
काम-अग्नि किसको न जलावे, करके सबको मतवाली ।।१।।
हरि-हरादि भय-भीत होय सब, जिनवर, बने शस्त्र-धारी।
असन वसन सब कोई चाहें, सबके धन तृष्णा भारी ।।२।।
तुमने भगवन् काम जलाया, भूख प्यास की व्याधि हरी,
राग द्वेष से रहित हुए हो, वीतरागता अंग भरी ।।३।।
'भूरा' यह भी आश करत है, कब मैं तुमसा बन जाऊं?
राग रोषसे रहित, निरंज़न, बन अविनाशी पद पाऊं ।।४।।

(८)

पृष्ठ ७५-७६ पर आये 'छविरविकलरुपा' इत्यादि संस्कृत गीत का हिन्दी पद्यानुवाद -

वसनाभरण-विभूषित जग की देव-मूर्तियां दीखें,
उन्हें देख जग जन भी वैसी ही विभावना सीखें।
वीतरागता दिखे न उनमें, और नहीं वे शम-धारी,
सहज सुरूपा जिनमुद्रा यह, रक्षा करे हमारी ।।१।।
जिन-मुद्रामें लेश नहीं है, अहो किसी भी दूषण का,
मञ्जुल सुन्दर सहज शान्त है, काम नहीं आभूषण का ।
तीन भुवन को शान्ति-दायिनी, सहज शान्ति की अवतारी,
सहज सुरूपा जिन-मुद्रा यह, रक्षा करे हमारी ।।२।।
जहां वंचना हो लक्ष्मीकी, तुम्हें देख दासी बन जाय,
जग-वैभव सब फीके दीखें, जग की माया-मोह पलाय।
जाऊं शरण उसी जिन-छविकी, जो लगती सबको प्यारी,
सहज सुरूपा जिन मुद्रा यह, रक्षा करे हमारी ।।३।।
जिसके दर्शन से जग-जन की, सब आकुलता मिट जावे,
ऋद्धि-सिद्धिसे हो भर-पूरित, औ कुलीन पद को पावे ।
'भूरा' की प्रभु अरज यही है, दूर होय विपदा सारी,
सहज सुरूपा जिनमुद्रा यह, रक्षा करे हमारी ।।४।।

4432

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोक चरण	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
(अ)		
अकाल एतद्धनघोर रुप	9	20
अघहरणी सुखपूरणी	पे. 63	
अङ्गीकृता अप्यमुना	1	18
अङ्गेऽङ्गिभावमासाद्य	9	50
अजानुभविनं द्दष्टुं	4	3
अतिथिसत्कृति कृत्वा	पे. 96	
अथ कदापि वसन्त	4	1
अथ प्रभाते कृतमङ्गला	2	12
अन्तःपुरं द्वाःस्थ	8	1
अथ सागरदत्तसंक्षिनः	3	36
अथोत्तमो वैश्यकुलावतंसः	2	1
अधरमिन्द्रपुरं विवरं	1	36
अनल्पतूलोदिततल्प	2	11
अनीतिमत्यत्र जनः	1	23
अनुद्दिष्टां चरेद् भुक्तिं	9	69
अनुभाविमुनित्वसूत्र ले	3	25
अनेकजन्मबहुले	9	51
अनेकाधान्यार्थकृत	1	8
अनेकान्तरङ्गस्थल भोक्त्रीं	पे. 122	
अन्तःसमासाद्य पुनर्जगाद	9	14
अन्नेन नाद्युर्द्विदलेन	9	58
अन्योन्यानुगुणैकमानस	4	47
अपवर्गस्य विरोधकारिणी	पे. 112	
अभयमतीत्यभिधाऽभूद्	1	40
अभयमती सा श्रीमती	पे.	94
अहो धूर्तस्य	पे. 105	
अभिलषितं वरमाप्तवान्	पे. 73	
अभीष्टसिद्धेः सुतरामुपायः	7	20
अभ्यर्च्यार्हन्तमायान्तं	5	1
अयि जिनप तेच्छवि	पे. 74	
अरे राम रेऽहं हता	7	5
अर्धाङ्गिन्या त्वया सार्धं	8	25
अवलोकयितुं तदा धनी	3	8
अवागमिष्यमेवं चे	5	8
अवेहि नित्यं विषयेषु	9	26
अशनं तु भवेद् दूरे	9	55
असा हसेन तत्रापि	6	13
अस्ति सुदर्शनतरुणा	6	5
अस्तं गता भास्वतः सत्ता	पे. 97	
अस्याः क आस्तां प्रिय	2	22
अस्या भवान्नादरमेव	9	19
अस्वास्थ्यमेतदापन्ना	9	45
अस्मिन्निदानीमजडेऽपि	1	6
अहिंसनं मूलमहो वृषस्य	9	70
अहो किलाऽऽश्लेषि मनो	3	38
अहो गिरेर्गह्वरमेव	9	3
अहो मोहस्य माहात्म्यं	9	49
अहो प्रभातो जातो भ्रातो	पे. 69	
अहो ममासिः प्रतिपक्षनाशी	8	6
अहो मयाऽज्ञायि मनोज्ञ	9	18
अहो महाभाग तवेयमार्या	2	37
अहो विद्यालता सज्जनैः	पे. 82	
अहो विधायिनः किन्न	5	19
अहोसुशाखिना तेन	6	12
(आ)		
आकर्षताऽब्जं च सहस्रपत्रं	4	15
आगच्छताऽऽगच्छत	पे. 69	
आगता दैवसंयोगाद्	9	77
आत्माऽनात्मपरिज्ञान	9	73
आत्मनेऽपरोचमान	9	36
आत्मन्येवाऽऽत्मना	9	83
आम्रं नारंगं पनसं वा	पे.	72
आस्तां मद्विषये देवि	6	14
आव्रजताडडव्रजत	पे.104	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(इ)

इच्छानिरोधमेवातः	9	42
इति तच्चिन्तनेनैवा	3	43
इत्यतः प्रत्युवाचापि	6	9
इत्यस्योपरि सञ्जगाद	8	14
इत्यादिकामोदयकृ	7	15
इत्यादिनिष्ठुरवचाः	9	82
इत्यादिसङ्गीतिपरायणा	9	28
इत्युक्तमाचारवरं दधानः	9	8
इत्युक्ताऽथ गता चेटी	5	6
इत्युपेक्षित संसारो	8	23
इत्येवमत्युग्रतपः	9	11
इत्येवमुक्त्वा स्मर	2	20
इत्येवं पदयोर्दयोदय	9	31
इत्येवं प्रत्युतविरागिणं	9	27
इत्येवं बहुशःस्तुत्वा	8	12
इत्येवं वचनेन मार्दव	9	74
इत्येवं वचसा जात	5	18
इयं भूराश्रिताऽस्त्यभितः	पे. 109	
इह पश्याङ्ग स्दिधशिला	पे. 122	
इहोदयोऽभुदुदरस्य यावत्	2	44

(उ)

उक्तवत्येवमेतस्मिन्	5	9
उचितामुक्तिमप्याप्त्वा	6	26
उच्चैस्तनपरिणामवतीयं	पे. 122	
उत्तमाङ्गमिति सुदेवपदयोः	पे. 70	
उत्तमाङ्ग सुर्वशस्य	4	4
उदरक्षणदेशसम्भुवा .	3	2
उद्यानयानजं वृत्तं	6	19
उद्योतयन्तोऽपि परार्थ	1	22
उपतिष्ठामि द्वारि	पे. 94	
उपदेशविधानं यतोऽदः	पे. 94	
उपसंहृत्य च करणग्रामं	पे. 96	
उमामवाप्य महादेवोऽपि	पे. 112	
उत्खातांघ्रि	7	31

(ए)

एकान्ततोऽसावुपयोगकाल-	9	17
एकाशनत्वमभ्यस्येद	9	64
एकैकाक्षवशेनामी	9	47
एकोऽस्ति चारुस्तु परस्य	9	23
एवमनन्तधर्मता विलसति	पे. 91	
एवमुक्तप्रकारेणा	7	8
एवं प्रस्फुटमुक्तापि	6	24
एवं रसनया राज्या	6	16
एवं विचिन्तयन् गत्वा	8	24
एवं विधपूजाविधानतो	पे. 72	
एवं समागत्य निवेदितो	8	7
एवं सुमन्त्रवचसा भुवि	5	20

(क)

कञ्चनकलशे निर्मलजल	पे. 71	
कटुमत्वेत्युदवमत्सा	6	25
कदा समय स समाया-	71	
कमलानि च कुन्दस्य	पे. 71	
करिराडिव पूरयन्मही-	3	6
करौ पलाशप्रकरौ तु	2	27
कर्तव्यमिति शिष्टस्य	9	35
कल इति कल एवाऽगतो	पेज 70	8
ॅकवेर्भवेदेव तमोधुनान	1	10
कस्य करेऽसिरेरे रिति	पे. 74	
कस्यापि प्रार्थनां कश्चि-	9	80
कान्तार सद्विहरेऽस्मिन	6	3
कापीव वापी सरसा	2	6
कालोपयोगेन हि मांसवृद्धी	8	25
किन्तु परोपरोधकरणेन	पे. 192	
किन्न चकोरदृशोः	पे. 74	
किन्नु भूरागस्य भूयद	पे. 89	
किमिति भणित्वा सद्गुण	पे. 70	
किमु शर्करिले वससि	7	14
किं दुष्फला वा सुफला	2	35
किं प्रजल्पसि भो भद्रे	7	3
कुचावतिश्यामल-	2	45
कुचौ स्वकीयौ विवृतौ	7	18
कुतः कारणतो जाता	3	26
कुतः स्यात्पारणा तस्याः	7	6
कुर्यात्पुनः पर्वणि	9	62
कुलदीपयशः प्रकाशिते	3	11
कुशलसद्भावनोऽम्बुधिवत्	3	30

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुशेशयाभ्यस्तशया	2	10
कृपांकुराः सन्तु सतां	1	9
कृतान् प्रहारान् समुदीक्ष्य	8	5
कृतापराधाविव बद्धह् रस्तौ	2	36
कृपालतात आरब्धं	9	92
कृष्णागुरुचन्दन	पे. 72	
केकिकुलं तु लपत्यति	पे. 74	
केयं केनान्विताऽनेन	6	4
केशपूरकं कोमलकुटिलं	पे. 100	
केशान्धकारीह शिर	2	25
कौटिल्यमेतत्खलु चाप	1	34
कौतुकपरिपूर्णतया याऽसौ	पे. 82	
कौमुदमपि यामि तु ते	पे. 99	
कौमुदं तु परं तस्मिन्	6	28
क्षणभूरास्तां न स्वप्ने	पे. 99	
क्षणादुदीरयन्नेवं	5	12
क्षेमप्रश्नानन्तरं ब्रूहि	3	45
क्षौद्रं किलाक्षुद्रमनुष्यः	9	59

(ख)

खगभावस्य च पुनः	पे. 69	

(ग)

गजपादेनाध्वनि मृत्वा	पे. 114	
गिरमर्थयुतामिव स्थितां	3	12
गुणप्रसक्त्याऽतिथये	9	60
गुरुपदयोर्मदयोग	पे. 96	
गुरुमाप्य स वै क्षमाधरं	3	20
गोदोहनाम्भोभरणादि	4	22
ग्रामान् पवित्राप्सरसो	1	20

(घ)

घनघोरसन्तमसगात्री	पे. 97	

(च)

चतुर्दशात्मकतया	पे. 82	
चतुर्दश्यष्टमी चापि	7	9
चतुराख्यानेष्वभ्यनुयोक्त्रीं	पे. 122	
चन्द्रप्रभ विस्मरामि न	पे. 99	12
चर्यानिमित्तं पुरि सञ्चरन्तं	9	12
चातकस्य तनयो घनाघन	8	30
चापलतेव च सुवंशजाता	1	42

(छ)

छत्रमित्यविपन्नसमया	पे. 90	
छविरविकलरुपा पायात्	पे. 75	
छायेव तं साप्यनुवर्तमाना	8	33

(ज)

जगत्यमृतायमानेभ्यः	पे. 124	
जन आत्ममुखं दृष्टा	9	34
जनकसुतादिक वृत्तवचः	पे. 88	
जननी जननीयतामितः	3	21
जगन्मित्रेऽब्जवत्तेषां	पे. 124	
जलचन्दनतन्दुलकुसुम	पे. 72	
जलचन्दनतन्दुल पुष्पादिक	पे. 70	
जलबुद्बुदवज्जीवन	पे. 138	
जिताक्षाणामहो धैर्य	पे. 124	
जितेन्द्रियो महानेष	8	10
जिनप परियामो मोदं	पे. 74	
जिनयज्ञमहिमा ख्यातः	पे. 114	
जिनालयाः पर्वततुल्यगाथाः	1	31
जिनेश्वरस्याभिषवं सुदर्शनः	8	29
जीवो मूर्तिं न हि कदा	9	54
ज्वरिणः पयसि दधिनि	पे. 91	
ज्ञानामृतं भोजनमेकवस्तु	9	5

(त)

ततः कुर्यान्महाभाग	9	41
ततो जितेन्द्रियत्वेन	9	48
तत्रास्याः पुण्ययोगेन	4	29
तदा गत्वाश्मशानं	7	10
तदा प्रत्युत्तरं दातुं	5	14
तदेकदेशः शुचिसन्निवेशः	1	15
तदेकभागो भरताभिधानः	1	13
तदेतदाकर्ण्य पिता	3	42
ततोऽनवद्ये समये	3	48
तमन्यचेतस्कमवेत्य	3	39
तमाश्विनं मेघहरं	4	14
तमेनं विधुमालोक्य	3	44
तव देवांघ्रिसेवां	पे. 73	
तस्याः कृशीयानुदरो	2	43

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्योपयोग तो वाञ्छा	9	39
तावदनूरुसादितः सुभगाद्	पे. 100	
तुगहोगुणसंग्रहोचिते	3	22
त्यक्त्वा देहगतस्नेह	9	84
त्वमेकदा विन्ध्यगिरेः	4	17

(द)

दारुदितप्रतिकृतीङ्ग	9	29
दासस्यास्ति सदाङ्गस्यौ	पे. 92	
दासी समासाद्य च	8	36
दिग्भ्रममेति न वेत्ति	पे. 97	
दीर्घोऽहिनीलः किंल	2	8
देवदत्तां सुवार्णी सुवित्	पे. 122	
देही देहस्वरुपं स्वं	4	7
देहं वदेत्स्वं बहिरात्मनामा	9	72
दृष्टः सुरानोकहको	2	15
दृष्टाऽवाचि महाशयासि	7	12
दृष्ट्याऽपहरे	7	28
दृष्ट्वा सदैताद्सीमेतां	पे. 138	
दृष्ट्वैनमधुनाऽऽदर्शं	5	3
द्रुतमाप्य रुदन्नथाम्बाया	3	26
द्युतिदीप्तिमताङ्गजन्मना	3	16
द्विजवर्गे निष्क्रियतां	पे. 97	
द्विजिह्वतातीतगुणो	2	2
द्वीपस्य यस्य प्रथितं	1	11

(ध)

धरातु धरणीभूषण	पे. 75	
धरा पुरान्यैरुररीकृता	8	22
धरैव शय्या गगनं	9	1
धर्मस्तु धारयन् विश्वं	4	6
धात्रीवाहननामा राजा	1	38
ध्यानारुढममुं दृष्टा	9	76

(न)

न क्रमेतेतरत्तल्पं	4	43
नदीपो गुणरत्नानां	9	86
न दृक् खलु दोषमायाता	पे. 109	
नमदाचरणं कृत्वा	4	44
नयन्तमन्तं निखिलोत्करं	2	17
नरोत्तमवीनता यस्मान्न	पे. 109	
न स विलापी न मुद्रापी	पे. 109	
न हि परतल्पमेति स	पे. 89	
नाऽऽमासमापक्षमुता	9	9
नासादृष्टिरथ प्रलम्बित-	7	11
निजपतिरस्तु तरां सति	पे. 87	
निभृतं स शिवश्रिया	3	19
निम्नगेव सरसत्वमुपेता	1	43
निर्धूमसप्ताचिरिवान्त	2	40
निर्वारिमीनमित	6	18
निशम्येत्यगदद्राज्ञी	6	7
निशम्येद भद्र	8	26
निशम्येदं महीशस्य	8	11
निःशेषतो मले नष्टे	9	85
निशाशशाङ्क इवाय	1	44
निशीक्षमाणा भगवन्	2	34
नृराडास्तां विलम्बेन	5	10
नेदमनुसन्दधानोऽयं	4	10

(प)

पक्षकक्षमिति कस्य	पे. 74	
पञ्चाङ्गरुपा खलु यत्र	1	21
पण्डिताऽऽह किलेनस्य	6	20
पण्डिते किं गदस्येवं	6	27
पतिरिति परदेशं यदि	पे.	88
पदे पदे पावनपल्वलानि	1	19
पयोमुचो गर्जनयेव	2	41
परपुष्टा विप्रवराः	पे. 81	
परमागमपारगामिना	3	31
परमागमलम्बेन	9	89
परमारामे पिकरव	पे. 81	
पराभिजिद् भूपति-	1	29
परिपातुमपारयश्च	3	9
परिवृद्धिमितोदरां	2	50
परोपकरणं पुण्याय	पे. 100	
पलाशिता किंशुक एव	1	33
पवित्ररुपामृतपूर्णकुल्या	2	7
पश्य मां देवताभूय	9	79
पापप्राया निशा पलाया-	पे. 69	
पिता पुत्रत्वमायाति	4	9
पुत्तलकेन ममात्मनो	पे. 94	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुत्तलमुत्तलमित्यथ कृत्वा	पे. 92	
पुराणशास्त्रं बहु दृष्टवन्तः	1	5
पुरा तु राज्यमितो भुवः	पे. 70	
पूर्णाऽऽशास्तु किला-	पे. 99	
प्रत्यग्रहीत्सापि तमात्म-	9	13
प्रत्याव्रजन्त मथ जम्पती	2	24
प्रत्युक्तया शनैरास्य	6	6
प्रभवति कथा परेण	पे. 88	
प्रमन्यतां चेत्परलोकसत्ता	9	16
प्रमदाश्रुभिराप्लुतो	3	5
प्रवरमात्वमताम्भि-	4	2
प्रशस्तं वचनं ब्रूयाद्	4	42
प्रशमधर गणशरण	9	88
प्राकाशि यावत्तु	7	21
प्राणाधार भवांस्तु मां	8	25
प्रातःसमापितसमाधि-	4	25
प्रार्थयन्तीं प्रवेशाय	7	2
प्रेतावासे पुनर्गत्वा	9	75

(फ)

फलं वटादेर्बहुजन्तुक	9	57
फलं सम्पद्यते जन्तो-	9	33

(ब)

बभावथो स्वातिशयो	2	42
बभौ समुद्रोऽप्यजडा-	2	3
बलिरत्नत्रयमृदुलोदरिर्णी	पे. 122	
बलेः पुरं वेद्मि सदैव	1	30
बाला द्रुपदभूपतेः	पे. 88	
बालोऽस्तु कश्चित्	9	24
बाह्यवस्तुनि या वाञ्छा	9	38

(भ)

भक्त्याऽर्पितं वह्न्यप	4	34
भद्रे त्वमद्रेरिव	9	25
भवति प्रकृतिः समीक्ष-	पे. 112	
भवान्धुपात्यङ्गिहितैषिणाः	2	47
भवान्धुसम्पातिजनैकबन्धुः	1	3
भवांस्तरंस्तारयितुं प्रवृत्तः	2	31
भिक्षैव वृत्तिः करमेव पात्रं	9	2
भिल्लिनी तस्य भिल्लस्य	4	28
भाग्यतस्तमधीयानो	9	52
भास्वानासनमासाद्या-	5	11
भुवस्तु तस्मिल्लपनोप-	1	24
भुवि देवा बहुशः स्तुताः	पे. 73	
भूतमात्रहितः पातु	9	91
भूतात्मकमङ्गं भूतल के	पे. 100	
भूतैः समुद्भूतमिदं	9	15
भूमण्डलोन्नतगुणादिव	3	46
भूयात्कस्य न मोदाये	3	47
भूयात्सुतो मेरुरिवातिधीरः	2	39
भूराकुलतायाः सम्भूयत्	पे. 100	
भूराख्याता फलवत्ताया	पे. 82	
भूरागस्य न वा रोषस्य	पे. 74	
भूराज्ञ किमभूदेकस्य	पे. 89	
भूरानन्दमयीयं सकला	पे. 81	
भूरानन्दस्य यथाविधि	पे. 114	
भूरानन्दस्येयमतोऽन्या	पे. 122	
भूरानन्दस्येयमितीदं	पे. 122	
भूरायामस्य प्राणाना-	पे. 100	
भूरास्तामिह जातुचि-	पे. 94	
भूरास्तां चन्द्रमसस्तमसो	पे. 97	
भागोपभोगतो वाञ्छा	9	40
भोजने भुक्तोज्झिते	पे. 89	
भो भो मे मानसस्फीति-	5	13
भो भो विभो कौतुकपूर्णा-	2	13
भो सखि जिनवरमुद्रां	पे. 70	

(म)

मतिर्जिनस्येव पवित्ररुपा	2	4
मत्तोऽप्यवित्ताविधिरेष	4	24
मदीयत्वं न चाङ्गेऽपि	9	67
मदीयं मांसलं देहं	7	22
मदुक्तिरेषा भवतोः	2	29
मधुरेण समं तेन	6	15
मध्येदिनं प्रातरिवाथ	9	61
मनाङ् न भूपेन कृतो	8	3
मनोऽपि यस्य नो जातु	9	68
मनो मे भुवि हरन्तं	5	4
मनोरमाधिपत्वेन	9	21
मनोवचनकायैर्जिनपूजां	पे. 114	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनोवचःशरीरं स्वं	9	37
मरुत्सखममुं मत्वा	5	2
मलयगिरेश्चन्दनमथ	पे. 71	
महामन्त्रप्रभावेण	4	27
महिषीमेकदोद्धर्तुं	4	26
महिषी श्रुत्वा रहस्यस्फुटिं	8	35
मानवः प्रपठेदेनं	9	87
माया महितीयं मोहिनी	पे. 112	
मारयित्वा मनो नित्यं	9	43
मालेव या शीलसुगन्ध	2	9
मा हिंस्यात्सर्व भूतानी	4	41
मुक्तोपमतन्दुलदल	पे. 71	
मुक्तामया एव जनाश्चा	1	28
मुदाऽऽदाय मेकोऽम्बुज	पे. 114	
मुदिन्दिरामङ्गलदीप	1	12
मुनिराह निशम्येदं	4	16
मुनिं हिमतौंद्रुममूलदेश-	4	23
मुहुरुद्गिलनापदेशतः	3	18
मृत्वा ततः कुक्कुरता-	4	18
मृदुकुड्मललग्नभृङ्गवत्	3	17
मृदुचन्दन चर्चिताङ्ग	3	7
मृदुलपरिणामभृच्छायः	पे. 82	
मोदकं सगरोदकं सखि	पे. 90	
मोहादहो पश्यति बाह्य	8	21

(य)

यतिरिवासकौ समरसङ्गतः	1	39
यत्र गीयते गीतं प्रातः	पे. 138	
यत्र मनाङ् न कला	पे. 76	
यत्र वञ्चना वेद्रमायाः	पे. 75	
यः क्रीणातिसमर्घमितीदं	पे. 91	
यदद्य वाऽऽलापि जिनार्च	3	37
यदा त्वया श्रीपथतः समुद्रा	3	40
यदादिद्ष्याः समदृष्टसारा	2	19
यदा सुदर्शन दर्शनं	पे. 99	
यद्यसि शान्तिसमिच्छकः	पे. 71	
यद्व निशाहःस्थितिवद्	8	20
यस्या दर्शनमपि सुदुर्लभं	7	13
यस्मिन् पुमांसः सुरसार्थ	1	26
या खलु लोके फलदल	9	63
या तु सा तु सञ्जीविता	पे. 88	
यामवाप्य पुरुषोत्तमः	पे. 112	
यावद्दिनत्रयमकारि	9	30
युवतां समवाप्य बाल्यतः	3	32
युवभावमुपेत्य मानितं	3	33
ये बाह्यवस्तुषु सुखं	9	44
यद्दच्छयाऽनुयु	7	30

(र)

रज्यमानोऽत इत्यत्र	4	8
रतिराहित्यमद्यासीत	3	35
रतिरिव रुपवती या	1	41
रत्नत्रयाराधनकारिणा	2	30
राज्ञ्या इदंपुत्करणं	7	35
रहसि तां युवतिं महिमानतः	2	49
रागरोषरहिता सती	पे. 70	
रागं च रोषं च विजित्य	2	48
राज्ञी प्राह किलाभागि	6	11
राज्ञ्याः किल स्वार्थ	8	8
रामाजन इवाऽऽरामः	6	1
रे दुष्टाऽभयमत्याख्यां	9	78
राजा जगाद न हि	7	36

(ल)

लताजातिरुपयाति	पे. 81	
लतेव मृद्वीमृदुपल्लवा	2	5
ललिततमपल्लवप्राया	पे. 82	
लसति सुमनसामेष	पे. 81	
लोके लोकः स्वार्थभावेन	8	16

(व)

वणिक् पथः श्रीधर	1	32
वनविचरणतो दुःखिनी	पे. 88	
वन्दे तमेव सततं	9	90
सुधासिक्तमिवातिगौरं	2	46
वरं त्वत्तः करं प्राप्य	5	17
वसनाभरणैरादरणीयाः	पे. 75	
वसनेभ्यश्च तिलाञ्जलि	पे. 81	
वस्तुतस्तु मदमात्सर्याद्या	8	17
वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य निर्माप्य	7	1
वागुत्तमा कर्मकलङ्कजेतु	1	2

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वागेव कौमुदी साधु	4	13
वाञ्छति वसनं स च	पे. 74	
वार्णी तदा पीनपुनीति	7	19
वारा वस्त्राणि लोकानां	4	36
वार्ताऽप्यदृष्टश्रुतपूर्विका	2	21
वार्बिन्दुरेति खलु शुक्तिषु	4	30
विचारजाते स्विदनेकरुपे	8	4
विचारसारे भुवनेऽपि	1	7
विघ्नो न सम्पत्तिषु	8	35, 47, 58, 68, 80, 99, 106, 116, 137
विधृतांगुलि उत्थितः क्षणं	3	27
विनताङ्गजवर्धमानता	3	28
विनाशि देहं मलमूत्रगेहं	9	22
विपत्रमेतस्य यथा करीरं	9	10
विरम विरम भो स्वामिनि	6	23
विश्वं सुदर्शनमयं विबभूव	6	17
विहाय साऽरं विहरन्तमेव	2	18
वीरप्रभुः स्वीयसुबुद्धिनावा	1	1
वीरोक्त शुभतत्त्वार्थ	9	93
वेश्याया बालक	पे. 91	
व्याप्नोति वप्रशिखरैः	1	36
व्यत्पन्नमानितत्वेन	4	38

(श)

शमसानमासाद्य	8	2
शश्वन्मलस्रावि	7	27
शरीरमेतन्मलमूत्रकुण्डं	7	23
शवभूरात्मवता वितता	पे. 92	
शशकृतसिंहाकर्षण	पे. 92	
शशिनासुविकासिना	3	3
शाटकं चोत्तरीयं च	4	31
शाटीव समभूदेषा	4	32
शालेन बद्ध च विशाल	1	25
शिरसा सार्ध च स्वयमेन	8	31
शिवायन इत्यतः ख्यातः	पे. 83	
शुक्लैकवस्त्र प्रतिपद्यमाना	8	34
शुद्धसर्पिषः कपूरस्या	पे. 72	
श्मशानतो नग्नतया	7	16
श्रीजिनगन्धोदकं		70
श्रीमान् श्रेष्टिचतुर्भुजः		35, 47, 58, 68, 80, 93, 106, 116, 137
श्रीवासुपूज्यस्य शिवाप्ति	1	35
श्रीश्रेष्टिवक्त्रेन्दुपद वहन्	2	36
श्रुतमश्रुतपूर्वमिदं तु	6	8
श्रुतारामेतु तारा मे	पे. 82	
श्रुत्वेति यतिराजस्य	4	46

(ष)

षड्रसमयनानाव्यञ्जन	पे. 72	
षोडशयाममितीदं	पे. 96	

(स)

सकलङ्कः पृषदङ्ककः	पे. 87	
सखा तेऽप्यभत्	5	7
सग्रन्थितां निष्फल	1	16
सङ्गच्छन यत्र महापुरुषः	पे. 123	
सच्चिदानन्दमात्मानं	4	11
सत्यमेवोपयुञ्जाना	4	33
सदा षडावश्यककौतुकस्य	9	71
स न दृश्यः सन्तापकृद्	पे. 87	
सन्धान च नवनीत	9	56
समवर्धत वर्धयन्नयं	3	27
समस्तमप्युज्झतु	9	165
समस्ति यताऽऽत्मनो	पे. 109	
समाशास्य यतीशानं	8	32
समुच्छलच्छाकतया	1	17
समुदारहृदां कः परलोकः	पे. 99	
समुदितनेत्रवतीति	पे. 82	
सम्पदि तु मृदुलतां	पे. 124	
सस्फुल्लतामितोऽनेन	8	28
सम्भावितोऽतः खलु	2	16
सर्वमेतच्च भव्यात्मन्	4	39
सर्वे ते निजशंसिनः	पे. 74	
सर्वेषामभिवृद्धाय	4	21
सर्वेषामुपकाराय	4	45
स वसन्त आगतो हे	पे. 81	
स वसन्तः स्वीक्रियतां	पे. 81	
सन्निधानमिवा	7	34
सहकारतरोः सहसा	पे. 81	
सहजा स्फुरति यतः	पे. 81	
सानुकूलमिति श्रुत्वा	9	32

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साऽमेरिकादिकस्य तु	पे. 69	
सा रोमाञ्चनतस्त्वं	5	16
सार्धसहस्रद्वयाचु	1	45
सा सुतरां सखि पश्य	पे. 91	
साहसेन सहसा	7	4
सितिमानमिवेन्दु	3	13
सुखंच दुःख च जगतीह	8	18
सुतजन्मनिशम्य	3	4
सुतदर्शनतः पुराऽसकौ	3	15
सुत पालनके सुकोमले	3	23
सुदर्शन त्वञ्च चकोर	3	41
सुदर्शनाख्यान्तिमकामदेव	1	4
सुदर्शनं समालोक्यै	7	17
सुदृढं हृदि कुम्भक	पे. 100	
सुमनसामाश्रयातिशयः	पे. 82	
सुमवत्समतीत्य बालतां	3	29
सुमनो मनसि भवा	पे. 99	
सुमानसस्याथ विशांवरस्य	2	33
सुस्वर्त्मवदिन्दुमम्बुधे	3	10
सुरसन्मशनं लब्ध्वा	पे. 74	
सुराद्रिरेवाद्रियते	2	14
सुरालयं तावदतीत्य	1	27
सुषुवे शुभलक्षणं	3	1
सैषा मनोरमा जाता	4	37
सोऽन्यथा तु विमुख	पे. 138	
सोऽप्येवं वचनेन	7	7
सो मे सुदर्शने काऽऽस्था	6	22
सोऽस्मै त्वज्जनकायासौ	4	20
सौन्दर्य मङ्गेकिमुपैसि	9	21
सन्निशम्यवचो	7	32
सुभगे शुभगेहिनी	7	33
सौहार्दमङ्गिमात्रे तु	4	35
संगच्छाभयमतिमिति	पे. 100	
संसारस्फीतये जन्तो	4	12
संसृतिरसकौ निस्सारा	पे. 138	
संस्मर्यतां श्रीजिन	2	23
स्त्रैणां तृणं तुल्यमुपा	9	6
स्फुरायमाणं तिलकोपमेयं	1	14
स्नपितः स जटालवालवान्	3	14
स्मासाद्य तत्पावन	2	28
स्यात्पर्वव्रतधारणा	पे. 96	
स्वप्नावलीयं जयतूत्तमार्था	2	38
स्वयमिति यावदुपेत्य	8	9
स्वयं कौतुकस्वान्तं	6	2
स्वरुपं श्रोतुमिच्छामि	4	5
स्वाकूतसङ्केतपरिस्पृशापि	2	32
स्वामिन आज्ञाऽभ्युद्धृतये	6	29
स्वार्थत एव समस्तो	पे. 138	
स्वार्थस्यैवं पराकाष्ठा	9	53
स्वीकुर्वनपरिणामेना	5	5
स्त्रिया मुखं पद्मरुखं	7	24
स्त्रिया यदङ्ग समवेत्य	7	26

(ह)

हस्ती स्पर्शनसम्वशी	9	46
हारे प्रहारेऽपि समान	9	4
हृषीकसन्निग्रहणैकचिताः	9	7
हे तान्त्रिक तदा तु त्वं	9	81
हे नाथ मे नाथ मनाग्	8	15
हे नाथ मे नाथमनो	4	15
हे वत्स त्वञ्चजानासि	4	40
हेऽवनीश्वरि सम्वच्मि	6	10
हे सुदर्शन मया	8	13
हे सुबुद्धे न नाहं	5	19

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलशबन्ध काव्य

परमागमलम्बेन नवेन सन्नयं लप ।
यन्न सन्नर मङ्गं मां नयेदिति न मे मतिः ॥ सर्ग ९, ८९॥

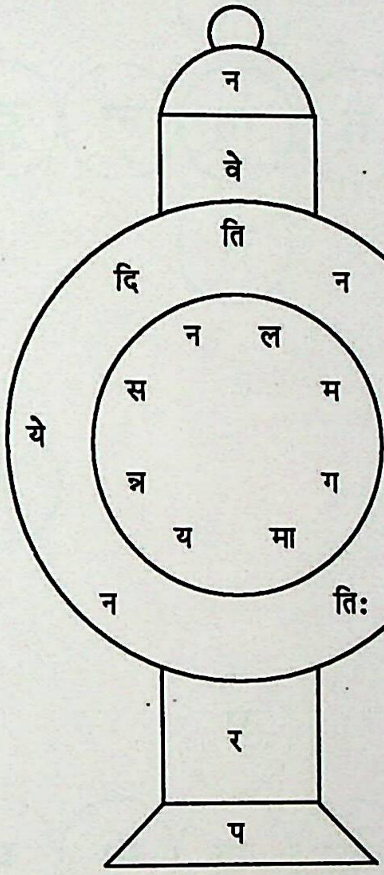

उपर्युक्त श्लोक को कलश के आकार में पढ़ें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हारबन्ध काव्य

बन्दे तमेव सततं विलसत्तमाल –
रङ्गं शरीरगतरङ्गधरं चकार ।
लब्ध्वा हिमङ्कमकनाशक एषकश्च
चक्रे भुवः स वशिनां पणमाप मे सः ।सर्ग ९, ९०।।

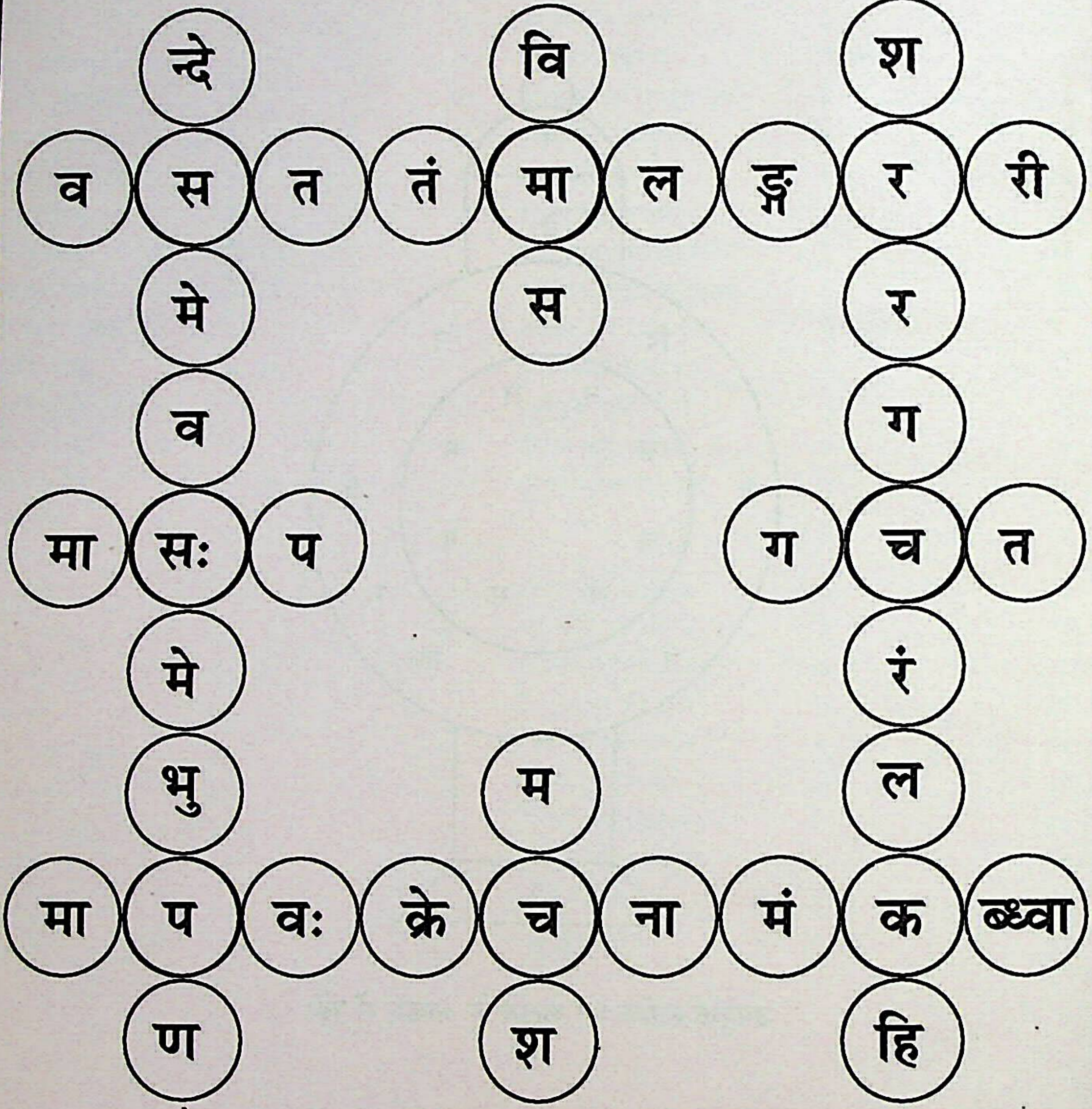

उपर्युक्त श्लोकों को इस हार के आकार में पढ़े ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कतिपय क्लिष्ट एवं श्लिष्ट शब्दों का अर्थ

शब्द	अर्थ
	(अ)
अक	दु:ख, पाप
अकन्दता	दुखदता
अकाण	सुदृष्टिवाला
अक्ष	इन्द्रिय
अङ्गभू	प्राणी
अङ्गेरुह	बाल, केश
अंघ्रि	चरण
अङ्क	चिह्न
अध्वा	माग
अनर्घता	अमूल्यता
अनामिष	निरामिष
अनूढा	अविवाहिता
अनेकान्त	एकान्त रहित
अनोकह	वृक्ष
अन्धु	कूप
पदेश	व्याज
अपवादिता	बदनामी
अपाङ्ग	कटाक्ष
अपाय	विनाश
अब्ज	कमल
अभिजात	उच्च कुलीन
अभिषव	अभिषेक
अभिसारक	अतिरमणशील
अमा	अमावस्या
अम्बुवाह	मेघ
अयुतनेत्री	सहस्राक्ष, इन्द्र
अर	शीघ्र
अर्क	आकड़ा
अबाय	निश्चय
अवतंस	आभूषण
अलि	भौंरा
अवि	भेड़
असि	तलवार
अहन्	दिन
अहिमा	सर्प का प्रभाव

शब्द	अर्थ
	(आ)
आखु	मूषक, चूहा
आगस्	अपराध
आदर्श	दर्पण
आनक	नगाड़ा
आरात्	समीप, दूर
आराम	उपवन
आशा	दिशा
आशीविष	विषला सांप
आशु	शीघ्र
आस्य	मुख
	(इ)
इङ्गित	संकेत, अभिप्राय
इन्दिरा	लक्ष्मी
इन्दु	चन्द्रमा
इला	पृथ्वी
	(उ)
उत्कर	राशि, समूह
उत्तमाङ्ग	शिर
उत्तरीय	दुपट्टा
उत्तल, उत्तर	सुन्दर
उदञ्च	सिंचन
उदन्वान्	समुद्र
उदर्क	परिणाम
उपकण्ठ	समीप
उपासक	श्रावक
उपोषित	उपासा
	(ए)
एकान्त	एक धर्म युक्त
एनस्	पाप, दोष
ऐन्द्री	पूर्व दिशा
ओतु	बिलाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(क)

कच	केश
कदली	केल-वृक्ष
कद्विधि	दुर्दैव
कपर्दक	कौंडी
करण	इन्द्रिय
करण्ड	पिटारा
करग्रह	विवाह
करत्र	कलत्र, स्त्री
करीर	कैर-वृक्ष
कलत्र	स्त्री
कला	ज्योति
कलावान्	चन्द्रमा
कल्प	विधि, विधान
कादम्बिनी	मेघमाला
कापी	जल-भरी
काममाता	लक्ष्मी
किण	गुण, स्वभाव
कुक्कुर	कुत्ता
कुड्मल	खिलती हुई कली
कुण्ड	कूंडा
कुमुद्वती	कुमुदिनी
कुम्भक	सांस रोकना
कुल्या	नहर, छोटी नदी
कुशेशय	कमल
कुसुम	पुष्प, रजःस्राव
कुसुमन्धय	भ्रमर
केकी	मयूर
कैरव	श्वेत कमल
कैरविणी	कुमुदिनी
कोक	चकवा
कौतुक	कुतूहल, पुष्प
कौमाल्य	कौमार्य
कौमुद	प्रमोद
कौमुदी	चांदनी
क्लैव्य	नपुंसकपना
क्षणभू	क्षण भर
क्षीरोद	क्षीरसागर

(ख)

खञ्जन	एक चिड़िया
खदिर	खैर का वृक्ष
खल	दुर्जन, खली
खलक्षण	अवकाशवाला

(ग)

गण्ड	गाल
गर	विष
गह्वर	गुफा
गह्वरीप	गुफवासी
गारुडी	सर्पविद्या वेत्ता
ग्राम	गांव, समूह

(च)

चटिका	चिड़िया
चरणप	चारित्रधारी
चरु	नैवेद्य
चातक	पपीहा
चातकी	पपीही
चीर	वस्त्र
चेटिका	दासी
चेटी	दासी
चेल	वस्त्र

(छ)

छद्म	छल
छवि	मूर्ति

(ज)

जगन्मित्र	सूर्य
जडराशि	जलराशि,
जनी	स्त्री
जनु	जन्म
जनुष्	जन्म
जपाश	चपाकुसुमय
जम्बल	नीबूं, नारंगी
जरस्	बुढापा
जल्प	बकवाद
जव	वेग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानुज	वैश्य
जिनप	जिनेन्द्र
जूर्ति	ज्वर

(झ)

झष	मछली
झुण्ड	समूह

(ड)

डिम्ब	छोटा बालक

(त)

तति	पंक्ति, श्रेणी
तमाल	तमाखुपत्री
तल्प,	शय्या, स्त्री
ताति	परम्परा
ताम्रचूड	मुर्गा
तुक	पुत्र
तुला	तुलना
तुर्य	चौथा
तूर्ण	शीघ्र
तूल	विस्तार, रुई

(द)

दारा	स्त्री
दिवा	दिन
दृप्ति	उन्माद
दोषाकर	चन्द्रमा
द्रुत	शीघ्रता से
द्वादशात्मा	सूर्य
द्विज	ब्राह्मण, पक्षी
द्विजिह्व	सर्प

(ध)

धारणा	व्रत-स्वीकृति
धिषणा	बुद्धि
ध्यामलता	कालिमा

(न)

नग	पर्वत
नदीप	समुद्र
नभोग	आकाशगामी
नरप	नरपाल, राजा
नर्म	विनोद
निधान	खजाना, भंडार
निम्नगा	नदी
निरागस	निरपराध
निर्वृत्ति	मुक्ति
निशा	रात्रि
निशाचर	राक्षस
निश्चेलक	नग्न, वस्त्र-रहित
निःस्व	दरिद्र

(प)

पङ्क	कीचड़
पचेलिम	परिपाक
पण	विष्णु, मुख्य
पण्ड	षण्ढ, नपुंसक
पण्ययोषित	वेश्या
पण्यललना	वेश्या
पतङ्ग	शलभ
पद्मिनी	कमलिनी
पनस	कटहल
पयस्विनी	दुधारु गाय
पर्व	व्रत का दिन
पल	मांस
पल्वल	छोटा तालाब
पलाशिता	मांस-भक्षिता
पवमान	वायु
पायुवायु	अधोवायु
पारणा	उपवास के पीछे भोजन करना
पारावार	समुद्र
पार्श्वदृषद्	पारस पत्थर
पिक	कोकिल
पिशित	मांस
पिष्ट	पीठी
पुत्तल	पुतला
पुन्नाग	जायफल, श्रेष्ठपुरुष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूतता	पवित्रता
पूतना	राक्षसी
पूत्करण	चिल्लाहट
पृषदङ्क	चन्द्रमा
पौलोमी	इन्द्राणी
प्रतत	विस्तृत
प्रतिमायोग	स्थिर आसन
प्रतीप	प्रतिकूल
प्रपा	प्याऊ
प्रशस्ति	यशोशान
प्रावृष्	वर्षा
प्रेतावास	स्मशान

(भ)

भन्दता	भद्रता
भाल	मस्तक
भास्वात्	सूर्य
भुजग	सर्प, जार
भृङ्ग	भौंरा
भेक	मेंढक
भोगवती	सर्पिणी
भोगी	सर्प

(म)

मकरन्द	पराग, केसर
मञ्जु	सुन्दर
मञ्जुल	मनोहर
मञ्जुलता	सुन्दरता
मधु	शहद
मधुला	मधुरा
मनाक्	जरासा, अल्प
मन्तु	राजा, बुद्धि
मन्मथ	कामदेव
मरिच	मिर्च
मरु	रेगिस्तान
मरुत्सख	अग्नि
महर्घ	बहुमूल्य
महिषी	पट्टरानी, भैंस
महिषोचरी	रानी का जीव
मार	काम
मुरली	बांसुरी
मुद्रा	मुहर, सिक्का

(य)

यथाजात	नग्न
यद्दच्छा	मनमानापना
याम	पहर

(र)

रक्ताक्षिका	भैंस
रङ्गभू	रंगमंच
रजनी	रात्रि
रतीशकेतु	काम-पताका
रत्नाकर	समुद्र
रद	दांत
रम्भा	केलवृक्ष
रव	शब्द
रहस्	एकान्त
रहस्य	गुप्त, गोपनीय
रुक्	कान्ति, रोग
रुक्कर	अभिलाषी
रुख	सद्दश
रुपाजीवा	विलासिनी
रेतस्	वीर्य
रोदसी	पृथ्वी का स्वर्ग

(ल)

ललना	स्त्री
लुण्टाक	लुटेरा

(व)

वडिश	वंसी
वप्र	कोट
वयस्य	मित्र, साथी
वर्मित	कवच-युक्त
वल्लकिका	वीणा
वशा	हथिनी
वामा	स्त्री
वासस्	वस्त्र
वाहा	भुजा
वि	पक्षी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधु	चन्द्रमा
विनति	प्रार्थना
विपणि	हाट, दुकान
विरागभृत्	वैरागी
विरोधिता	विरोधपना
विलोमता	प्रतिकूलता
विवर	छिद्र
विषादी	विष-भक्षी
विसर्ग	दान
वीनता	गुरुड़ाश्रिता
वृतति	लता, वृत्ति
वेला	समय, वारी
वैजयन्ती	पताका, ध्वजा
वैलक्ष्य	अस्वाभाविकता
व्यपार्थ	निरर्थक

(श)

शतयज्ञ	इन्द्र
शय	हाथ
शर	बाण
शर्करिल	रेतीला
शलभ	पतंगा
शवभू	स्मशान
शशाङ्क	चन्द्रमा
शस्वत्	सदा
शस्य	उत्तम
शाखी	वृक्ष
शाण	कसौटी
शाप	दुराशीष
शुचिराट्	शुद्धदेव
शेवाल	सेवार, काई
शेलूष	नट, अभिनेता
श्रणानाङ्क	विचरणस्थान
श्रणत्	देता हुआ
श्रीपथ	राजमार्ग
श्लक्ष्ण	चिकना
श्वेतांशुक	श्वेत वस्त्र

(ष)

षट्चरण	भौंरा
षट्पद	भौंरा

(स)

सचिव	मित्र, मंत्री
सत्तम	श्रेष्ठ
सदीक्ष	सहपाठी
सन्धानक	अचार
सन्निधि	समीप
सन्निवेस	रचना
सप्तार्चि	अग्नि
समर्घ	बहुमूल्य
समाकूत	अभिप्राय
समुद्वाह	विवाह
सम्व्यवाय	मैथुन
सहकारतरु	आम्रवृक्ष
सहिमा	हिम (बर्फ)युक्त
सागस्	अपराधी
सायक	बाण
साल	एक वृक्ष
सितद्युति	चन्द्रमा
सिन्धु	नदी, समुद्र
सुधा	चूना, अमृत
सुधाधुनी	अमृतबाहिनी नदी
सुधांशु	चन्द्रमा
सुन्दल	सुन्दर
सुपर्वाधिभू	स्वर्ग
सुम	पुष्प
सुमनस्	पुष्प, सुचेता
सुरभि	सुंगधि
सुरा	मदिरा
सुराङ्क	स्वर्गलोक
सेतु	पुल
सौध	पक्का मकान
संकाश	समान
संहति	समूह
स्तनित	मेघ-गर्जन
स्तनन्धय	शिशु, बालक
स्तम्बक	गुच्छा
स्थविर	वृद्ध
स्फीति	भेद खुलना
स्फुलिङ्ग	चिनगारी
स्मर	कामदेव

(ह)

हायन	वर्ष
हृषीक	इन्द्रिय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुदर्शनोदय - गत - सूक्तयः

सूक्ति	पृष्ठ	सूक्ति	पृष्ठ
अहो दुराराध्य इयान् परो जनः	56	भुवि वर्षामिव चातकः	47
करोत्यनूढा स्मयकौतुकं न	40	लतेव तरुणोज्झिता	55
किमु बीजव्यभिचारि अंकुर	49	लोहोऽथ पार्श्वद्दषदाऽञ्चति हेमसत्त्वम्	65
गृहच्छिद्रं परीक्ष्यताम्	108	वह्निः किं शान्तिमायाति क्षिप्यमाणेन दारुणा	126
जिनधर्मो हि कथञ्चिदित्यतः	50	वार्बिन्दुरेति खलु शुक्तिषु मौक्तिकत्वम्	65
तिष्ठेत्सदाचारपरः सदाऽऽर्यः	130	सत्सम्प्रयोगवशतोऽङ्गवतां महत्त्वम्	65
धर्माम्बुवाहाय न कः सपक्षी	63	सम्पतति शिरस्येव सूर्यायोच्चालित रजः	125
प्रायः प्राग्भवभाविन्यौ प्रीत्यप्रीती च देहिनाम्	62	स्वभावतो ये कठिना सहेरं कुतः परस्याभ्युदयं सहेरन्	46
फलतीष्टं सतां रुचिः	56	सुगन्धयुक्तापि सुवर्णामूर्तिः	32

❀ ❀ ❀

छन्द-सूची

सुदर्शनोदय की रचना संस्कृत और हिन्दी के जिन छन्दों में की गई है उनकी सूची इस प्रकार हैं :

संस्कृत छन्द	हिन्दी छन्द	संस्कृत छन्द	हिन्दी छन्द
इन्द्रवज्रा	प्रभाती	उपेन्द्रवजरा	काफी होलिकाराग
उपजाति	कव्वाली	वियोगिनी	छंदचाल
वसन्ततिलका	रसिक राग	द्रुतविलाम्बित	सारंग राग
शार्दूलविक्रीडित	श्यामकल्याण राग	वैतालीय	सौराष्ट्रीय राग

इनके अतिरिक्त अनेक गीतों की रचना हिन्दी पद्य रचना में प्रसिद्ध अनेक तर्जों पर की गई है. उनकी विगत इस प्रकार है –

१. पृ. 70 'भो सूखि जिनवरमुद्रां पस्य' इत्यादि गीत की चाल 'जिनगुण गावो जी ज्ञानी जाते सब संकट टर जाय' की तर्ज पर ।

२. पृ. 73 'तव देवांघ्रिसेवां' इत्यादि गीत की चाल – 'क्यों न लेते खबरियां हमारीं जी' की तर्ज पर ।

३. पृ. 88 'प्रभवति कथा परेण' इत्यादि गीत की चाल 'सुनिये महावीर भगवान् हिंसा दूर हटाने वाले, की तर्ज पर।

४. पृ. 97 'घनघोर सन्तमसगात्री' इत्यादि गीत की चाल – 'हित कहत दयाल दयातें सुनो जीया जिय भोरे को बातें, की तर्ज पर।

५. पृ. 99 'चन्द्रप्रभ विस्मरामि न त्वाम्' इत्यादि गीत की चाल – 'दीनानाथ काटो क्यों न करम की बेड़ी जी' की तर्ज पर।

६. पृ. 99 'सुमनो मनसि भवानिति धरतु' इत्यादि गीत की चाल – 'तेरी बोली प्यारी मुझे लगे मेरे प्रभुजी' की तर्ज पर।

७. पृ. 114 'जिनयज्ञमहिमा ख्यातः इत्यादि गीत की चाल 'मैं तो थारी आज महिमा जानी' की तर्ज पर।

८. पृ. 122 'देवदत्तां सूवार्णीं सुवित् सेवय' इत्यादि गीत की चाल – 'जिनवाणी हम सबको सुना जांयगे' की तर्ज पर।

९. पृ. 122 'इह पश्याङ्ग सिद्धशिला भाती।

❀ ❀ ❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi